हिन्दी और तेलुगु उपन्यास के उद्‌भव और विकास की प्रक्रिया का समाज शास्त्रीय अध्ययन

हैदराबाद विश्वविद्यालय हैदराबाद की पी-एच. डी. उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

1995

प्रस्तुतकर्ता

बिक्कि रघु विजय कुमार

एम. ए. एम. फिल्

-: निर्देशिका :-

प्रो० शशि मुदिराज, डी. लिट्.

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय,

हैदराबाद-500 046

Name of the research scholar : B. Raghuvijay Kumar

Department/Centre : Hindi

University of Hyderabad.

This is to certify that I, **B. Raghuvijay Kumar** have carried out the research embodied in the present thesis for the full period prescribed under the Ph.D. ordinances of the University.

I declare that no part of this thesis was earlier submitted for the award of any research degree or diploma to any university.

Signature

Date :

Research Supervisor

Head of Department/Centre

Prof. & Head, Dept. of Hindi
School of Humanities
University of Hyderabad
HYDERABAD-500 134

Dean of School

DEAN
SCHOOL OF HUMANITIES
University of Hyderabad.
Hyderabad-500 134

प्राक्कथन

हिन्दी प्रदेश पर पहले मुंगलों का शासन फिर अंग्रेजों का आगमन बाद में 1857 की क्रान्ति आदि के प्रभाव के कारण समाज पतनावस्था में था । अंग्रेजों का शिक्षा प्रचार के कारण शिक्षित मध्यवर्ग का उदय हुआ । तत्कालीन व्यवस्था में सुधार की आवश्यकता के पूर्ति के लिए एक माध्यम के रूप में उपन्यास का उद्भव हुआ । उपन्यास का झुकाव पहले से ही यथार्थता की ओर रहा । धीरे-धीरे उपन्यासों की विभिन्न प्रवृत्तियाँ जैसे सामाजिक , इतिहासिक, हास्यरसात्मक, जासूसी आदि का उदय हुआ । उद्भव कालीन सभी उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों का खण्डन किया कुछ ने समाधान भी प्रस्तुत किया ।

तेलुगु प्रदेश में भी पहले मुगलों का फिर अंग्रेजों का शासन रहा । 1857 की क्रान्ति का प्रभाव जितना हिन्दी प्रदेश पर पड़ा उतना तेलुगु प्रदेश पर नहीं पड़ा । परिणाम स्वरूप हिन्दी और तेलुगु उपन्यास के उद्भव और विकास की प्रक्रिया में कुछ समानताएँ परिलक्षित होती हैं तो कुछ विषमताएँ भी । इन्हीं के समाजशास्त्रीय आधारों का विवेचन प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का लक्ष्य है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को अध्ययन की सुगमता के लिए आठ अध्यायों में विभक्त किया गया है । वे निम्नांकित हैं --

प्रथम अध्याय	:	उपन्यास के उद्‌भव और विकास की प्रक्रिया : समाजशास्त्रीय विवेचन
द्वितीय अध्याय	:	हिन्दी साहित्य में उपन्यास का उद्‌भव : परिस्थितियाँ, प्रवृत्तियाँ और वर्गीय पृष्ठभूमि
तृतीय अध्याय	:	तेलुगु साहित्य में उपन्यास का उद्‌भव : परिस्थितियाँ, प्रवृत्तियाँ और वर्गीय पृष्ठभूमि
चतुर्थ अध्याय	:	हिन्दी उपन्यास का विकास : समाजशास्त्रीय विवेचन
पंचम अध्याय	:	तेलुगु उपन्यास का विकास : समाजशास्त्रीय विवेचन
षष्ठ अध्याय	:	हिन्दी और तेलुगु साहित्य में उपन्यास के उद्‌भव और विकास का तुलनात्मक समाज - शास्त्रीय विवेचन
सप्तम अध्याय	:	हिन्दी और तेलुगु उपन्यास के शिल्पगत विकास का समाजशास्त्रीय अध्ययन
अष्टम अध्याय	:	उपसंहार

मैं अपने को बहुत ही भाग्यवान समझता हूँ कि मुझे प्रोफेसर शशि मुदीराज, विभागाध्यक्ष, हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय हैदराबाद के निर्देशन में कार्य करने का सुअवसर मिला जिनसे न केवल मुझे निरन्तर मार्गदर्शन ही मिलता रहा बल्कि सदैव प्रेरणा भी । उनके सुझाव एवं उनकी सहानुभूति पूर्ण आलोचनाएँ मेरे कार्य की पूर्ति के महत्वपूर्ण साधन थे । मैं उनके प्रति हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ ।

विभाग के प्रोफेसर वैं॰वेंकटरमण राव जी, जो एम;फिल॰ में मेरे निर्देशक रहे और जिन्होंने मुझे पी-एच॰डी॰ करने के लिए प्रोत्साहित किया, मैं उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ ।

अपने गुरुवर और विभाग के प्राध्यापक श्री॰वी॰कृष्ण जी के प्रति भी मैं चिरऋणी हूँ जिन्होंने मुझे आन्ध्र विश्वविद्यालय में एम॰ए॰ पढ़ाया और एम॰फिल॰ पढ़ने के लिए प्रेरणा और प्रोत्साहन दिया ।

इस शोध प्रबन्ध को पूरा करने में मित्र सुभाष नायुडु, उनकी पत्नी श्रीमति प्रसूना, भगवान, पास्टर साम्यूल, रवीन्द्र, अनिल कुमार, प्रसन्ना सिंह जिन्होंने मेरी सहायता उनके प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ ।

मेरे परिवार के अग्रजों के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ, विशेषकर माता, भाई, भाभी, अविनाश, उज्वला, प्रियंका, अभिषेक और मेरे ससुर को परिवार के सदस्य जिन्होंने इस कार्य के लिए मुझे सदैव प्रोत्साहन एवं सहायता प्रदान की है ।

मेरे पत्नी पद्मश्री जिनको मेहनत की कमाई से यह कार्य पूरा हुआ, जिनका स्नेह और प्रोत्साहन प्रबन्ध लेखन अवधि में प्रेरक रहा, उनके प्रति आधार व्यक्त करने के लिये मेरे पास पर्याप्त शब्द नहीं है ।

इन शब्दों के साथ यह शोध प्रबन्ध आपके सामने प्रस्तुत है ।

बी॰ आर॰ विजय कुमार

बी॰ रघु विजय कुमार

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

प्रथम अध्याय : उपन्यास के उद्भव और विकास की प्रक्रिया : समाजशास्त्रीय विवेचन

1.1. उपन्यास एक आधुनिक विधा 1

1.1.1. उपन्यास की परिभाषा 3

1.1.2. उपन्यास और महाकाव्य 5

1.1.3. उपन्यास : साहित्य की एक आधुनिक विधा 9

1.1.4. उपन्यास की विशेषताएँ जो उसे अन्य विधाओं से पृथक और आधुनिक बनाती है 11

1.1.4.1. उपन्यास का क्षेत्र विस्तार 11

1.1.4.2. उपन्यास की परिवर्तनशीलता 11

1.1.4.3. वस्तुपक्ष का समस्याजनित रूप 11

1.1.4.4. गद्य का माध्यम 12

1.1.4.5. वास्तविक जीवन का अनुमोदन 12

1.1.4.6. उपन्यास कला का उदार दृष्टिकोण 12

1.1.4.7. भाषाशैली के दो धरातल 13

1.1.4.8. अन्य साहित्यिक विधाओं से भिन्न काल संबन्धी चेतना की धुरी 14

1.1.4.9. विधा की संरचना का नूतन परिवेश 14

1·2· उपन्यास और औद्योगिक समाज 15

1·2·1· वर्गविभक्त समाज का विकास 17

1·2·2· शोषितवर्ग में चेतना 18

1·2·3· आर्थिक परिवेश में परिवर्तन 19

1·2·4· नैतिक मान्यताओं में परिवर्तन 19

1·2·5· पारिवारिक स्थिति में परिवर्तन 20

1·2·6· जातिगत बन्धनों से मुक्ति 20

1·3· उपन्यास और मध्यवर्ग 22

1·3·1· मध्यवर्ग का विभाजन 26

1·3·2· मध्यवर्ग के विकास में योग देनेवाले मूलभूत तत्त्व 29

1·3·2·1· राष्ट्रीय नवजागरण

1·3·2·1·1· सांस्कृतिक नवजागरण 29

1·3·2·1·2· राजनैतिक नवजागरण 30

1·3·2·2· शिक्षा प्रभाव 32

1·3·2·3· प्रेस एवं पत्र का प्रभाव 34

1·3·3· उपन्यास के उद्भव का सामाजिक आधार मध्यवर्ग 35

1·4· भारतीय उपन्यास का उदय

1·4·1· भारतीय भाषाओं में प्रथम उपन्यास

1·4·1·1· मराठी के प्रथम उपन्यास

1·4·1·2· बंगला के प्रथम उपन्यास

1·4·1·3· गुजराती के प्रथम उपन्यास

1·4·1·4· हिन्दी के प्रथम उपन्यास

1·4·1·5· तेलुगु के प्रथम उपन्यास

1·4·1·6· उर्दू के प्रथम उपन्यास

1·4·1·7· असामिया के प्रथम उपन्यास

1·4·1·8· तमिल के प्रथम उपन्यास

1·4·1·9· पंजाबी के प्रथम उपन्यास

1·4·1·10· कन्नड के प्रथम उपन्यास

1·4·2· भारतीय उपन्यास साहित्य के उद्भव कालीन परिस्थितियाँ और प्रवृत्तियाँ

1·4·3· निष्कर्ष

--=--

द्वितीय अध्याय

हिन्दी साहित्य में उपन्यास का उद्भव : परिस्थितियाँ प्रवृत्तियाँ और वर्गीय पृष्ठभूमि

2·1· परिस्थितियाँ

2·1·1· राजनैतिक परिस्थितियाँ

2·1·1·1· मुगल साम्राज्य का पतन और अंग्रेजों के आधिपत्य का आरम्भ

21·1·2· प्लासी के लडाई से बक्सर की लडाई तक की परिस्थितियाँ

2·1·1·3· 1857-1859 का महान जनविद्रोह

2·1·1·4· रानी विक्टोरिया के प्रशासनिक सुधार और ब्रिटिश शासन का बढ़ता हुआ प्रभाव

2·1·2· आर्थिक परिस्थितियाँ

2·1·2·1· ब्रिटन की शोषणमूलक अर्थनीति

2·1·2·2· सीमाशुल्क नीति

2·1·2·3· वस्त्रव्यापार में कुटिल नीति

2·1·2·4· कृषक नीति

2·1·2·5· किसानों की बढ़ती ऋणग्रस्तता और भूमिहीनता

2·1·2·6· भारत का ब्रिटिश पूँजी के लिए निवेश का क्षेत्र बन जाना

2·1·3· सामाजिक परिस्थितियाँ

2·1·3·1· उपन्यास के उद्भव कालीन सामाजिक परिस्थितियाँ

2·1·3·2· अंग्रेजों की शिक्षा नीति

2·1·3·3· मुद्रण एवं प्रकाशन व्यवस्था

83

2·2· प्रवृत्तियाँ

2·2·1· उद्भवकालीन उपन्यासकार और उनके उपन्यास

2·2·2· प्रेमचन्द का प्रवेश

2·2·3· उपन्यासों की मुख्य प्रवृत्तियाँ

101

2·3· वर्गीय पृष्ठभूमि

2·3·1· शिक्षित मध्यवर्ग से उपन्यासकारों का उदय

2·4· निष्कर्ष 106

तृतीय अध्याय

तेलुगु साहित्य में उपन्यास का उद्भव परिस्थितियाँ प्रवृत्तियाँ और वर्गीय पृष्ठभूमि

3.1. परिस्थितियाँ

3.1.1. राजनैतिक परिस्थितियाँ

3.1.1.1. तेलुगु राज्य में मुगलों का शासन

3.1.1.2. तेलुगु राज्य में असफजाही निजामों का शासन

3.1.1.3. तेलुगु राज्य पर 1857 महान सैनिक विद्रोह का प्रभाव

3.1.1.4. तेलुगु राज्य में अंग्रेजों का शासन

3.1.2. आर्थिक परिस्थितियाँ

3.1.2.1. ब्रिटन की शोषणमूलक अर्थनीति

3.1.2.2. कृषक नीति-किसानों की बढ़ती ऋणग्रस्तता, भूमिहीनता

3.1.2.3. आन्ध्र का ब्रिटिश पूंजी के लिए निवेश का क्षेत्र बन जाना

3·1·3· सामाजिक परीस्थीतियाँ

3·1·3·1· उपन्यास के उद्‌भवकालीन
सामाजिक परीस्थीतियाँ

3·1·3·2· अंग्रेजों की शिक्ष नीति

3·1·3·3· मुद्रण एवं प्रकाशन व्यवस्था

3·2· प्रवृत्तियाँ 126

3·2·1· उद्‌भावकालीन उपन्यसकार और उनके उपन्यास

3·2·2· पिछडापन, अंधविश्वास, जातिप्रथा आदि
कुरीतियों का यथार्थ चित्रण

3·2·3· उपन्यासों की मुख्य प्रवृत्तियाँ

3·3· वर्गीय पृष्टभूमि 14?

3·3·1· शिक्षित मध्यवर्ग से उपन्यासकारों का उदय

3·4· निष्कर्ष 14?

चतुर्थ अध्याय

हिन्दी उपन्यास का विकास : समाजशास्त्रीय विवेचन

4·1· परिस्थितियाँ एवं परिवर्तन की प्रक्रिया 148

4·1·1· राजनीतिक परिस्थितियाँ और उपन्यास पर उनका प्रभाव

4·1·2· सामाजिक परिस्थितियाँ और उपन्यास पर उनका प्रभाव

4·1·3· आर्थिक परिस्थितियाँ और उपन्यास पर उनका प्रभाव

4·1·4· सांस्कृतिक परिस्थितियाँ और उपन्यास पर उनका प्रभाव

4·2· उपन्यासों की प्रवृत्तियाँ 165

4·2·1· सामाजिक यथार्थवादी उपन्यास

4·2·2· व्यक्तिवादी उपन्यास

4·2·3· मनोविश्लेषणवादी उपन्यास

4·2·4· आँचलिक उपन्यास

4·2·5· व्यंग्यात्मक प्रवृत्ति

4·2·6· ऐतिहासिक उपन्यास

4.3. कथ्य एवं संवेदना का विकास 223

4.3.1. धर्माडंबर

4.3.2. विधवा समस्या

4.3.3. अछूतों की समस्या

4.3.4. वेश्या वृत्ति समस्या

4.3.5. पूंजीवादी आर्थिक विषमता से उत्पन्न समस्याएँ तथा उनकी प्रतिक्रिया

4.4. निष्कर्ष 240

-=-=-

पंचम अध्याय

तेलुगु उपन्यास का विकास : समाजशास्त्रीय विवेचन

5·1· परिस्थितियाँ एवं परिवर्तन की प्रक्रिया 242

5·2· उपन्यासों की प्रवृत्तियाँ 252

5·2·1· सामाजिक उपन्यास

5·2·2· मनोवैज्ञानिक उपन्यास

5·2·3· हास्यरसात्मक उपन्यास

5·2·4· राजनैतिक उपन्यास

5·2·5· ऐतिहासिक उपन्यास

5·3· कथ्य एवं संवेदना का विकास 292

5·3·1· धर्माडम्बर

5·3·2· विधवा समस्या

5·3·3· अछूतों की समस्या

5·3·4· वेश्यावृत्ति की समस्या

5·3·5· पूँजीवादी आर्थिक विषमता से उत्पन्न समस्याएँ तथा उनकी प्रतिक्रिया

5·4· निष्कर्ष 303

षष्ठम अध्याय

6. हिन्दी और तेलुगु साहित्य में उपन्यास के उद्भव और विकास का तुलनात्मक समाजशास्त्रीय विवेचन

सप्तम अध्याय

हिन्दी और तेलुगु उपन्यास के शिल्पगत विकास का समाजशास्त्रीय अध्ययन

7·1· भूमिका

7·2· हिन्दी उपन्यास का शिल्पगत विकास

7·2·1· कथानक सम्बन्धी शिल्प

7·2·2· चरित्र चित्रण सम्बन्धी शिल्प

7·3· तेलुगु उपन्यास का शिल्पगत विकास

7·3·1· कथानक सम्बन्धी शिल्प

7·3·2· चरित्र चित्रण सम्बन्धी शिल्प

7·4· हिन्दी और तेलुगु उपन्यास के शिल्पगत विकास का समाजशास्त्रीय विवेचन

अष्टम अध्याय

8. उपसंहार 374

संदर्भ ग्रन्थ सूची 398

सहायक ग्रन्थ सूची 408

:-:-:-:-:-:-:-÷:-:-:-:- -:-:-:-:-:-:-:-:-:-:-

प्रथम अध्याय

उपन्यास के उद्भव और विकास की प्रक्रिया : समाजशास्त्रीय विवेचन

-:-:-:-:-:-:-:-÷:-:-:-:-:- :-:-:-:-:-:-:-:-:-:-:

1. उपन्यास के उद्भव और विकास की प्रक्रिया : समाजशास्त्रीय विवेचन

1.1. उपन्यास एक आधुनिक विधा :-

आधुनिक युग को गद्य का युग कहा जाता है । आज गद्य-साहित्य और विशेष रूप से उपन्यास साहित्य की जितनी अधिक उन्नति संसार की भाषाओं में हो रही है,उतनी अन्य किसी साहित्य विधा की नहीं । कुछ समय पूर्व इस भ्रामक धारणा का प्रचलन हुआ था कि उपनयास की कोई शास्त्रीय मर्यादा नहीं है,परन्तु अब इस भ्रम का निवारण हो चुका है । आधुनिक युग के महान उपन्यासों को देखने से इस बात का परिचय मिलता है कि जीवन का संपूर्ण और महान चित्रण उपन्यास में संभव है । प्रेमचन्द ने भी उपन्यास के इसी विषय-विस्तार को उसकी प्रधानता का प्रमुख कारण

माना है । प्रेमचन्द ने लिखा है, " अगर आप को इतिहास से प्रेम है, तो आप अपने उपन्यास में गहरे से गहरे ऐतिहासिक तत्वों का निरूपण कर सकते हैं । अगर आपको दर्शन से रुचि है, तो आप उपन्यास में महान् दार्शनिक तत्वों का विचार कर सकते है । अगर आप को कवित्व शक्ति है तो उपन्यास में उसके लिए भी काफी गुंजाइश है । समाज, नीति, विज्ञान, पुरातत्व आदि सभी विषयों के लिए उपन्यास में स्थान है ।"[1]

उपन्यास आधुनिक युग की देन है । यद्यपि यह शब्द संस्कृत भाषा का है, किन्तु प्राचीन संस्कृत-साहित्य में इसका प्रयोग उस अर्थ में कभी नहीं हुआ, जिसमें हम आज करते है । भारत की कई प्रान्तीय भाषाओं में यह शब्द विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होता है । तेलुगु आदि दक्षिण भारत की भाषाओं में यह हिन्दी के व्याख्यान, वक्तृता आदि के अर्थ में प्रचलित है । डा॰हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस विषय पर अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है -- " उपन्यास वस्तुत: ही " नवल " अर्थात् नया और ताजा साहित्यांग है, परन्तु फिर भी जिस मेधावी ने कथा, आख्यायिका आदि शब्दों को छोडकर अंग्रेजी " नावेल " का प्रतिशब्द उपन्यास माना था उनकी सूझ की प्रशंसा किये बिना नही रहा जाता । जहाँ उसने इस नये शब्द के प्रयोग से यह सूचित किया कि यह साहित्यांग पुरानी कथाओं और आख्यानों से भिन्न जाति का है वही इसके शब्दार्थ के द्वारा (उप = निकट, न्यास = रखना) यह भी सूचित किया कि इस विशेष

1· हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास - डॉ॰प्रताप नारायण टंडन - पृ॰ 10·

साहित्यांग के द्वारा ग्रन्थकार पाठक के निकट अपने मन की कोई विशेष बात, कोई अभिमत मत रखना चाहता है। इस लिए यद्यपि यह शब्द परंपरा के अनुकूल नहीं पडता, यद्यपि उसका प्रयोग उपन्यास की विशिष्ट प्रकृति के साथ बिलकुल बेमेल नहीं कहा जा सकता।"[1]

1.1.1. उपन्यास की परिभाषा :-

उपन्यास की परिभाषा विद्वानों ने कई प्रकार से की है, लेकिन यह कायदा है कि जो चीज जितनी ही सरल होती है, उसकी पिरिभाषा उतनी ही मुश्किल होती है, कविता की परिभाषा आज तक नहीं हो सकी। जितने विद्वान है उतनी ही परिभाषाएँ है। कहीं दो विद्वानों के राय नहीं मिलती। उपन्यास के विषय में भी यह बात कही जा सकती है।

यूरोपीय विद्वान राल्फ फाक्स के अनुसार उपन्यास केवल गद्य में लिखी हुई कथा नहीं है। फाक्स ने उपन्यास को मानव जीवन का गद्य माना है। उसके विचार के अनुसार उपन्यास, कला का प्रथम गद्य रूप है, जो मानव को समग्रता से अभिव्यक्त करने की चेष्टा करता है।

---

1. हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास : डॉ.प्रतापनारायण टंडन - पृ. 11.

वह कहता है, उपन्यास गद्य को एक विशिष्ट यथार्थ - दृष्टि को प्रस्तुत करता है, जो उसी की पहुँच में है, काव्य, नाटक, सिनेमा, चित्रकला अथवा संगीत द्वारा संभव नहीं ।[1]

क्रार ने अपनी पुस्तक " डेवलपमेंट आव इंगलिश नावेल " में लिखा है कि सामान्य रूप से उपन्यास उस गद्य-आख्यान को कहा जा सकता है जो यथार्थ जीवन का यथार्थवादी दृष्टि से अध्ययन करें ।[2]

क्लाश रीव ने उपन्यास को यथार्थ जीवन का तथा उस काल का चित्र माना है, जिसमें वह लिखा गया है । वह कहता है कि उपन्यास की पूर्णता इसी बात में है कि वह हमारी परिचित वस्तुओं और दृश्यों का चित्रण इस ढंग से करे कि वह सामान्य हो जाय और कम से कम उपन्यास पढ़ते समय पाठक को यथार्थ का भ्रम होने लगे और वह उनके ही रंग में रँग जाय ।[3]

आक्सफोर्ड डिक्शनरी में " नोवेल " की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है — "Fictitious prose narrative of book length portraying characters and actions credibly representative of real life in continuous x plot." 4

---

1. हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास - डॉ॰ प्रताप नारायण टंडन - पृ॰ 13 से उद्धृत
2. - वही -
3. - वही -
4. Concipe oxford Dictionary - Ed. by - J.B. Sykes 7th Edition Page 639.

हिन्दी उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द ने उपन्यास की परिभाषा करते हुए लिखा है -- " इसको कोई ऐसी परिभाषा नहीं है, जिस पर सभी लोग सहमत हों । ..... मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ । मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उनके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है ।" [1]

1·1·2· उपन्यास और महाकाव्य :-

कहने के लिए उपन्यास और महाकाव्य दोनों ही आधुनिक हो सकते हैं । लेकिन महाकाव्य की आधुनिकता भूतकाल के संस्मरणात्मक पक्ष के साथ जुडी रहती है जहाँ भविष्य की संभावनाएँ, कली के समान जन्म लेकर भी फूट नही पाती तथा भविष्य संबंधी आशंकाएं मरने के समान पूर्वकालिक भूत की चट्टान से टकराने से बूंद के समान बिखर कर समाप्त हो जाती है और समसामयिक धरती पर नदी के रूप में अपना व्यक्तित्व निर्मित नही कर पाती । उपन्यास का जीवन-दृष्टिकोण वर्तमान की धरती पर उगे हुए उस वृक्ष के समान होता है जो अपने विकास के लिए अपनी जड़े तो भूतकाल की धरती के भीतर फैंकता है लेकिन जिसकी गति वस्तुत: भविष्य के सूरज की ओर अग्रसर होती है ।

1· हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास : डॉ·प्रताप नारायण टंडन - पृ· 12·

आज की आधुनिकता यथार्थवाद से असंपृक्त नही रह सकती और यथार्थवाद का मूल रूप लघुता की ओर साहित्यिक दृष्टिपात है, जो महाकाव्य का दृष्टिकोण नही बन सकता ।[1] आधुनिकता का संबंध वर्तमान बोध से है और वर्तमान की स्थिति धूप-छांव की संधिरेखा के समान है जिसके एक ओर तो भूत है एवं दूसरी ओर भविष्य । किन्तु समल के धरातल पर वर्तमान की अपनी सत्ता न होने पर भी बोध के धरातल पर वह असीम भी हो सकता है, भूत की शक्ति अगर " होने की स्थिति " (Being) में है और भविष्य की आशंका " न होने की " (Non Being) स्थिति में है, तब वर्तमान की स्थिति " होने की प्रक्रिया ( ) की यथार्थता में है । वर्तमान से संबद्ध होने के कारण उपन्यास की मूल प्रकृति " होने की प्रक्रिया " से संबंधित है उसके लिए दिया हुआ तथ्य शाश्वत नही रहता और न भविष्य का काल्पनिक संसार ही उसे आकृष्ट करता है वरन वह माध्यम के रूप में प्रक्रिया को ही प्रधानता देता है ।

महाकाव्य राष्ट्रीय एवं पैतृक संसार को लेकर चलता है । लेकिन उपन्यास व्यक्ति के अनुभवों से संबद्ध होने के कारण भूतकाल के वर्तमान दबाव से संबद्ध रहता है । वह व्यक्ति सापेक्ष है जबकि महाकाव्य परंपरा सापेक्ष ।

महाकाव्य जीवन चित्रण के लिए इतिहास को साक्ष्य मानकर आगे बढ़ता है लेकिन सामाजिक जीवन तक आते आते चुक जाता है । किन्तु उपन्यास में बल वहाँ पर होता है जहाँ पर महाकाव्य चुक जाता है । महाकाव्य के भीतर ध्वनित आदर्शों की आवाज पुरानी पीढ़ी, पितामह तथा पूर्वनिर्धारित मूल्यों की होती है ।

महाकाव्य में भविष्य संबंधी शंकाओं के लिए स्थान नहीं होता है । उसके भीतर सचेतन भविष्य की कल्पना भी होती है । उसमें समसामयिक समस्याओं को भी नहीं उठाया जाता । इस पूर्ण भूतकालिक पक्ष के कारण पाठक एवं महाकाव्य के भीतर के संसार के बीच एक दूरी आजाती है जिसे महाकाव्यात्मक दूरी कहा जा सकता है । एक ही विषय वस्तु को लेकर महाकाव्य की रचना भी हो सकती है और उपन्यास का भी । दोनों में मूल अंतर उस कृति के संसार और पाठक के बीच की दूरी के होने और न होने का है ।

महाकाव्य में धीरोदात्त और महान व्यक्ति को नायक बनाया जाता है । वह सभी शुभ लक्षणों से युक्त होता है । उसे विनम्र, शीलवान तथा पराक्रमी होना ही चाहिए । महाकाव्य की नायिकाएँ भी इसका अपवाद नहीं है । इस प्रकार महाकाव्य के नायक में सभी आदर्श गुणों का आरोप करने की प्रवृत्ति हो गई लेकिन कालांतर में दुर्लभ गुणों के कारण ही उन आदर्श चरित्रों की देवताओं में गणना की जाने लगी । किन्तु उपन्यास में ऐसा होना

आवश्यक नहीं है । इसमें सामान्य जीवन के चित्रण के साथ-साथ सामान्य व्यक्ति का नायक रूप में चित्रण होता है ।

उपन्यास में केवल कल्पनात्मक कथाएँ न होकर नित्यप्रति की सहज घटनाएँ वर्णित होती हैं । उपन्यास की घटनाएँ व चित्र इतने सजीव एवं स्वाभाविक रूप में चित्रित होते हैं कि पाठक पढ़ते समय उनके साथ एक रागात्मक तादात्म्य स्थापित कर लेता है ये घटनाएँ इतनी स्वाभाविकता से हमारे सम्मुख आती है कि हम उनको सहज सत्ता में सरलता से विश्वास कर बैठते है । उपन्यास मात्र कथानक गद्य न होकर मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन को केन्द्रबिन्दु में लेकर अभिव्यक्त करने वाली प्रथम कलाविधि है । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी उपन्यास के लिए यथार्थता को एक आवश्यक गुण मानते हैं । उनके विचारानुसार, " उपन्यास नामक साहित्यांग के यथार्थवादी होने में उनको सफलता मानता हूँ । कविता यथार्थ की उपेक्षा कर सकती है, संगीत यथार्थ को छोड़कर भी जा सकता है पर उपन्यास और कहानी के लिए यथार्थवाद प्राण है ।"[1] उपन्यास जन्म से ही यथार्थवाद की ओर उन्मुख रहा है । उपन्यास मनोरंजन के साथ समाज की जटिल समस्याओं एवं उनके समाधान को उद्देश्य रूप में ग्रहण करके साहित्य के क्षेत्र में अवतरित हुआ ।

---

1. विचार और वितर्क - हजारी प्रसाद द्विवेदी - नवीन संस्करण 1954 - पृ० 94, 96.

1·1·3· उपन्यास : साहित्य की एक आधुनिक विधा :

उपन्यास साहित्य की एक आधुनिक विधा है । रूप की दृष्टि से यह निरंतर परिवर्तनशील है । इस विधा की लचीली संभावनाओं को देखकर यह अनुमान नही लगाया जा सकता है कि कल यह कौन सा रूप धारण करेगी । साहित्य की अन्य विधाएँ जैसे नाटक, महाकाव्य, कविता आदि रूप की दृष्टि से बहुत कुछ निर्धारित है । साहित्यिक परंपराएँ उनके मार्ग निर्देशन में सहायक होती है, किन्तु उपन्यास के लिए परंपरा ऐसा कोई निश्चित विधान नही होती । उपन्यास एक अनिर्धारित विधा है । अन्य विधाओं का अध्ययन लगभग " मृत " भाषाओं के समान है । जिस प्रकार मृत भाषाओं का रूप स्थिर हो जाने के कारण उनका अध्ययन एक निश्चित परिपाटी से होना निश्चित हो जाता है, उसी प्रकार अन्य निर्धारित विधाओं का रूप निश्चित हो जाने के कारण उनका विश्लेषण एवं रूप निर्देशन सहज और संभव हो जाता है । उनके भीतर होनेवाली विभिन्नताओं का अध्ययन भी रूप निर्देशन के कारण संभव है । किन्तु जीवन्त एवं विकासशील होने के कारण उपन्यास का अध्ययन " जीवित " भाषा के अध्ययन के समान कठिन होता है । उपन्यास की गत्यात्मकता, उसकी परिवर्तनशीलता, नित्य नया रूप ग्रहण करने की क्षमता तथा संरचना के लचीलेपन के कारण उपन्यास की कोई भी परिभाषा निर्धारित करना अथवा इसकी रचना के लिए किसी पूर्वनिश्चित विधान का निर्धारण करना आलोचना के उस मानदंड के लिए संभव नहीं है जो साहित्य की निर्धारित विधाओं के लिए है ।

साहित्यिक विधा के रूप में जब उपन्यास का विकास हुआ तब उसने साहित्य के अन्य रूपों जैसे नाटक, कहानी आदि को भी प्रभावित करने लगा । फलस्वरूप साहित्य के अन्य विधाओं पर उपन्यास के प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होने लगे ।

अन्य विधाएँ भी स्वतंत्र एवं लचीली होने लगी । इन विधाओं में भाषा, रूढ़िग्रस्त लोक से हटकर उपन्यासोन्मुख होने लगी । इन विधाओं में व्यंग्य एवं विनोद का समावेश होने लगा तथा उनमें जन सामान्य के चित्रण के साथ उनके चरित्र के अंतर्विरोध के चित्रण को भी प्रश्रय मिलने लगा । समसामयिक एवं समस्यापरक कथानकों की ओर झुकाव बढ़ा । इसके फल स्वरूप समस्या प्रधान नाटक, वैचारिक कविता आदि प्रकाश में आने लगे । लेकिन यह प्रभाव सीधा न मानकर प्रकारांतर से मानना अधिक उचित होगा क्योंकि जो तथ्य उपन्यास कला के आविर्भाव के कारण बने, वे ही साहित्य के अन्य विधाओं में भी परिवर्तन के कारण माने जा सकते हैं । उपन्यास कला परंपरा के बोध से सापेक्षतया अधिक मुक्त रही है ।

1.1.4. उपन्यास की विशेषताएँ जो उसे अन्य विधाओं से अलग और आधुनिक बनाये रखती हैं :

उपन्यास अपनी निम्नांकित विशेषताओं के कारण साहित्य की अन्य विधाओं से अधिक जटिल माना जा सकता है ।

1·1·4·1· उपन्यास का क्षेत्र विस्तार :-

उपन्यास का क्षेत्र बहुत व्यापक होता है । इस में प्राय: सभी साहित्यिक विधाओं की विशेषताओं का समावेश होता है, जैसे कविता की काव्यात्मकता, नाटक का संवाद तथा महाकाव्य के समान विस्तृत जीवन का चित्रण ।

1·1·4·2· उपन्यास की परिवर्तनशीलता :-

उपन्यास कला का रूप दिन प्रतिदिन परिवर्तित होता जा रहा है । अत: इसे किसी परिभाषा से बांधना कठिन है ।

1·1·4·3· वस्तुपक्ष का समस्याजनित रूप :-

समसामयिक समाज की समस्याओं को उभार कर सम्मुख रखना तथा उनका समाधान करना उपन्यास की एक मुख्य विशेषता है ।

1.1.4.4. गद्य का माध्यम होना :-

उपन्यास के पूर्व जो साहित्यिक विधाएँ थीं उनका माध्यम मूलत: पद्य ही था । अत: माध्यम के रूप में प्रथम बार गद्य को स्वीकार करके उपन्यास कला, साहित्य के क्षेत्र में एक नवीन क्रांति लेकर उद्‌भूत हुई ।

1.1.4.5. पूर्ववर्ती चरित्रों से अलग हटकर वास्तविक जीवन का अनुमोदन :-

उपन्यास के चरित्र पूर्ववर्ती चरित्रों से भिन्न होकर वास्तविक जीवन के पात्रो जैसे सजीव होते है जिनमें पाठक स्वयं को बहुत सहजता के साथ देखा जा सकता है । चरित्रों की चारित्रिक दुर्बलताओं तथा अंतर्संघर्षों पर विशेष बल दिया जाता है ।

1.1.4.6. उपन्यास कला का उदार दृष्टिकोण :-

उपन्यास में सामाजिक परिवर्तनशीलता को स्वीकृति मिलती है । उपन्यास बदलते हुए मानव व समाज के मूल्यों को पहचान कर उसे आत्मसात करलेने की क्षमता होती है ।

उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त उपन्यास अन्य साहित्यिक विधाओं से तीन प्रमुख लक्षणों के आधार पर भिन्न होता है ।

1·1·4·7· भाषाशैली के दो धरातल :-

शैलीगत संसार का संबन्ध बहुभाषिक चेतनता के परिवेश में निबद्ध होता है । भाषा शैली के दो धरातल होते है --

(अ) क्षेत्रीय बोलियाँ :-

जैसे अवधी, ब्रज, भोजपुरी आदि ।

(आ) सामाजिक बोलियाँ :-

उपन्यास में यथार्थ चित्रण के लिए उपन्यास-रचना में बोलियों को स्वीकार करना पड़ता है । जैसे उच्चवर्ग, मध्यवर्ग, निम्नवर्ग, पुरुषों एवं महिलाओं की बोली में भिन्नता, वर्णभेद के कारण आई हुई भाषा की भिन्नता अर्थात एक ही बोली में सामाजिक स्तर भेद के कारण भाषा भेद इत्यादि ।

1.1.4.8. अन्य साहित्यिक विधाओं से भिन्न काल संबन्धी चेतना की धुरी :-

महाकाव्य अथवा अन्य उन साहित्यिक विधाओं का रूप निर्धारित है और वस्तु पक्ष पूर्ण भूतकालिक सीमा के भीतर लिपटा होता है । इस तथ्य को समझने के लिए भाषा के स्तर पर दो वाक्य देखिए - ‡क‡ " कालिदास ने शकुंतला की रचना की थी।" ‡ख‡ " कालिदास ने शकुंतला की रचना की है ।" पहला पूर्ण भूतकालिक है जबकि दूसरा समय के भौतिक धरातल पर विगत घटना होने के बावजूद भी वर्तमान कालबोध से जुड़ा हुआ है । उपन्यास की घटनाएँ विगत घटनाओं से संबद्ध होते हुए भी वे दूसरे वाक्य के समान काल की वर्तमान धुरी से संबंधित रहती है, जबकि महाकाव्य आदि की घटनाएँ वाक्य के पहले रूप के अनुसार वर्तमान कालबोध से हटकर ही सामने आती हैं ।

1.1.4.9. विधा की संघटना का नूतन परिवेश :-

समसामयिक जीवन से अधिक संपर्क : उपन्यास अपने कथानक व पात्रों को अधिक से अधिक सजीव रूप में प्रस्तुत करने के लिए समसामयिक जनजीवन व समाज से ही उनका चयन करता है ।

1.2. उपन्यास और औद्योगिक समाज :-

उपन्यास ऐसी कला है जिसमें मनुष्य सामाजिक और ऐतिहासिक दृष्टि निरूपित होकर सामने आता है। यह सच है कि दूसरे कला रूपों और साहित्य रूपों की तुलना में उपन्यास का स्वरूप समाज पर अधिक निर्भर होता है और उसका विकास समाज के इतिहास के साथ होता है। लेकिन यह भी सच है कि वह एक कला है, केवल सामाजिक दस्तावेज नहीं, इसलिए सामाजिक यथार्थ जीवन के अनुभव और इतिहास की गति रचनाकार की सृजनशीलता से पुनर्रचित होकर ही उपन्यास में आता है।

किसी व्यक्ति की विचारधारा केवल उसके कथनों और घोषणाओं के आधार पर नहीं जानी जा सकती। विचारधारा तो व्यक्ति के सामाजिक जीवन के क्रिया व्यापार में व्यक्त होती है और उसी के सहारे जानी जा सकती है। रचनाकार की विचारधारा उसके रचना कर्म में व्यक्त होती है और उसी के आधार पर उसे समझा जा सकता है। केवल उसके कथनों के आधार पर नहीं। रचनाकर्म का प्रमाण रचना ही है। रचना-कर्म एक विचारधारात्मक कर्म है। रचना उसका फल है। रचनाकार की विचारधारा को जानने का विश्वसनीय साधन उसकी रचना ही है।

समाज से उपन्यास के सम्बन्ध के अनेक स्तर और रूप हैं। उपन्यास के उदय और विकास के लिए अर्थात् उसके अस्तित्व के लिए कुछ ऐसे भौतिक और विचारधारात्मक आधारों की जरूरत थी, जो औद्योगिक युग में ही विकसित हुए। उपन्यास के अस्तित्व के लिए अनिवार्य प्रेस, प्रकाशन और पत्र-पत्रिकाएँ औद्योगिक युग के वैज्ञानिक विकास की देन है तो उसके लेखक और पाठक के रूप में क्रियाशील मध्यवर्ग पूंजीवादी सामाजिक संरचना का परिणाम है। इन भौतिक आधारों के साथ-साथ विचार-धारा के स्तर पर व्यक्तिवाद, धर्मनिरपेक्ष जीवन दृष्टि और यथार्थवादी विश्वदृष्टि की जरूरत थी, जो औद्योगिक युग की विकासवादी चेतना की उपज है। उपन्यास की रचना दृष्टि में मनुष्य की स्वतंत्र सत्ता, व्यक्ति की महत्ता और मानवीय संबंधों की गरिमा को तभी केन्द्रीय महत्व मिला, जब औद्योगिक समाज का मानस अपने अनुभव और तर्क के अलावा किसी अलौकिक शक्ति की सत्ता को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं था। यह मध्ययुग में संभव न था। उपन्यास मध्ययुगीनता के विद्रोह की अभिव्यक्ति करनेवाला साहित्य रूप है।

उपन्यास अपने पाठकों को जीवनमूल्यों के बीच चुनाव का संकेत देता है, उसकी सहानुभूतियों का विस्तार करता है और जीवन की कला भी सिखाता है। इस तरह उसका एक नैतिक आयाम है। यह नैतिक आयाम औद्योगिक युग का ही है।

उक्त कथन से हम यह कह सकते है कि उपन्यास का विकास औद्योगिक समाज के विकास से जुडा हुआ है । वर्ग विभक्त समाज का विकास, शोषित वर्ग में चेतना, आर्थिक परिवेश में परिवर्तन, परिवर्तित नैतिक मान्यताएँ पारिवारिक स्थिति में परिवर्तन और जातिगत बन्धनों से मुक्ति आदि जो उपन्यास विधा के उद्‌भव के प्रबल तत्व है, वे सब औद्योगिक समाज की ही देन है । अत: उन तत्वों पर संक्षिप्त रूप में चर्चा करना अनुचित नहीं होगा ।

1·2·1· वर्गविभक्त समाज का विकास :-

औद्योगीकरणजन्य संस्कृति ने समाज को तीन वर्गों में विभाजित कर दिया है - उच्च, मध्य व निम्न वर्ग । यह वर्ग-विभाजन पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था का परिणाम है । उच्चवर्ग यांत्रिक सुविधाओं का लाभ उठाकर विलासी हो गया है । मध्यवर्ग झूठी मर्यादा के कारण खोखला हो गया है । "यह वर्ग झूठी मर्यादा का शव कंधे पर लादे घूमता है ।"[1] निम्नवर्ग का आर्थिक स्तर इतना गिरा हुआ है कि पेट की समस्या के अतिरिक्त उसका अन्य बातों पर ध्यान नहीं जाता । यांत्रिक सभ्यता ने अर्थ को अधिक महत्त्व दिया है जिससे आज सारे सम्बन्ध आर्थिक

1· हिन्दी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा - डॉ·रामदरश मिश्र - पृ· 51·

स्तर के आधार पर निर्धारित होने लगे हैं। परम्परागत मूल्यों के प्रति अनास्था यान्त्रिक संस्कृति का चिह्न है। यान्त्रिक सभ्यता ने विविध धर्म, जाति और सम्प्रदायों के सम्मिलित रूप से शहरों का निर्माण किया है। परम्परागत संगठन समाप्त हो गए हैं। जाति-व्यवस्था का स्थान अर्थ पर आधारित विभिन्न वर्गों ने ले लिया है।

1·2·2· शोषित वर्ग में चेतना :-

औद्योगिक समाज में शोषक और शोषित वर्ग दृष्टिगत होते हैं। शिक्षा के प्रसार से शोषित वर्ग में चेतना आ गई है। " ट्रेड यूनियन " मजदूर संघ आदि संगठन इसी चेतना के प्रतीक हैं। यंत्र-युग ने आर्थिक विषमताओं को जन्म दिया है। इन विषमताओं के कारण व्यक्ति कुण्ठित तथा विद्रोही बन गया है। अमृतलाल नागर ने यन्त्रीकरण जन्य संस्कृति को नवयुवक की कुण्ठा के परिप्रेक्ष्य में इस प्रकार स्पष्ट किया है, " मेरे सामने कुण्ठित नौजवान भारत बैठा था, जो बेकार है दरिद्रता से नफरत करता है, उन्नतिशील जीवन चाहता है और न मिलने पर दुत्कारे जाने पर अपने कुण्ठित आत्मसम्मान के लिए जीवन सुरक्षा के लिए कितना अविवेकी, क्रुद्ध और अन्धस्वार्थी हो जाता है। यह अभी अपराधी नहीं विकृत विद्रोही भर है।" [1]

1· अमृत और विष, अमृतलाल नागर – पृ· 700

1·2·3· आर्थिक परिवेश में परिवर्तन :-

यान्त्रिकता के कारण आर्थिक परिवेश में परिवर्तन आया है । स्त्री भी आज आर्थिक रूप से स्वतन्त्र होना चाहती है क्यों कि भौतिक सुखों की अदम्य लालसा तथा समाज में विशिष्ट पद-प्राप्ति की आकांक्षा यांत्रिक संस्कृति का ही एक पहलू है । यंत्र-युग की अर्थ-व्यवस्था ने कार्य-क्षेत्र को विस्तृत बना दिया है । शिक्षा-यातायात की सुविधाओं ने जाति-पांति के बन्धन शिथिल कर जीविकोपार्जन की सुविधा प्रदान की है । " अन्धेरे बन्द कमरे " की नीलिमा खा-पीकर सन्तुष्ट नही है ।[1] जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में असंतुष्टि यांत्रिक युग की ही देन है इस संस्कृति में मध्यवर्ग सबसे अधिक त्रस्त है । सामाजिक और आर्थिक संघर्ष से प्रभावित यही वर्ग है । नैतिक मूल्यों और जीवनगत आदर्शों के प्रति यही वर्ग आस्थाहीन है । [2]

1·2·4· परिवर्तित नैतिक मान्यताएँ :-

परिवर्तित नैतिक मान्यताएँ भी औद्योगिक युग की ही देन है । धर्म में परिवर्तन आया तो नैतिकता के परम्परागत मूल्य विश्रृंखलित हो गए । वर्तमान समय में " नैतिक मूल्यों की समस्या और भी विकट इसलिए हो गई है कि प्राचीन शास्त्रीय, धार्मिक अथवा ईश्वर

1· अन्धेरे बन्द कमरे, मोहन राकेश - पृ· 511·

2· हिन्दी उपन्यास - डॉ· चण्डी प्रसाद जोशी - पृ· 415·

संभूत धार्मिकता इस युग में क्रमशः क्षीण होती जा रही है । और आज नैतिकता का आधार एक मानव संभूत नीति में खोजा जा रहा है । जो दायित्व अब तक ईश्वर या धर्म पर था, वह अब मानव ने स्वयं ओढ़ लिया है ।"[1] यही कारण है कि "सुनीता" की सुनीता पति के प्रति श्रद्धा रखते हुए भी हरिप्रसन्न को शरीर सौंपने के लिए तैयार हो जाती है ।[2] यह विशृंखलित मान्यताएँ औद्योगिक युग के कृत्रिम-सी जान पड़ने वाली संस्कृति के कारण हैं।

1·2·5· पारिवारिक स्थिति में परिवर्तन :-

पारिवारिक आकार यान्त्रिक विस्तार से छोटा होता जा रहा है जिसका परिणाम विघटन के रूप में दिखाई देता है । इस विघटन से नागरीकरण एवं आवास की समस्या उत्पन्न हुई है ।

1·2·6· जातिगत बन्धनों से मुक्ति :-

उद्योगों में मशीनीकरण के कारण जातिगत बन्धन ढीले हुए हैं किन्तु साथ ही वर्ग के आधार पर नवीन संगठन बन गए हैं । यन्त्रीकरण जन्य संस्कृति ने सामाजिक संस्थाओं को बहुत प्रभावित किया है । व्यक्तिवादी भावना का विस्तार हो रहा है ।

1· आत्मनेपद - अज्ञेय - पृ· 167·
2· सुनीता - जैनेन्द्र - पृ· 150-51·

पारिवारिक संघटन विघटित हो गए हैं । प्रेम तथा भावना का आधार धन ने ले लिया है । " मनुष्य के रूप " में बड़ी भाभी के अहं को इस बात से चोट लगती है कि सभी के लिए एक सी साड़ियाँ क्यों लाई गई ।[1] मृदुला गर्ग के " वंशज " की सविता अपने पति तथा श्वसुर से धन के लालच में सम्बन्ध रखती है । अन्त में उसकी यह धन-लोलुपता इतनी बढ़ जाती है कि वसीयतनामें में सुधीर (पति) के नाम सारी जायदाद पढ़कर उसे पागल करार देकर पागलखाने भिजवा देती है ।[2] यंत्र युग की संस्कृति भी यंत्र के समान हृदयहीन जान पड़ती है । यन्त्रों का प्रभाव संबन्धों पर पड़ा है ।

अन्त में इस संस्कृति ने वर्ग-भावना को मुखरित किया है । इलाचन्द्र जोशी के " निर्वासित " की एक महिला यात्री महीम को (यंत्र युग जनित विशेष वर्ग) लिखती है कि देश प्रमुखतः पाँच वर्गों में बांटा हुआ है । प्रथम साम्राज्यवादी अधिकारी वर्ग है, जिसके लिए इस देश की जनता का कोई अस्तित्व ही नहीं है । दूसरा पूँजीपति वर्ग है जो रक्त और मांसपिण्ड के संचय में व्यस्त रहता है । तीसरा उच्च मध्यवर्ग है जो अपने सम्मान की रक्षा के लिए प्रदर्शन-प्रिय हो गया है । चौथा, निम्न वर्ग है और पाँचवा जनसाधारण का वर्ग है जो राजनैतिक एवं सामाजिक संघर्षों से निर्जीव बन गया है ।"[3]

---

1. मनुष्य के रूप - यशपाल - पृ. 96.
2. वंशज - मृदुला गर्ग - पृ. 236 - 237.
3. निर्वासित - इलाचन्द्र जोशी - पृ. 364 - 365.

इस प्रकार औद्योगिक विकास ने सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक जीवन को प्रभावित किया है । उपन्यास के मूल में जो मध्यवर्ग है उसका विकास भी इस औद्योगिक समाज में ही हुआ । अतः उपन्यास और औद्योगिक समाज का अंतः सम्बन्ध गहरा और अविभाज्य है ।

1.3. उपन्यास और मध्यवर्ग :-

भारतीय उपन्यास साहित्य के आविर्भाव के मूल में जो सामाजिक शक्तियाँ काम कर रही थीं, वे ही मध्यवर्ग के निर्माण का भी कारण थीं । अतः उपन्यास कला के आविर्भाव की समस्या को उचित रूप से ग्रहण करने के लिए आवश्यक है कि यह देखा जाए कि भारत में आधुनिक मध्यवर्ग का उदय कब और कैसे हुआ तथा उनकी प्रेरकशक्तियां क्या थीं ।

मध्यवर्ग की परिभाषा एवं विचारणा प्रस्तुत करते समय प्रायः विद्वानों को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । कुछ ने प्रायः मध्यवर्ग में समाज के कौन-कौन से समुदाय सम्मिलित हैं, इसका निर्देश मात्र देकर अपने दायित्व की इति मानली है । कुछ अन्यविचारकों ने जीविका के आधार पर इस वर्ग की परिभाषा देने का प्रयत्न किया है ।

सैद्धांतिक विचार के आधार पर जब इस मध्यवर्ग शब्द पर विचार करते है तो हम उसको स्वतंत्र सत्ता नही पाते। वह दो छोरों के बीच की स्थिति की ओर संकेत करता है, अत: मध्यवर्ग की व्याख्या के लिए उच्च व निम्न वर्गों का अध्ययन भी अत्यन्त आवश्यक है। मध्यवर्ग की कुछ परिभाषाएँ निम्नांकित है --

आक्सफोर्ड डिक्शनरी में मध्यवर्ग का परिभाषा इस प्रकार दिया गया है -- **"The social class between the upper and lower including professional and business people." 1**

" मध्यवर्ग समाज के उच्च और निम्न श्रेणी के बीच का वर्ग है जिस में व्यावसायिक, व्यापारिक अथवा क्रय विक्रय करने वाले लोग शामिल होते है।"

हिन्दी साहित्य कोश में मध्यवर्ग की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है -- " पूँजीपति आर्थिक व्यवस्था ने समाज को इतना जटिल बनादिया है कि एक मध्यवर्ग की भी आवश्यकता हुई जो उस जटिल व्यवस्था के संघटन सूत्र को संभाल सके। इस वर्ग में नौकर पेशा, शिक्षक, क्लर्क और अन्य साधारण लोग आते है।" 2

---

1. **The oxford Reference Dictonary - Ed. by Joyce Hawkings - 1987.**
2. हिन्दी साहित्य कोश - संपादक धीरेन्द्र वर्मा - पृ. 564.

मार्क्स के अनुसार समाज के विकास का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है । उनके अनुसार प्रत्येक युग में प्रमुखत: दो ही वर्ग रहे । समाज के एक छोर पर उन व्यक्तियों का समूह रहता आया है, जो उत्पादन व्यवस्था के स्वामी होते है और जिन्हें शोषकवर्ग कहते हैं । दूसरे छोर पर उन व्यक्तियों का समूह रहता आया है, जो अपने श्रम के आधार पर उत्पादन तो करता है किन्तु उसका नाम मात्र भी हिस्सा नहीं पाता, उन्हे शोषित वर्ग कहते हैं । उपर्युक्त दोनों स्थितियों के बीच में जीवनयापन करने वाले व्यक्तियों के समूह को स्वभावत: " मध्यवर्ग " नाम से अभिहित किया जाता है ।[1]

आधुनिक भारतीय मध्यवर्ग का जन्म वस्तुत: सामंतवाद के गर्भ से हुआ है और उसी का एक वर्ग पूँजीवादी युग में पूँजीपति बन बैठा है । मध्यवर्ग के विकास को समझने के लिए अंग्रेजी राज्य की स्थापना के पूर्व भारत की आर्थिक स्थिति पर दृष्टि डालना उचित होगा ।

शेरशाह के शासनकाल से ही सड़कों नहरों आदि यातायात के साधनों के निर्माण के फलस्वरूप धीरे-धीरे शहरों में व्यापारी वर्ग उभरता आ रहा था । शेरशाह ने व्यापार की उन्नति के लिए तीन हजार घोड़े, डाक व्यवस्था के लिए रखें थे तथा सत्रह सरायें

1· हिन्दी उपन्यास का विकास और मध्यवर्गीय चेतना - बीना श्रीवास्तव - प्र·सं· 1981 - पृ· 14·

सौदागरों के लिए बनवाई थीं । मुगल शासकों ने भी तत्कालीन व्यापार की उन्नति में काफी रुचि दिखलाई । सुकेंद्रित व्यवस्था होने के कारण मुगल शासन में सारे देश में सुनिश्चित बाजार भाव थे । मुगल शासकों ने व्यापार को उन्नति में रुचि दिखलाने के साथ-साथ कई उत्पादन-केन्द्रों को स्थापना भी को इस सामंतीयुग में प्रत्येक गांव एक स्वतंत्र आर्थिक इकाई के रूप में था । गांव में हो दैनिक उपयोग को वस्तुओं का उत्पादन होता था तथा सामग्रियों के परस्पर आदान-प्रदान से ही उनका काम चलता था । जाति के अनुसार पेशे बंटे हुए थे । उस समय व्यापार के केन्द्र शहर थे । बड़े-बड़े शहर नदियों के किनारे बसे हुए थे । मुगल शासकों ने नहरों, सड़कों आदि का निर्माण करके आवागमन के साधनों में उन्नति करने की चेष्टा की । इसके फलस्वरूप धीरे-धीरे शहरों में व्यापारीवर्ग समृद्ध होने लगा । यह व्यापरिक संबन्ध केवल एक शहर से दूसरे शहर तक ही सीमित न रह कर क्रमश: दूसरे देशों से भी बनने लगा । उभरते हुए इसी मध्यवर्ग का परिणाम था कि भारतवर्ष 17 वीं शताब्दी तक आते-आते उद्योग-धंधों के क्षेत्र में संसार के सबसे उन्नतिशील देशों में समझा जाने लगा । मध्यवर्ग का यह व्यापारी समुदाय ही वस्तुत: पूंजीवादी क्रांति की जलती मशाल लेकर हर देश में पहले सामने आता है । रूढ़िग्रस्त सामंतवाद को तोड़ने का सबसे जबरदस्त कारण इस मध्यवर्ग का बढ़ता हुआ व्यापार एवं उसके प्रसार की आवश्यकता होता है ।

पूँजीवादी युग तक आते आते उत्पादन व्यवस्था बदलने से सामाजिक संबन्धों में परिवर्तन हुआ तथा सामंती युग की तुलना में उनमें जटिलता एवं दुरूहता भी आई । पूँजीवादी युग में एक छोर पर औद्योगिक यंत्र और प्राकृतिक साधनों के स्वामी पूँजीपति हैं और दूसरे छोर पर मजदूरों का वर्ग है, जो उच्च वर्ग को अपना श्रम विक्रय करने के लिए बाध्य है । इस युग में मध्यवर्ग की दो प्रमुख श्रेणियाँ दिखाई पड़ती हैं — एक तो उन व्यक्तियों का समुदाय, जो उत्पादन यंत्रों के प्रयोग में विशेष निपुणता प्राप्त हैं और जिनकी निपुणता का पूँजीपति अधिक से अधिक लाभ उठाते हैं । इस श्रेणी में इंजीनियर, मेकैनिक, क्रय-विक्रय में सहायक अर्थशास्त्री आदि आते हैं । दूसरी श्रेणी का संबन्ध उन लोगों से है जिनका संपूर्ण ज्ञान समाज के लिए है जैसे शिक्षक, डाक्टर, वकील, साहित्यकार आदि ।

1·3·1· मध्यवर्ग का विभाजन :-

मध्यवर्ग अपने प्रादुर्भाव के समय एक संघटित वर्ग था । उसके सभी व्यक्तियों में एक रूपता एवं उनके संबन्धों में एकतानता थी । परन्तु जैसे औद्योगिक विकास के साथ-साथ पूँजीवाद पनपता गया यह एकतानता खंडित होती गई और यह कई श्रेणियों में विभाजित हो गया । इसके साथ ही साथ यह भी सत्य है कि

किसी एक उत्पादन-व्यवस्था से संबंधित वर्ग संघर्ष के बीच में पनपने वाला मध्यवर्ग अपनी मूल प्रकृति में दूसरी उत्पादन व्यवस्था संबंधी वर्ग संघर्ष के बीच में पनपने वाले मध्यवर्ग की रूप प्रकृति से भिन्न होगा। एक की संघटना और कार्यफलन दूसरे के कार्यफलन से भिन्न होंगे। अतः समाजशास्त्री आजकल उसे मध्यवर्ग के स्थान पर मध्यम श्रेणी के नाम से अभिहित करना अधिक तर्कसम्मत मानते हैं।

इतिहास के संदर्भ में यह भी कहा जा सकता है कि एक युग के मध्यवर्ग का एक अंश रूपांतरित होकर दूसरे के शोषक वर्ग में रूपांतरित भी हो सकता है। जैसे सामंतवाद के गर्भ में पनप रहे मध्यवर्ग का व्यापारिक समुदाय ऐतिहासिक कारणों के फलस्वरूप क्रमशः पूंजीवादी व्यवस्था के शोषक वर्ग में ढलता गया और जिसकी अंतिम परिणति पूंजीपति के रूप में सामने आई तथा सामंती व्यवस्था के शोषक वर्ग, अर्थात् सामंत राजे-महराजे तथा राजपंडित आदि इस बदलती हुई व्यवस्था के संदर्भ में मध्यवर्ग की श्रेणी में क्रमशः आते गए।

बीना श्रीवास्तव जी के अनुसार आधुनिक मध्यवर्ग के इतिहास के विषय में यह भी कहा जा सकता है कि पूंजीवादी व्यवस्था के संदर्भ में इस मध्यवर्ग को तीन मोटे स्तरों में विभाजित किया जा सकता है।[1]

---

1. हिन्दी उपन्यास का विकास और मध्यवर्गीय चेतना - बीना श्रीवास्तव - प्र.सं. 1981 - पृ. 16.

1· पूर्व पूँजीवादी मध्यवर्ग ‖ सामंतवादी के गर्भ में पनप रहा विकासशील व्यापारी वर्ग ‖

2· पूँजीवादी व्यवस्था का मध्यवर्ग

3· उत्तर पूँजीवादी मध्यवर्ग

समग्रत: उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि जहाँ भी वर्ग संघर्ष को समझने के लिए समाज को मुख्यत: शोषक एवं शोषित इन दो प्रमुख वर्गों के रूप में - सत्ता स्वीकार की जायेगी, वहीं पर मध्यवर्ग की भी सत्ता स्वीकार करनी पड़ेगी । शोषक एवं शोषित वर्ग, वर्ग-संघर्ष के दो छोर होते हुए भी समाज के व्यापक संदर्भ में मात्र दो ध्रुव ही माने जायेंगे । सामाजिक प्रक्रिया के रूप में ये केवल दो विरोधी शक्तियों का परिचय देंगे, लेकिन सामाजिक प्रकृति इससे कहीं अधिक जटिल होती है क्योंकि सामाजिक व्यापार का संदर्भ इन दो छोरों के बीच की स्थिति को समाहित किए रहता है, जिसकी यथार्थता से इनकार करना वास्तविकता से ही मुखमोड़ना होगा । मध्यवर्ग स्थिति वस्तुत: दो छोरों के बीच की वह वास्तविक स्थिति है, जिसकी प्रवृत्तियाँ इन दो छोरों की ओर मुड़ी हुई प्रतीत होते हुए भी अपनी सामाजिक यथार्थता में अलग स्वतंत्र सत्ता रखती हैं ।

1·3·2· मध्यवर्ग के विकास में योग देने वाले मूलभूत तत्व :

1·3·2·1· राष्ट्रीय नवजागरण :

1·3·2·1·1· सांस्कृतिक नवजागरण :-

ब्रिटिश साम्राज्य की नीति मिशिनरियों के प्रचार, शोषण से उत्पन्न भारत की अतिशय निर्धनता और उससे आविर्भूत अंधविश्वास एवं धार्मिक जड़ता आदि ने सामाजिक जीवन में कुछ ऐसी विषम परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दी थी जिनका विरोध होना नितांत स्वाभाविक था और यह कार्य सांस्कृतिक पुनर्जागरण के रूप में हुआ भी । तत्कालीन विषम परिस्थितियाँ आंतरिक असंगतियाँ एवं अंतर्विरोध सुधारकों को तीव्र प्रेरणा प्रदान कर रहे थे, इनके साथ ही साथ उनके सम्मुख पाश्चात्य प्रगति का इतिहास एवं उनके अनुरूप सामाजिक मूल्य भी थे । उन्होंने परंपरा शक्ति एवं धार्मिक प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए तत्कालीन परिस्थितियों से प्रेरित होकर इतिहास संगत सामाजिक मूल्यों को स्वीकार किया और जनता की चिन्तवृत्ति को उदबुद्ध एवं समयानुकूल मूल्यबोध से परिचित करने का प्रयास किया । अत: बुर्जआ वर्ग एवं उनकी क्रांति अभी प्रकाश में आने भी नहीं पाई थी कि भारत ने मध्य - वर्गीय मूल्यों को अपनाना प्रारंभ कर दिया था । एक महत्व पूर्ण तथ्य यह भी है कि पुनर्जागरण न केवल मध्यवर्ग के सदस्यों द्वारा किया गया वरन् इसका क्षेत्र भी प्रारंभ में मध्यवर्ग के सदस्यों तक ही सीमित रहा ।

1·3·2·1·2· (ख) राजनीतिक नवजागरण :-

राजनीतिक नव जागरण-राष्ट्रीय भावोन्मेष के साथ संबन्धित है । यह तो नहीं कहा जा सकता है कि प्राचीन काल में भारत में राष्ट्रीय एकता की भावना कभी व्याप्त ही नहीं थी, पर इसमें सन्देह नहीं कि जिस रूप में 19 वीं शताब्दी में राष्ट्रीयता की भावना का अंकुरण हुआ, उसकी रूप-प्रकृति उससे अन्यथा भिन्न थी । राष्ट्रीय नवोन्मेष के लिए यह आवश्यक है कि देश में जनसामान्य राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक ऐक्य की पृष्ठभूमि हो । उन्नीस वीं शताब्दी का सांस्कृतिक-पुनर्जागरण इसीलिए अन्य सभी विगत सांस्कृतिक उन्मेषों से भिन्न था क्यों कि उनकी आधार भूमि के रूप में आर्थिक एवं राजनीतिक भावना की एकता का मनोबल था ।

19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारतवर्ष में भी बुर्जुआ वर्ग पनपने लगा था । यहाँ पर भी औद्योगिक प्रसार प्रारंभ किया जा चुका था । पाश्चात्य शिक्षण एवं अंग्रेजी शासनावस्था के फलस्वरूप वकील, डाक्टर, प्रोफेसर, टेक्नीशियन आदि का उभरता वर्ग क्रमश: धनी होता जा रहा था । वह भी अपनी पूँजी व्यापारियों के साथ औद्योगिक व्यवसाय में लगाने के लिए उद्यत था । लेकिन उस भारतीय औद्योगिक विकास के पक्ष में अंग्रेजी शासन नहीं था । 1853 में पहली सूती कपड़ों की मिल की स्थापना बंबई में की गई और बहुत कम समय में 1880 तक

उनकी संख्या डेढ़ सौ से अधिक हुई थी । लेकिन भारतीय अर्थ पर आधारित उस औद्योगिक प्रसार में विदेशी शासन अनेक बाधाएँ उत्पन्न कर रहा था । अत: विदेशी शासन के विरोध में बुर्जुआ वर्ग के भीतर धीरे-धीरे असंतोष की भावना जागृत होने लगी जिसने उन्हें एकता के सूत्र में बाँध दिया । उनका अपना संगठन भी बनता गया ।

एक ओर अंग्रेजों द्वारा भारतवासियों को उच्च पद न देने की नीति दूसरी ओर पाश्चात्य शिक्षा से मंडित नए बौद्धिक वर्ग का अभ्युदय एवं प्रसार एक नए अंतर्विरोध एवं असंतोष की भावना की सृष्टि कर रहा था । यह शिक्षित मध्यवर्ग पाश्चात्य शिक्षा के प्रजातंत्रीय नागरिकता से भी भली-भाँति परिचित रहता है, अत: बेकारी के समय उसकी यह नागरिकता की भावना, उससे असंतोष को न केवल तीव्रता प्रदान करती थी, वरन उसको वैधानिक आधार भी देने में समर्थ थी । यह असंतोष की भावना, उस समय के बार-बार पड़ने वाले अकालों एवं दुर्भिक्षों से और भी तीव्र हो उठी । अकाल के फलस्वरूप विद्रोह की भावना इस सीमा तक फैली कि जनता विद्रोह तक करने को उद्यत हो उठी । दमन के किसानों का 1875 का विद्रोह उसमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है । विभिन्न स्तरों पर व्याप्त मध्यवर्गीय घोर निराशा, तीव्र असंतोष एवं उससे आविर्भूत विद्रोह भावना के परिणाम स्वरूप राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म हुआ ।

पहले कांग्रेस के सदस्य अंग्रेजों से सहकारिता की भावना से व्यवहार करते थे । कांग्रेस 1885-1905 के अपने काल में जिन सुधारों के लिए अंग्रेजों से आग्रह कर रही थी, वे सभी स्वप्न अंग्रेजों द्वारा क्रमशः खंडित कर दिए गए । इनका परिणाम यह हुआ कि " समझौता " और " सहकारिता " की भावना को छोड़कर कांग्रेस ने पूर्ण राष्ट्रीय चेतना का आह्वान किया । 1910 तक आते आते वह केवल उच्च मध्यवर्ग की संस्था नहीं रह गई वरन उसने अपनी दृष्टि का प्रसार निम्न मध्यवर्ग तक किया । गांधी के आने के पश्चात तो वह जन सामान्य की संस्था बन गई ।

1·3·2·2· शिक्षा प्रभाव :-

आधुनिक शिक्षा के प्रसार में 1· ईसाई मिशनरी 2· अंग्रेजी शासन व्यवस्था 3· प्रगतिशील भारतीय समाज सुधारक आदि तीन प्रमुख तत्वों के योग को स्वीकार करना पड़ेगा । ईसाई मिशनरी की दृष्टि में अपने धर्म प्रसार के लिए जनता से संबंध स्थापित करना आवश्यक था । अतः उनके शिक्षा प्रसार का उद्देश्य धर्म को जन साधारण की भाषा के माध्यम से सुलभ और सुगम बनाना था । अंग्रेजों ने भारत जैसे विस्तृत भूभाग पर शासन के लिए जिस व्यवस्था के जटिल जाल का निर्माण किया था, उसके लिए अनेक भारतीय शिक्षित युवकों की आवश्यकता थी, जो उनके रीतिरिवाज से ही नहीं वरन उनकी आधुनिकतम शिक्षा से भी परिचित हों । व्यापार के विस्तार के लिए भी अंग्रेजों को

क्लर्क, मैनेजर और एजेंटों की आवश्यकता का अनुभव हो रहा था। अतः भीतर से न चाहते हुए भी, बाह्य परिस्थितियों के कारण उन्हें आधुनिक शिक्षा का प्रसार करना पड़ा। भारतीय जीवन में वर्षों की दासता से उत्पन्न जो जड़ता, धार्मिक रूढ़ियाँ एवं चिंतन में जो गत्यावरोध उत्पन्न हो गया था, स्वयं उद्बुद्ध भारतीय उसे दूर करने के लिए प्रयत्नशील हो उठे थे। ईसाई मिशनरियों ने जिस धर्म परिवर्तन की नीति को स्वीकार किया था, उसका सामना करने के लिए भी यह आवश्यक हो गया था कि भारतीय संस्कृति एवं पाश्चात्य ज्ञान का सम्यक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता। अतः यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि बौद्धिक मध्यवर्ग वस्तुतः इन तीन स्रोतों का परिणाम है।

ईसाई मिशनरी स्पष्ट स्वरों में यह घोषित करती थी कि विश्व में कोई ऐसा सत्य नहीं, जिसका प्रत्यक्ष अंतर्विरोध हिन्दू धर्म से लक्षित न होता हो, अतः हिन्दू धर्म को मूल से उखाड़ फेंकना ही उचित है और यह बात केवल ईसाई धर्म के ज्ञान के माध्यम से ही संभव है।

इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि या तो इसकी प्रतिक्रिया में शुद्ध भारतीय परंपराओं के आधार पर शिक्षा प्रसार की योजना को कार्यान्वित करने को भारतीय चेतन्यशील हुए अथवा पाश्चात्य शिक्षा की नई रोशनी में

भारतीय परंपराओं एवं शिक्षा की समस्याओं की ओर देखने की ओर प्रवृत्त हुए । बाद में ईसाई मशनरियों की भाँति शिक्षा के धार्मिक आधार पर प्रतिष्ठित कर प्राचीन साहित्य के उत्थान पुनरुज्जीवन एवं प्रसार के निमित्त उसी अर्थ समाज के तत्वावधान में लाला मुंशीराम ने 1902 में " गुरुकुल कांगडी " की स्थापना की । इसके बाद क्रमश: पूरे उत्तर भारत में इस तरह के विद्यालय खुलने लगे ।

1·3·2·3· प्रेस एवं पत्रकारिता का प्रभाव :-

प्रेस एवं समाचारपत्रों के उद्भव एवं विकास का समाज पर व्यापक प्रभाव पड़ा । जनता में सुधार की तीव्र भावना जागृत होती गई । साहित्य सबके लिए सुलभ होने लगा । संपादक, सुधारक आदि का जनता से व्यक्तिगत संबंध स्थापित हो गया । विचार, सामाजिक शक्ति के रूप में कार्य करने लगे । जनता साक्षरता की ओर उन्मुख हुई और शासनव्यवस्था के विरोध में आकर अनेक पत्र राष्ट्रीयता संग्राम के स्वयं अग्रदूत बन बैठे । ये प्रवृत्तियाँ और भी प्रभावशाली रूप में देखने को मिलतीं है, यदि उनके मार्ग में अनेक रोडे न अटके होते । एक ओर शासना - वस्था प्रेस संबंधी अनेक कानून बनाकर उनकी गति को अवरुद्ध कर रही थी, दूसरी ओर पत्रों का एकाधिपत्य धनी एवं पूँजीपतियों के

हाथ में चला जा रहा था । एक ओर जनता इतनी निर्धन थी कि पत्रों एवं पुस्तकों को खरीद कर पढ़ने में असमर्थ थी तो दूसरी ओर समाज में व्यापक निरक्षरता थी । अत: पत्रों का वांछनीय प्रभाव तो न पड़ सका, फिर भी पत्रों के सामाजिक मूल्य को एकदम नकारा नहीं जा सकता ।

1·3·3· उपन्यास के उदय का सामाजिक आधार मध्यवर्ग :-

मध्यवर्ग से उपन्यास को अलग करके नहीं देखा जा सकता क्यों कि उपन्यास कला के जन्म के मूल में वह यथार्थवाद काम कर रहा था, जिसका आविर्भाव मध्यवर्ग की अपनी आवश्यकता और मूल्यों को लेकर हुआ था । अत: बौद्धिकता, तर्कसम्मत घटनाक्रम, व्यक्ति एवं समाज का संघर्ष, सामान्य जीवन पर दृष्टि, व्यक्ति की महत्ता, अतीत के विरोध में वर्तमान पर बल, कल्पना के स्थान पर जीवन की यथार्थता का आग्रह, प्रकृति एवं समाज को पराभूत कर अग्रसर होने की आकांक्षा, जन्मगत अधिकारों के स्थान पर वर्गगत उपलब्धियों द्वारा समाज में प्रतिष्ठित होने का दावा ये सभी प्रवृत्तियाँ मूलत: उस मध्यवर्ग की हैं जो सामंतवाद के गर्भ से फूटने के लिए छटपटाता है और अंतत: जो पूंजीवाद में अपना विकास पाता है । यह मध्यवर्ग व्यापारियों का वह वर्ग है जिसका सामाजिक परिवेश सामंतवाद है और जो सामंतवादी व्यवस्था के गर्भ में पनपने वाले शिशु के समान है जिसे समाज - शास्त्रियों ने औद्योगिक युग-पूर्व व्यापारिक वर्ग कहा है ।

विकास के प्रवाह में एक समय ऐसा आता है जब वस्तु एवं भाव आदि की सत्ता में एक साम्यावस्था होती है। यह द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से स्पष्ट होता है। यह साम्या - वस्था "वाद" ﴾ थीसिस ﴿ कहलाती है। किन्तु कुछ समय के पश्चात इसी के गर्भ से कुछ विरोधाभास की असंगतियाँ उत्पन्न होने लगती हैं, जो अपनी पूर्व स्थिति के विरोध में विकसित होती हजाती हैं। असंगतियों के इस विकास की चरम परिणति को "प्रगतिवाद" कहते हैं।

उपन्यास कला का आविर्भाव के समय तक आते आते सामंतवाद के मध्यवर्ग का व्यापारिक समुदाय प्रगतिवाद की स्थिति में आता है। उपन्यास साहित्य के जन्म के मूल रूप में इसी मध्य - वर्ग की प्रवृत्तियाँ काम कर रही हैं, जिसका ऊपर निर्देश किया जा चुका है। उपन्यास का सामाजिक आधार मध्यवर्ग का वह रूप माना जा सकता है जो औद्योगिक युग पूर्व व्यापारी वर्ग है, साथ ही यह भी निर्विवाद है कि कविता के विरोध में माध्यम के रूप में गद्य का आविर्भाव भी बहुत कुछ उपन्यास के रूप को नियंत्रित करता है। गद्य के प्रसार का इतिहास भी इस बात का साक्षी है कि उसका संबंध भी मध्यवर्ग के व्यापारिक संबन्धों एवं प्रकार्य से जुडा होता है। समाज की जटिलता, बौद्धिकता, व्यक्तिगत समस्याएँ आदि सही ढंग से प्रस्तुत करने के हेतु गद्य का प्रादुर्भाव हुआ। इसके पूर्व पद्य ही साहित्य के माध्यम के रूप

में प्रचलित था, किन्तु समाज की समस्याओं, जटिलताओं एवं विचारों को प्रस्तुत करने में काव्य समर्थ नही था, अत: उसके विरोध स्वरूप साहित्य के माध्यम के रूप में गद्य का प्रयोग एक सर्वथा नवीन प्रयोग था । गद्य के जन्म के मूल में भी वे ही कारण मुख्य है जो उपन्यास के लिए है । अन्य भाषाओं के साहित्य का अध्ययन भी इस बात का संकेत देता है कि उपन्यास का जन्म औद्योगिक युगपूर्व व्यापारी वर्ग के आधार पर होता है ।

उक्त कथन से यह स्पष्ट होता है कि गद्य के आविर्भाव के साथ ही साथ उपन्यास का भी साहित्य के क्षेत्र में प्रादुर्भाव हुआ । उपन्यास का सामाजिक आधार वस्तुत: मध्यवर्ग ही है । मध्यवर्ग की धरती में ही उपन्यास को बीज पड़ा, दोनो का संबंध अन्योन्याश्रयी है । वास्तव में ऊपर निर्देशित वर्ग की वे सभी विशेषताएँ उस यथार्थवाद की भी विशेषताएँ है जिसके क्रोड़ से उपन्यास जन्म लेता है ।

1.4. भारतीय उपन्यास का उदय :-

भारतीय भाषाओं में उपन्यास साहित्य का आरंभ गद्य के आरंभ से जुड़ा हुआ है । परन्तु प्राचीन भारतीय भाषाओं के कथा साहित्य में भी इसकी जड़ों का अस्तित्व पाया जाता है । इस विषय को स्पष्ट करते हुए डा.सरोजिनी शर्मा लिखती है --

" भारतीय कथा साहित्य में उपन्यास साहित्य की परंपरा कथा-कहानियों द्वारा गद्य माध्यम को सहर्ष अपनाने के साथ विकसित हुई है। पाश्चात्य संपर्क और तद्जन्य संघर्ष ने प्रबुद्ध भारतीय चेतना को जागृत किया, जिससे भारतीय गद्य साहित्य के विकास को विभिन्न प्रेरणाएँ मिलीं साथ ही इस विकास ने तीव्रता को ग्रहण किया।"[1] प्राचीन काल से भी कुछ भारतीय भाषाओं में गद्य लेखन की परंपरा थी परन्तु यह उपन्यास जैसे आधुनिक विधा के अनुकूल नही थी। बाद में उपन्यास साहित्य के विकास के अनुकूल गद्य का विकास अंग्रेजी शासन काल में हुआ। भारत में द्रविड परिवार की भाषाओं में जैसे कन्नड़, तमिल, मलयालम, तेलुगु आदि भाषाओं में गद्य लेखन की परंपरा प्राचीन काल से भी पाई जाती है और गुजराती, मराठी हिन्दी भाषाओं में मध्ययुग से यह परंपरा पायी जाती है। बाकी भारतीय भाषाओं में 18 वीं शताब्दी के अंत तथा 19 वीं शताब्दी के आरंभ से यह परंपरा शुरू होती है। कश्मीरी, गुजराती, सिंधी, मैथिली जैसी भाषाओं में 20 वीं शताब्दी के द्वितीय दशक से इस परंपरा का उद्भव होता है।

---

1. हिन्दी तथा गुजराती के सामाजिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन " - डॉ. सरोजिनी शर्मा - पृ. 1.

भारत की विभिन्न भाषाओं में गद्य साहित्य के विकास में पाश्चात्यों का योगदान चिरस्मरणीय है । भारत में सर्व प्रथम केरल में पुर्तुगीजवालों ने मिशनरियों की स्थापना की और पुर्तगाली सिखाने के लिए उन्होंने कोचिन में एक पाठशाला की स्थापना की । मुद्राणालय की स्थापना कोचिन और विपिन में 1579 में हुई । इस मुद्रणालय में तमिल और मलयालम की पुस्तकें छापते थे । प्रथम तमिल बाइबिल का अनुवाद 1577 में प्रकाशित हुआ था । 1579 में जूयिष्ट मांशमनिरियों ने क्विलन में और एक मुद्रणालय की स्थापना की और 1679 में पोर्चुगीस-तमिल शब्द कोश का प्रकाशन यहाँ से हुआ था । डा॰एन॰श्रीधरन लिखते है -- " तिलका - प्पियम के समय में ही गद्य का अस्तित्व था, तो भी उसमें प्रवाह नहीं था । सचमुच गद्य-पद्य से भी कठिन था । उसमें केवल टीकायें निकलती थीं । ईसाई प्रचरकों ने सरल भाषा में तमिल बाइबिल का प्रचार किया । इसके लिए मुद्रणालय खोले गये । तमिल में सबसे पहले छपी पुस्तक ईसाई धर्म पर थीं । यही नहीं सब भारतीय भाषाओं में से सबसे पहली पुस्तक तमिल में ही छपी । इसका नाम है " किरिस्तुव वणक्कम " (क्राइस्ट को प्रणाम) "[1] इसके बाद पाश्चात्य विद्वानों के माध्यम से कालांतर में सभी भारतीय भाषाओं पर अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव पड़ा ।

---

1. स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी और तमिल के सामाजिक उपन्यास, डॉ॰एन॰श्रीधरन - पृ॰ 166 - 167॰

उन्नीसवीं शती के अन्तिम चरण में पूरे देश में सांस्कृतिक जागरण का दौर चल रहा था। सामंती समाज की श्रृंखलाएँ टूट चुकी थीं। अंग्रेजी शिक्षा के विकास की गति चाहे जितनी मंद रही हो और उसके उद्देश्य चाहे जितने सीमित रहे हों, उसके व्यापक प्रभाव से देश का शिक्षित समाज बच नहीं सका था। देश में एक सशक्त मध्यवर्ग का उदय हो गया था जो अत्यधिक संवेदनशील था। यह वर्ग राष्ट्रीय एवं सामाजिक भलाई की दृष्टि से सोचने लगा था और यह अनुभव करने लगा था कि सभी दृष्टियों से हमारा देश अत्यन्त हीनावस्था में है, जीवन के सभी क्षेत्रों जैसे राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक में परिवर्तन और सुधार की आवश्यकता है। इसकी पूर्ति के लिए साहित्य को भी एक माध्यम बनाया गया था। फलत: पद्य के विकास के साथ-साथ गद्य का भी विकास हुआ और गद्य की विभिन्न विधाओं जैसे - उपन्यास, नाटक, कहानी आदि का प्रादुर्भाव हुआ।

1·4·1· भारतीय भाषाओं में प्रथम उपन्यास :-

भारतीय भाषा परिषद की ओर से प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका " संदर्भ भारती " में जनवरी - मार्च 1981 के अंक में भारतीय भाषाओं में प्रकाशित प्रथम उपन्यासों की सूची दी गयी है। इसके अनुसार विभिन्न भारतीय भाषाओं में प्रथम उपन्यास की प्रकाशन तिथि, भाषा, लेखक का नाम, उपन्यास का नाम आदि का एक तालिकाबद्ध रूप प्रस्तुत किया गया है और बाद में उनका विवरण भी दिया गया है।

प्रकाशन तिथि	भाषा	लेखक का नाम	उपन्यास का नाम
1857	मराठी	बाबा पदमन जी	यमुना पर्यटन
1858	बंगला	प्यारीचंद मिश्र	अलालेट धरेर दुलाल
1866	गुजराती	नंदशंकर मेहता	करणघेलो
1870	हिन्दी	गोविन्द नारायण	देवरानी जेठानी की कहानी
1872	तेलुगु	नरहरि गोपाल कृष्णम्म चेट्टी	श्री रंगराजु चरित्रमु
1878	उर्दू	रतननाथ सरहार	फसाना-ए-आजाद
1887	मलयालम	अप्पुने इंडाडि	कुन्दलता
1890	सिंधी	परमानंद मेवाराम	जीवत
1894	असामिया	रजनींकांत बर्दलै	मिरिजियारी
1896	तमिल	राजम अय्यर	कमलांबाल चरित
1898	पंजाबी	भाई वीरसिंह	सुन्दरी
1899	कन्नड	गुलवाडि वेंकटराव	इन्दिरा देवी
1901	ओडिया	फकीर मोहन सेनापति	छमाण आठ गुंठ
1950	कश्मीरी	जमीन कामिल	गति मावि गा रा

1·4·1·1· मराठी के प्रथम उपन्यास :-

बाबा पदमन जी नामक एक ईसाई सज्जन ने मराठी का प्रथम उपन्यास " यमुना पर्यटन " लिखा है । यह एक सामाजिक और धर्म निंदात्मक उपन्यास है ।[1] डॉ·शान्ति गुप्त जी के अनुसार 1861 में लक्ष्मीशास्त्री नामक एक कल्पना प्रवण लेखक ने " मुक्त माला " नामक उपन्यास लिखा ।[2] डॉ·तुकाराम लक्ष्मण कोतमिरे भी " यमुना पर्यटन " को प्रथम मराठी उपन्यास मानते है ।[3] डॉ·इंदिराजोशी लिखतों हैं कि ··· " यमुना पर्यटन " वास्तव में उपन्यास-रचना की दिशा में एक प्रयोग ही माना जा सकता है । उपन्यास की रूपरेखा तो उस में है किन्तु साहित्यिक गरिमा अथवा कलात्मक लालित्य-दोनों का ही उस में समुचित रूप में समावेश नही हो पाया । ···· विशेषतया " मुक्तमाला " वर्णन कला की दृष्टि से " यमुना पर्यटन " की तुलना में कहीं उत्कृष्ट निर्विवाद रूप से स्वीकार कर तो जानी चाहिए कि " मुक्तमाला " ही मराठी साहित्य की सर्व प्रथम कृति है ।"[4]

1· भारतीय भाषाओं के साहित्य के संक्षिप्त इतिहास –
डॉ·गोपाल शर्मा – पृ· 259·
2· हिन्दी तथा मराठी उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन –
डॉ·शान्ति स्वरूप गुप्त – पृ· 52·
3· स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी और मराठी के सामाजिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन – डॉ·तुकाराम लक्ष्मण कोतमिरे – पृ· 37·
4· भारतीय उपन्यास में वर्णन कला का तुलनात्मक अध्ययन –
डॉ·इन्दिरा जोशी – पृ· 465·

1·4·1·2· बंगाली के प्रथम उपन्यास :-

बंगाली उपन्यास साहित्य में प्रथम उपन्यास के स्थान पर बहुमत है । डॉ·इन्द्रनाथ चौधरी के अनुसार 1852 में प्रकाशित अंग्रेजी महिला मेरी हैंसिन्सन के उपन्यास " करुण ओ फुलमनि " को प्रथम स्थान देना उचित है । दूसरे मत के अनुसार 1858 में प्रकाशित प्यारेचन्द्र मित्र के उपन्यास " अलालेट घरेर दुलाल " को प्रथम स्थान मिलना चाहिए । वस्तुत: इन्हें उपन्यास न कहकर सामाजिक व्यंग्य फीचर कहना चाहिए क्यों कि इन में औपन्यासिक उपादान का विशेष अभाव परिलक्षित होता है, यद्यपि यह निश्चित है कि इन फीचरों से ही भावी उपन्यास का जन्म हुआ है । सन् 1865 में " दुर्गेशनंदिनी " की रचना कर बंकिमचन्द चट्टोपाध्याय [1839-94] ने उपन्यास के क्षेत्र में प्रवेश किया ।[1] डा·सत्येन्द्र जी लिखते है " बंकिमचन्द चटर्जी का प्रथम उपन्यास दुर्गेशनंदिनी " 1868 में प्रकाशित हुआ । वस्तुत: उपन्यास की पूरी परिभाषा की दृष्टि से बंगाल का प्रथम उपन्यास यह " गुर्देशनंदिनी " ही है और बंकिमचन्द बंगाल भाषा के प्रथम उपन्यासकार है ।[2]

1· भारतीय भाषाओं के साहित्य का संक्षिप्त इतिहास - डॉ·गोपाल शर्मा - पृ· 252·

2· बंगाल साहित्य का संक्षिप्त इतिहास - डॉ· सत्येन्द्र - पृ· 256 - 57·

1·4·1·3· गुजराती के प्रथम उपन्यास :-

1866 में प्रकाशित नंदशंकर मेहता के " करणघेलो " को प्रथम गुजराती उपन्यास माना जाता है । इसे स्पष्ट करते हुए डा·आशा तूयरा जी लिखती है --- " गुजराती में लिखा गया प्रथम उपन्यास (करणघेलो) ऐतिहासिक था, पर उस में तत्कालीन समाज का चित्रण है । [1]

1·4·1·4· हिन्दी के प्रथम उपन्यास :-

रामचन्द्र शुक्ल जी के अनुसार 1882 में प्रकाशित लाला श्रीनिवासदास का " परीक्षा गुरु " हिन्दी का पहला उपन्यास है ।" [2] इस उपन्यास का कथ्य मध्यवर्गीय जीवन से संबन्धित है । प्राय: सभी विद्वान इससे सहमत है ।

1·4·1·5· तेलुगु के प्रथम उपन्यास :-

श्री अक्किराजु रमापति राव जी के अनुसार 1872 में प्रकाशित नरहरि गोपाल सेट्टी के उपन्यास " श्री रंगराजु चरित्रमु "

1· हिन्दी और गुजराती के सामाजिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन - डॉ·आशा तूयरा - पृ· 135·

2· हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल - पृ· 395·

तेलुगु में सर्वप्रथम उपन्यास है ।[1] लेकिन कुछ विद्वानों के अनुसार उपन्यास की पूरी परिभाषा की दृष्टि से 1878 में प्रकाशित वोरेशलिंगम पंतुलु जी के " राजशेखर चरित्रमु " को प्रथम तेलुगु उपन्यास का स्थान मिलना उचित है ।

1·4·1·6· उर्दू के प्रथम उपन्यास :-

सय्यद आली हैदर के अनुसार उर्दू साहित्य में 1857 से पहले नावेल का रिवाज न था - उपन्यास की आधुनिक परिभाषा को दृष्टि में रखते हुए उस निष्कर्ष पर पहुँच सकते है कि मालवी नजीर अहमद का उपन्यास " मिरातुल उरूस " {1869} में मुद्रित उर्दू का प्रथम उपन्यास है ।[2]

1·4·1·7· असामिया के प्रथम उपन्यास :-

" असमी साहित्य के इतिहास " के लेखक और असामी साहित्य के इतिहासकार विरंचि कुमार बरुवा के अनुसार 1880 में प्रकाशित पद्मावती देवी पुलकिन कृत " सुधर्मार उपाख्यान " नामक उपन्यास असामी महिला के प्रथम उपन्यास के रूप में स्वीकार करना

1· " तेलुगु नवल " अक्किराजु रमापतिराव - पृ· 1·
2· उर्दू नावल सफर और रफ्तार - डॉ·सय्यद आली हैदर

उचित है । इनके अनुसार रजनीकांत बरदलै का उपन्यास " मिरि-जियारी " 1895 में प्रकाशित हुआ है ।[1] लेकिन अधिकांश विद्वानों के मतानुसार " मिरिजियारी " सर्वप्रथम सफल उपन्यास है ।[2]

1·4·1·8· तमिल के प्रथम उपन्यास :-

" तमिल साहित्य का नवीन इतिहास " के लेखक डॉ·राजगोपालन तमिल के आरंभिक उपन्यासों के बारे में लिखते है -- " तमिल उपन्यास का आरंभ 18 वीं शती में हुआ । सर्व श्री वेदनायक पिल्लै, राजम अय्यर और सूर्यनारायण शास्त्री इस क्षेत्र में अग्रणी थे । वेदनायक पिल्लै के दो ग्रन्थों " प्रताप मुदिलियार चरित्र " और " सुगुण सुन्दरी " कालक्रम के प्रथम उपन्यास माने गये हैं ।"[3] डॉ·श्रीधरन के अनुसार तमिल का सर्व प्रथम उपन्यास 1876 में प्रकाशित वेदनारायण पिल्लै कृत प्रताप " मुदिलियार चरित्रम् " है ।

1· असामी साहित्यचरित्र - बिरंचि कुमार बारुआ

2· भारतीय भाषाओं के साहित्य का संक्षिप्त इतिहास - पृ· 32,33·

3· तमिल साहित्य का नवीन इतिहास - राजगोपालन - पृ·153·

1·4·1·9· पंजाबी के प्रथम उपन्यास :-

पंजाबी उपन्यास के आरंभ के विषय में कोई मत भेद नहीं है । 1898 में प्रकाशित भाई वीरसिंह कृत " सुन्दरी " को प्रथम उपन्यास के रूप में प्राय: सभी विद्वान स्वीकार करते हैं । इसे स्पष्ट करते हुए डॉ·योगेन्द्र बख्शी लिखते है - " पंजाबी उपन्यास के आरंभ के विषय में कोई मत भेद नहीं । लगभग सभी विद्वान भाई वीरसिंह रचित " सुन्दरी " (1898) को पंजाबी का प्रथम मौलिक उपन्यास स्वीकार करते हैं । परन्तु स्वतंत्रता पूर्व पंजाबी उपन्यास पर प्रस्तुत किये गये शोध प्रबंध के लेखक ने पंजाबी उपन्यास का प्रारंभ जॉन बनियन के अंग्रेजी उपन्यास " पिल्ग्रिम प्रोग्रस " के पंजाबी अनुवाद से मानकर पंजाबी उपन्यास को प्रत्यक्षत: अंग्रेजी प्रभाव से उद्भूत करने का प्रयास किया है ।"[1]

1·4·1·10· कन्नड के प्रथम उपन्यास :-

कन्नड के प्राय: सभी आलोचकों ने 1897 में प्रकाशित वेंकटराव गुलवादी जी के " इन्दिराबाई " को प्रथम उपन्यास माना है । इसे स्पष्ट करते हुए डॉ·हेगडे लिखते है -- " कन्नड में प्राप्त प्रथम मौलिक सामाजिक उपन्यास " इन्दिराबाई " है,

---

1· हिन्दी तथा पंजाबी उपन्यास का तुलनात्मक अध्ययन - डॉ·योगेन्द्र बख्शी - पृ· 9 - 10·

जिसकी रचना वेंकटराव गुलवाडी ने 1897 ई में की । तिथि के अनुसार " पद्‌मनयना " की रचना से एक वर्ष पश्चात् इसकी रचना हुई । पर कला की मूल्य की दृष्टि से सामाजिक उपन्यास " इन्दिराबाई " को ही सर्व प्रथम मौलिक उपन्यास का गौरव प्राप्त है ।[1]

1·4·2· भारतीय उपन्यास साहित्य के उद्‌भव कालीन परिस्थितियाँ और प्रवृत्तियाँ :-

समस्त भारतीय भाषाओं में उपन्यास साहित्य का आरंभ पश्चिम की भाषाओं से अनूदित व विभिन्न दूसरी भारतीय भाषाओं से अनूदित उपन्यासों से होता है । इसके दो कारण दिखाई देते हैं । पहला कारण है साहित्यिक और सामाजिक विकास का और दूसरा कारण है भाषा के स्वाभाविक विकास का । भारत में उपन्यास साहित्य के उद्‌भव के पूर्व जो साहित्य था वह भारत में पाश्चात्यों के राज्य की स्थापना से जो परिवर्तन सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक स्तर पर हुआ उसे अभिव्यक्त करने में असमर्थ था । यही नहीं यूरोप में उपन्यास का उदय जिन स्थितियों में हुआ था उनके ठीक विपरीत परिस्थितियाँ यहाँ मौजूद थीं । उस समय भारत में न तो औद्यो - गीकरण हुआ था और न मध्यवर्ग का विकास हुआ था । यहाँ जो नाम मात्र का औद्योगीकरण हो रहा था, वह केवल साम्राज्यवाद की

1· हिन्दी और कन्नड उपन्यासों का तुलनात्मक विवेचन - डॉ·हेग्डे - पृ· 138·

लूट के लिये फैले व्यापार और बाजार की एक स्थिति था । यूरोप के उपनिवेशवाद ने भारतीय सामंतवाद के मूल ढांचे को बनाए रखा था । इसलिए यहाँ के औद्योगीकरण में स्वाभाविक रूप से विकसित पूंजीवाद की कोई विशेषता न थीं । उपनिवेशवादी व्यवस्था में यहाँ जो मध्यवर्ग पैदा हुआ था उसका चरित्र यूरोप के मध्यवर्ग से बहुत भिन्न था । अतः अंग्रेजों को अपने फायदे के लिए ऐसी परि - स्थितियों व सामाजिक मानसिकता के विकास का प्रयास करना पड़ा जो परिस्थितियाँ अंग्रेजी उपन्यास साहित्य के उद्भव के मूल में थीं । इस प्रयास के अंतर्गत उपन्यास साहित्य-लेखन के लिये सफल लेखकों को प्रोत्साहन देने का प्रयास किया गया । उपन्यास के शिल्प और संरचना से अवगत कराने के लिये उन्हें अनुवादों की प्रेरणा देना पड़ी । तो दूसरी ओर लेखक भी उस मध्यवर्ग से पैदा होने लगे जिस का विकास अंग्रेजों की सामाजिक आर्थिक नीतियों के कारण हुआ था । उस समय की भारतीय भाषाएँ और शाब्दिक संरचना औपन्यासिक कथ्यों की अभिव्यक्ति के लिये सक्षम नहीं थी । अतः लेखकों को या तो अंग्रेजी जैसी पाश्चात्य भाषाओं के उपन्यास साहित्य का अनुवाद करना पड़ा या उनके अनुकरण पर लिखना पड़ा । लेकिन शिक्षित मध्यवर्ग का विकास एक स्तर तक होने के बाद मौलिक उपन्यास लेखन कार्य शुरू हुआ ।

भारत में मध्यवर्ग का विकास पहले बंगाल में हुआ था । यही मध्यवर्ग उपन्यास के लेखक और पाठक के रूप में उसके उदय का आधार बना । लेकिन इस मध्यवर्ग की मानसिकता, पश्चिम के मध्यवर्ग की मानसिकता की तुलना में उल्टी थी । पश्चिम में जिन

विचारों और नारों ने जनतांत्रिक चेतना जगाने का काम किया था, वही भारत में उपनिवेशवादी शिक्षा के फलस्वरूप गुलामी की मानसिकता पैदा करने के काम आए । मध्यवर्ग बंगाल में विकसित होने के कारण वहाँ उपन्यास का विकास भी दूसरी भारतीय भाषाओं से पहले हुआ । धीरे-धीरे यह मध्यवर्ग भारत के दूसरे भागों में भी विकसित हो रहा था ।

इतिहासाचार्य विश्वनाथ काशीनाथ रजवाड़े ने 1902 के " कादंबरी " शीर्षक निबंध में मराठी के आरंभिक उपन्यासों के पाठकों के बारे में लिखा है कि " इनके पाठक वर्ग में मुख्यत: जमीन्दारों, रियासतदारों और ईनामदारों की संख्या अधिक थी । कभी-कभी ब्राह्मणों उपाध्यायों और वैश्यों ने भी इन में अपने योगदान दिया है । लेकिन इन उपन्यासों के मुख्य लक्ष्य ऐसी - आरामी खुशालचन्द और निष्क्रिया लोग ही थे । वेदविद् लक्ष्मण - शास्त्री को उपन्यासों के खातिर खंडेराव होलकर से सालाना तनख्वाह मिलती थीं ।"[1] इससे उस समय के लेखक और पाठकों की मानसिकता स्पष्ट होती है । इससे यह भी स्पष्ट होता है कि आरंभिक दिनों में जासूसी और ऐय्यारी के उद्भव और विचित्र वृत्तांत वाले उपन्यासों की भरमार क्यों थी । इस समय का मध्यवर्ग के मूलचेतना में दुविधा था । एक ओर परंपरा के नाम पर पाश्चात्य दृष्टि कोण की ओर झुकाव और दूसरी ओर आधुनिकता के नाम पर भ्रामक आधुनिकता की ओर झुकाव था ।

---

1. उपन्यास (अनु.) आलोचना - 84 जनवरी - मार्च, विश्वनाथ रजवड़े - पृ. 23-24.

आरंभिक भारतीय उपन्यास साहित्य का स्वरूप अनुवाद का अनुकरण का होने के कारण पाश्चात्य उपन्यास साहित्य की तुलना में अनिश्चित था । पाश्चात्य उपन्यास साहित्य के सभी लक्षण इन उपन्यासों में उपस्थित हो गये । फलत: भारत में एकाधिक भाषाओं के कारण और अनुवाद व प्रेरणा स्रोतों के व्यापक क्षेत्र के कारण किसी भाषा में मौलिक उपन्यास सामाजिक उपन्यासों से शुरू होता है तो किसी ऐति - हासिक उपन्यासों से और किसी भाषा में तिलस्मी ऐयारी और जासूसी उपन्यासों से या यात्रा वृत्तों व व्यंग्य से । इसके अति- रिक्त उपन्यास साहित्य का उद्भव अनुवादों से होने का और एक अन्य कारण यह है कि अंग्रेजों का शासनकाल लम्बे समय तक रहने से भारतीय विचारधारा में परिवर्तन नहीं हो पाया । उस समय के लेखकों को उपन्यास संरचना नयी थी इसलिए वे तत्कालीन समाज में औपन्यासिक कथ्यों को ग्रहण करने में सशक्त नहीं थे । यही कारण था आरंभिक भारतीय उपन्यासों की विषय वस्तु या कथ्य का संबंध जहाँ एक ओर पूर्ववर्ती संस्कृत महाकाव्य परंपरा या भारतीय नाटक परंपरा या बेताल पच्चीसी, सिंहासन बत्तीसी कथा परंपरा जैसी भारतीय परंपराओं के प्रभावों से या वहाँ दूसरी ओर धीरे-धीरे तत्कालीन क्षीणोन्मुख सामंतीय व्यवस्था, धर्म व्यवस्था, वर्ण-व्यवस्था, संयुक्त पारि - वारिक जीवन आदि के विभिन्न पहलुओं और उसकी समस्याओं से था ।

भारत में अनूदित उपन्यास साहित्य के द्वारा विकासशील भारतीय मध्यवर्ग को नये सामाजिक जीवन की प्रक्रिया का परिचय कराना और ईसाई धर्म आदि का प्रचार करना अंग्रेजों का आशय था । फलस्वरूप आरंभिक भारतीय अनुकीरत उपन्यासों में ईसाई धर्म के प्रचार की प्रवृत्ति दिखाई देती है । लेकिन उस समय में जहाँ एक ओर अंग्रेजी शिक्षा और शासन और नीतियों के द्वारा मध्यवर्ग और उससे उपन्यासों का विकास हुआ वहीं दूसरी ओर उन्हीं के फलस्वरूप भारतीय लेखकों में अपने देश और समाज के संबन्ध में विचार करने की प्रवृत्ति जागृत हुई । वे अपने उपन्यासों में प्राचीन भारतीय व्यसनों को, बुराइयों की उपहास करने लगे और नवीन को भी आँख मूँद कर ग्रहण नहीं किया करते थे । धीरे-धीरे समकालीन मानव जीवन के तथ्य उपन्यास के विषय बनने लगे और सामाजिक कुरीतियों का निर्मूलन ही लेखकों का आशय बन गया था । इसलिये उद्भवकालीन उपन्यासों में तत्कालीन समाज में परिव्याप्त कुरीतियाँ मुख्यतः पारिवारिक जीवन की समस्याओं, संयुक्त परिवार, पारिवारिक कलह, विधवा जीवन, बाल विवाह, व्यभिचार, वेश्यागमन, पतिव्रता का आदर्श, देवदासि का कुत्सित जीवन, धार्मिक रूढ़ियाँ, पुलिस अदालत के अकथनीय अत्याचार, दहेज प्रथा, स्त्री शिक्षा, सती प्रथा, भ्रष्टाचार आदि का प्रतिपादन कथ्य के रूप में हुआ था । समग्र सामाजिक उपन्यास साहित्य में इन कुरीतियों का विरोध किया गया है ।

इस प्रकार आरंभिक भारतीय उपन्यास साहित्य में सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया की पहचान उपस्थित होती है लेकिन समग्र उपन्यास साहित्य में इन सामाजिक समस्याओं का कारण परंपरागत धार्मिक रुढ़ियों के नये अर्थ और तत्काल के लिए उपयोगी नयी दृष्टि से उस व्यवस्था की उपयोगी व्याख्यात्मकता की प्रवृत्ति से नैतिकता, शिक्षात्मकता और उपदेश प्रधानता भी स्वाभाविक रूप में स्थान पायी । जिन थोड़े बहुत उपन्यास-कारों ने ईसाई धर्म को अपेक्षाकृत अच्छा समझा उनका विरोध किया गया । आरंभिक उपन्यास कारों में सामाजिक परिवर्तन की पृष्ठभूमि के आकलन की क्षमता कम थी । अत: सभी प्रकार के उपन्यासों में समस्याओं के समाधान प्रस्तुत करने में अतीत शक्तियों की सहायता ली गयी थीं । यह प्रवृत्ति ऐतिहासिक और सामाजिक उपन्यासों में न्यूनाधिक रूप में पायी जाती है । दूसरी ओर जिस ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य का लेखन हुआ उसमें प्राचीन वैभवपूर्ण दिनों के संबन्ध में सोचने की अभिरुचि और अतीतसे वर्तमान की तुलना की आरंभिक प्रेरणाएँ दिखाई देती हैं। इन उपन्यासों में अधिकांश ऐतिहासिक रोमांस है लेकिन आरंभिक काल के अंतिम दशक में विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखें गये ।

भारतीय उपन्यास साहित्य में उद्भव काल के अंतिम दशक में जातीयतावाद और देशभक्ति के प्रचार हुआ था । इस काल के उपन्यास साहित्य में तीन प्रकार की विचार धाराएँ दिखाई देती है -- 1. ईसाई धर्म का प्रचार और अंग्रेजों का

समर्थन 2· ईसाई धर्म और अंग्रेजी नीतियों की अपेक्षा भारतीय संस्कृति और धर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन 3· समन्वय दृष्टि से इन दोनों धर्म और नीतियों की अच्छाइयों को ग्रहण करने की प्रवृत्ति । इस प्रकार आरंभिक कालीन भारतीय उपन्यास साहित्य के लिए प्राचीन परंपरा और पाश्चात्य दृष्टिकोण के मध्य संघर्ष ने मौलिक भारतीय उपन्यास के उद्भव के लिए मूल वस्तु को प्रदान किया । इस काल में उपन्यास में निम्नवर्गीय जीवन की समस्याओं को स्थान नहीं दिया गया । समकालीन उपन्यासों में चित्रित जीवन मध्यवर्ग या उच्च मध्यवर्ग या उच्चवर्ग का ही है ।

1900 से 1920 तक के समय में भारत में नवजागरणहुआ । इस काल को जागरण और सुधारकाल कहते है । इस चरण तक आते-आते मौलिक भारतीय उपन्यास साहित्य की रूप रेखा, वस्तु और शिल्प की दृष्टि से व्यवस्थित होती गयी । इस काल में भी पूर्ववर्ती युगीन उपन्यासों की तरह सामाजिक, ऐतिहासिक, ऐयारी, जासूसी उपन्यास लिखे गये लेकिन फरक यह है कि पूर्ववर्ती उपन्यासों में समस्याओं का समाधान हिन्दू धर्म की पुनर्व्याख्या के द्वारा दिया गया लेकिन समकालीन उपन्यासों में समस्याओं का समाधान समय के और आवश्यकताओं के अनुरूप दिया गया ।

इस जागरण और सुधार काल में लिये गये उपन्यासों का कथ्य पूर्ववर्ती उपन्यासों के कथ्य की तुलना में अभिन्न था । इस काल में लिखे गये सामाजिक उपन्यासों में मुख्यतः मध्यवर्गीय सामाजिक, पारिवारिक, नैतिक समस्याओं पर प्रकाश डाला गया । पारिवारिक जीवन के आदर्श, धार्मिक दुर्दशा, सामाजिक अंध विश्वास, पारंपरवादी नीति, संयुक्त परिवार और उनके विघटन से उत्पन्न समस्याओं विशेषकर अनमेल विवाह, विधवा विवाह, बाल विवाह, दहेज प्रथा, कन्या विक्रय, परदा प्रथा, सती प्रथा, पुनर्विवाह, प्रौढ़विवाह, भूत प्रेतों का अंध विश्वास, रिश्वतखोरी, धार्मिक संस्थाओं के नैतिक पतन, छुवाछूत भावना आदि कथ्य इस काल के उपन्यास साहित्य में स्थान पाये । इस काल के उपन्यासों मे पूर्ववर्ती उपन्यासों के समान नैतिकता के उपदेश दिया गया परन्तु उसके साथ-साथ सामाजिक कुरीतियाँ और अंध विश्वासों का निर्मूलन तथा आधुनिक युग के अनुरूप सामाजिक वैयक्तिक जीवन में आवश्यक परिवर्तन और सुधार आदि को जोड दिया गया । इस काल की अन्य विशेषता यह है कि पूर्ववर्ती चरण के उपन्यासों में जहाँ कथ्य का संबन्ध केवल समाज के मध्यवर्ग और उच्चवर्ग से था वहाँ निम्नवर्ग और ग्रामीण कृषक वर्ग को भी स्थान दिया गया । उपन्यासों में जहाँ एक ओर सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए बल दिया गया वहाँ धीरे-धीरे अंग्रेजी शासन के प्रति असंतोष की भावना और जातीय - तावाद का प्रतिपादन स्पष्ट रूप से होने लगा । इस के साथ-साथ भारत के पुनर्निर्माण के लिए आवश्यक सूचनाओं को भी उपन्यास में स्थान दिया गया ।

उक्त कथन से हम यह कह सकते है कि उपन्यास साहित्य के उद्भव के इस द्वितीय चरण काल में परंपरा और समाज सुधार के मध्य संघर्ष हुआ है । इस काल के भारतीय उपन्यास साहित्य में प्रस्तावित सुधार संबन्धी विचार धारा में सुधार के दो प्रकार परिलक्षित होते हैं । बंगाल को छोडकर बाकी राज्यों की उपन्यास साहित्य में सुधार के लिए धीरे-धीरे राजनैतिक स्वतंत्रता की आवश्यकता का अनुभव किया गया और राष्ट्रीय आन्दोलन से संबन्धित अभिव्यक्ति होने लगी । बंगाल में इसके विपरीत सुधार के लिए विश्व मानवतावाद की परिकल्पना की गयी और जीवन की समस्याओं पर सांस्कृतिक दृष्टिकोण से विचार किया गया । इस काल के समस्त उपन्यास साहित्य में नारी शिक्षा पर बल दिया गया है । भारतीय उपन्यास साहित्य के सुधार के इस समय के अंतिम वर्षों में धीरे-धीरे सामाजिक यथार्थ के रूप ग्रहण के आरंभिक रूप दिखाई देता है । राष्ट्रीय आन्दोलन से संबन्धित विचारों की अभिव्यक्ति होने के कारण गांधी के सिद्धांतों का प्रभाव भी दिखाई देता है । इस के अतिरिक्त इस काल में पूर्ववर्ती चरण के समान सामाजिक, ऐतिहासिक, तिलिस्मी और जासूसी उपन्यासों के साथ-साथ अनुवादों और अनुकरणों की बहुलता पायी जाती है ।

1.4.3. निष्कर्ष :-

विश्व साहित्य में उपन्यास एक आधुनिक और परिवर्तन - शील विधा है । इसका क्षेत्र बहुत व्यापक है जिसके अन्तर्गत संसार के किसी भी विषय को लिया जा सकता है । गद्य के आविर्भाव के साथ ही साथ उपन्यास का भी साहित्य के क्षेत्र में प्रादुर्भाव हुआ । उपन्यास का सामाजिक आधार वस्तुत: मध्यवर्ग ही है जो औद्योगिक समाज की उपज है । यह वर्ग अत्यन्त संवेदनशील है और वह अनुभव करता है कि हमारा देश सभी दृष्टियों से अत्यन्त हीन दशा में है, जीवन के सभी क्षेत्रों में परिवर्तन और सुधार की आवश्यकता है । इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए साहित्य को भी एक माध्यम बनाया गया । फलत: पद्य के विकास के साथ-साथ गद्य का भी विकास हुआ और गद्य की विभिन्न विधाओं जैसे उपन्यास, नाटक, कहानी आदि का प्रादुर्भाव हुआ ।

x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x: :-÷:-:-:-:-:-:-:-:-:-:-

द्वितीय अध्याय

हिन्दी साहित्य में उपन्यास का उद्भव :
परिस्थितियाँ, प्रवृत्तियाँ और वर्गीयपृष्ठभूमि

:-:-:-:-:-:-:-:-:-:-:- x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:

हिन्दी साहित्य में उपन्यास का उद्भव : परिस्थितियाँ प्रवृत्तियाँ और वर्गीय पृष्ठभूमि

2.1. परिस्थितियाँ

2.1.1. राजनैतिक परिस्थितियाँ

2.1.1.1. मुगल साम्राज्य का पतन और अंग्रेजों के आधिपत्य का आरंभ :

मुगल साम्राज्य का पतन अठारहवीं शताब्दी में हुआ और उसने अपना प्रभुत्व खो दिया । भारतीय राज्यों और यूरोप की व्यापारिक कंपनियों के बीच, जो अपने-अपने देशों के संरक्षण में भारत में काम कर रही थीं, शक्ति संतुलन बराबर यूरोपियों के पक्ष में होता जा रहा था । सोलहवीं शताब्दी में भारत में यूरोपियों के अधिकार में महज कुछ किले और मालगोदाम थे, सत्रहवीं शताब्दी में उन्होंने

व्यापारिक केन्द्रों और बस्तियों की स्थापना करना शुरू कर दिया और अठारहवीं शताब्दी में भारतीय रियासतों को दबाना शुरू कर दिया । लेकिन ध्यान देने योग्य बात यह है कि अठारहवीं शताब्दी में यूरोपीयों का सामना मुगल साम्राज्य से नहीं, जिससे उन्होंने जोर-जबरदस्ती और रिश्वतों-भेंटों के जरिये व्यापारिक रियायतें प्राप्त करली थीं, बल्कि अलग-अलग राज्यों से हो रहा था । वे राज्य आपस में ही लड़ते-झगड़ते रहते थे और अपने भारतीय शत्रुओं के साथ कलह में यूरोपीयों की सहायता ले रहे थे ।

2·1·1·2· प्लासी की लड़ाई से बक्सार की लड़ाई तक की परिस्थितियाँ :-

अठारहवीं शताब्दी के आरंभ में बंगाल मुगल साम्राज्य के आर्थिक दृष्टि से सर्वाधिक विकसित इलाकों में था । यह इलाका मुगल गद्दी के इर्द-गिर्द चलरहे सामंतों के राजनीतिक संघर्ष में प्रत्यक्षत: शामिल नहीं था । बंगाल की समृद्धि का आधार मुख्यतया वस्त्र उत्पादन था । वहाँ माल-मुद्रा संबंध अन्य प्रान्तों की तुलना में अधिक विकसित थे ।

1756 में बंगाल में उत्तराधिकार का युद्ध छिड़ गया, जिसके बाद युवा सिराजुद्दौला नवाब बना। उत्तराधिकार के संघर्ष में पराजित हुए एक नवाब ने भागकर कलकत्ते में अंग्रेजों की शरण ली। जब अंग्रेजों ने सिराजुद्दौला के हाथों में दे देने से इनकार किया, तो सिराजुद्दौला ने अपनी सेना जमा की और अचानक आक्रमण करके पहले कासिम बाजार और फिर कलकत्ता पर धावा मारकर कब्जा कर लिया।

इसके कुछ ही बाद कप्तान क्लाइव और एडमिरल वाट्सन की कमान में एक टुकड़ी मद्रास से बंगाल भेजी गयी। क्लाइव ने पहले भारतीय सेठों और इनके जरिये नवाब के सेनापति मीर जाफर से संपर्क स्थापित किया। उसने मीर जाफर को अंग्रेजों के विजयी होने पर बंगाल का नवाब बनाने का वचन दिया। 23 जून 1757 को प्लासी की लड़ाई में अंग्रेजों ने विजयी हुए और मीर जाफर को नवाब बनाया गया।

इस विजय के तुरंत बाद अंग्रेजों ने नये नवाब से भारी हर्जाने की मांग की। हर्जाने की यह रकम संभवत: कलकत्ता के निवासियों की कुल चल संपत्ति के मूल्य से भी अधिक थी। हेनरी वैंसीटार्ट को 1760 में बंगाल का गवर्नर नियुक्त किया गया था। इन्होंने मीर जाफर को गद्दी से उतार दिया और उसकी जगह उसके दामाद मीर कासिम को नवाब बनाया। इसके बदले में मीर कासिम ने गवर्नर को दो लाख पौंड और कंपनी को बंगाल के तीन समृद्ध जिले देना पड़ा। फलत: उसका राजस्व घटकर आधा हो गया।

प्लासी की लड़ाई में विजय के बाद कंपनी के कर्मचारियों ने विजेताओं के रूप में अपनी स्थिति का पूरा-पूरा उपयोग अपने को मालामाल करने तथा स्थानीय व्यापारियों और निजी यूरोपीय व्यापारियों के बीच से अपने सभी प्रतिद्वंद्वियों को धकेल बाहर करने के लिये किया । 1717 में मुगल बादशाह द्वारा जारी किये गये फरमान को जिसने अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी को शुल्क मुक्त विदेशी व्यापार करने का एकाधिकार प्रदान किया था । इस समय में बंगाल में ईस्ट इंडिया कंपनी का आचरण " व्यापारी के वेश में राज्य " की तरह था ।

मीर कासिम जिसने वस्तुत: अपनी नवाबी अंग्रेजों से खरीदी थी यह आशा की थी कि वह बंगाल का वास्तविक शासक बन जायेगा और ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथों में मात्र कठपुतली नहीं रहेगा । तदुपरांत उसने कंपनी के कर्मचारियों से दस्तकों का लेन-देन बंद करने की मांग की, जिसकी वजह से देश लगातार कंगाल होता जा रहा था । अंग्रेजों ने उसकी इस मांग को मानने से इनकार किया था । कंपनी के कर्मचारियों ने हथियार उठा लिये और 1763 में पटना नगर पर कब्जा कर लिया । मीर कासिम ने अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह कर दिया ।

वे सभी लोग, जो बंगाल में अंग्रेजों की ज्यादतियों से असंतुष्ट थे, मीर कासिम और उनकी सेना के समर्थन में एकत्रित हो गये। कलकत्ता के शक्तिशाली आर्मेनियाई व्यापारियों ने उसे आर्थिक सहायता प्रदान की। 1763 में मीर कासिम अंग्रेजों से पटना छीन लेने में सफल हो गया। लेकिन इसके शीघ्र बाद ही उसकी बेढ़ंगी, अप्रशिक्षित सेना पराजित हो गयी।

मीर कासिम भागकर अवध चला गया, जहाँ उसने शाह आलम द्वितीय से संधि की। इसके बाद उनकी मिली-जुली फौजें पटना की ओर अग्रसर हुई, जिससे अंग्रेजों ने अपने को खासी मुश्किल स्थिति में पाया। लेकिन 1764 में बक्सर की निर्णायक लड़ाई में अंग्रेज पुनः अपने दुश्मनों को पराजित करने में सफल हुए। शाह आलम ने आत्म-समर्पण कर दिया और मीर कासिम दिल्ली भाग गया। बक्सर की लड़ाई के बाद गंगा के निचले मैदानी क्षेत्रों में अंग्रेजों के प्रभुत्व को गंभीर चुनौती देनेवाला कोई नहीं रहा।

2·1·1·3· 1857-1859 का महान जन विद्रोह :-

ब्रिटिश औपनिवेशिक जुए के विरुद्ध उन्नीसवीं शताब्दी के संपूर्ण पूर्वार्द्ध में आबादी के विशिष्ट वर्गों की छिटपुट, सर्वथा स्थानीय कार्रवाइयों में अभिव्यक्त होनेवाला रोष तब कुछ-कुछ एकाकार होने लगा, जब राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व दीर्घकाल से संघटित कार्रवाइयों

के अभ्यस्त सिपाहियों ने अपने हाथों में ले लिया । कंपनी की सेना के ये सिपाही, बंगाल, बम्बई और मद्रास प्रेसिडेंसियों की तीन सेनाओं में विभाजित थे और इन में 170 हजार सिपाहियों की सबसे बडी बंगाल सेना ही सामाजिक दृष्टि से सर्वाधिक समरुप थी । बंगाल फौज के सिपाही लगभग पूर्णत: अवध, बिहार और उत्तर पश्चिमी प्रान्तों के ब्राह्मणों, राजपूतों, जाटों और मुसलमानों से भर्ती किये जाते थे । इन समूहों के प्रतिनिधि या तो ग्राम समुदायों के ऊपरी संस्तरों [पट्टीदारों] से आते थे या छोटे सामंतों के पुत्र थे । वे भी हिन्दुस्तानी बोलते थे और अपने-अपने गावों से घनिष्ठ संपर्क रखते थे ।

चूँकि सिपाहियों ने लंबे अर्से से युद्धों में भाग नहीं लिया था और वे आरक्षी कार्यों में ही लगे हुए थे, इसलिए वे संपूर्ण उत्तरी भारत, विशेष रुप से दोआब में फैली विभिन्न फौजी छावनियों में तैनात थे । हालांकि भारतीय मानकों के अनुरुप उन्हें अच्छे वेतन मिलते थे, फिर भी अब तक सिपाहियों के बीच असंतोष व्यापक हो गया था : भारतीय सिपाही हवलदार के पद से आगे पदोन्नति नही कर सकते थे, जब कि ब्रटेन से आनेवाले किसी भी नये अंग्रेज रंगरुट को उनके ऊपर रख दिया जाता था । फौजी छावनियों में अंग्रेजों के अपने अलग मैस थे और वे आरामदेह बंगलों रहते थे, जबकि सिपाहियों को अपनी स्त्रियों और बच्चो सहित पुरानी झोपड़ियों में रखा जाता था ।

प्लासी की लड़ाई की सौवीं जयंती आरही थी और सिपाही ठीक उसी दिन ब्रिटिश शासन का तख्ता उलटने की तैयारी कर रहे थे। विद्रोह का विचार तो बहुत पहले ही जड़ पकड़ चुका था, लेकिन यह एक सुव्यवस्थित ढंग से संगठित विद्रोह नहीं था।

विद्रोह का तात्कालिक कारण अंग्रेजों द्वारा एन्फील्ड राइफलों के लिए नये कारतूसों का दिया जाना था। अफवाह थी कि इन कारतूसों पर गाय और सुअर की चरबी लगी है, जिसे हिन्दू और मुसलमान भी अस्पृश्य समझते थे। लेकिन ब्रिटिश कमान ने नये कारतूसों का इस्तेमाल करने से इनकार करनेवाले सिपाहियों के खिलाफ़ कड़ी कारवाई की। मेरठ में 10 मई 1857 को कारतूसों को इस्तेमाल करने से इनकार करनेवालों के एक दल की सार्वजनिक रूप से पदावनती कर दी गयी और उन्हें कठोर सजाएं दी गयीं। इसने सिपाहियों के विद्रोह को भड़काने में चिनगारी का काम किया जिन्हें शहरी निर्धनों और निकटवर्ती गांवों के किसानों का समर्थन था। ब्रिटिश अफसरों की हत्या करने के बाद 11 मई को सिपाहियों ने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया, जहाँ दिल्ली गैरिसन के सिपाही भी उनसे आमिले। दिल्ली पर कब्जा करने और वहा ब्रिटिश अफसरों के खिलाफ प्रतिशोधात्मक कार्रवाइयों के बाद सिपाही लाल किले की ओर बढ़े और बूढे बहादुरशाह द्वितीय को, जिसे अंग्रेजों ने पेंशन देकर सार सत्ता से वंचित कर दिया था, अपने को भारत का शासक घोषित करने तथा विद्रोहियों के आदेश पर

लिखी एक अपील पर हस्ताक्षर करने के लिए विवश किया । मुस्लिम उलेमा ने अंग्रेजों के खिलाफ जिहाद की घोषणा करते हुए एक फतवा जारी किया । दिल्ली में एक सरकार बनायी गयी, जिसमें दरबारी अमीर-उमरा शामिल थे । बहदुरशाह विद्रोही जनता के लिए भारत की पुन:स्थापित स्वाधीनता का प्रतीक बन गया ।

भारत के विभिन्न भागों से सिपाही टुकड़ियों के दिल्ली में जमा होने के साथ वहाँ अब गड़बड़ और अव्यवस्था की स्थिति पैदा हो गयी थी । सिपाही केवल अपने ही नायकों के संदेशों का पालन करते थे और दिल्ली की दरबारी सरकार पर उन्हें कोई विश्वास नहीं था । नगर में खाद्य सामग्री और संसाधनों का अभाव था, क्यों कि जमींदारों ने लगान का धन दिल्ली भेजना बंद कर दिया था । शीघ्र ही सिपाहियों में अनुशासन बहुत खराब हो गया ।

दृढ़ अनुशासन के अभ्यस्त, किन्तु, युद्ध-कला अथवा एक टुकड़ी से बड़ी फौजी इकाइयों का संचालन करने में अकुशल सिपाही राजनीतिक मामलों को नहीं, बल्कि केवल यौद्धिक प्रश्नों को ही निपटा सकते थे । दिल्ली में लाल किले जैसे प्रमुख दुर्ग पर कब्जा करने के बाद उन्होंने अछूते क्षेत्रों को विद्रोह की परिधि में लाने के बजाय रक्षात्मक रुख अपना लिया । इससे अंग्रेजो को फिर से संभलने, अपनी वफादार फौजों को जमाकरने तथा दिल्ली पर घेरा डालने समर्थ बन दिया ।

विद्रोह वास्तव में दोआब और मध्य भारत के कुछ भागों से और आगे नहीं फैला । बंगाल में गवर्नर जनरल कैनिंग [1856-1862] उस प्रदेश में रहनेवाली ब्रिटिश नागरिक आबादी रहित संपूर्ण यूरोपीयों को लामबंद करने के बाद सिपाहियों के बलवे की पेशबन्दी करने में सफल हो गया । उसने उन्हें निरस्त्र कर दिया और जिन इकाइयों में छिटपुट विद्रोह हुए भी, उन्हें कुचल दिया । सिख आबादी हिन्दुस्तानी-पंजाब के बाहर के सिपाहियों को आधिपत्यकारी सेना के समझती थी और उसने उन्हें कोई समर्थन प्रदान नहीं किया ।

इसके विपरीत अवध और बुंदेलखंड के किसान अविलम्ब विद्रोह में शामिल हो गये । उन्होंने "बाहरी" नये भूस्वामियों को खदेड़ दिया, स्थानीय सरकारी भवनों पर आक्रमण किया और यहाँ तक कि अपने पुराने जमींदारों और ताल्लुकेदारों को भी लगान देना बंद कर दिया । औपनिवेशिक प्रशासन के स्थानीय प्रतिनिधियों को भगाने के बाद किसानों ने अपने-अपने गावों की रक्षा के लिए सशस्त्र टुकड़ियाँ कायम कर लीं और ग्राम समुदाया की अंग्रेज विजेताओं द्वारा जब्त जमीनों पर अपने अधिकार की रक्षा के लिए खड़े हो गये । दोआब की शहरी आबादी ने विद्रोह में सक्रिय भूमिका अदा की । अलीगढ़ [21 मई], बरेली और लखनऊ [31 मई], कानपुर [4 जून], इलाहाबाद [6 जून] जैसे अनेक बड़े नगरों को स्वतंत्र करने के बाद उन्होंने इनमें से प्रत्येक नगर में अपनी सरकार कायम कर ली ।

इधर दिल्ली की रक्षा करनेवाले सिपाहियों ने कई धावे बोले, लेकिन उन्होंने कोई बड़ा आक्रमण नहीं किया था। सिपाहियों की इस निष्क्रियता के परिणाम स्वरूप अंग्रेजों को पहल लेने का मौका मिल गया और उन्होंने मद्रास तथा ईरान से मंगायी बड़ी फौजों और चीन भेजी जानेवाली इकाइयों को जमा करना शुरू कर दिया। 14 दिसम्बर 1857 को अंग्रेजों ने, जिन्होंने अब तक अपनी फौजें जमा कर ली थीं, दिल्ली पर धावा बोल दिया और पाँच दिन के बाद नगर और किले पर कब्जा कर लिया।

इसके बाद विद्रोहियों के खिलाफ बर्बरतापूर्ण प्रतिशोध की कार्रवाइयाँ शुरू हुई। बम्बई के गवर्नर एलफिन्स्टन तक ने लिखा है कि दिल्ली पर कब्जा करने के बाद ब्रिटिश फौजों द्वारा किये गये अपराध अवर्णनीय हैं। उनके प्रतिशोध से मित्र या शत्रु कोई भी निरापद नहीं था। उनकी लूट और मार-काट के सामने नादिरशाह के कारनामें भी फीके पड़ गये।

उधर जनरल नील ने, जो दिल्ली स्थित ब्रिटिश सेना की सहायता करने के लिए कलकत्ता से आ रहा था, रास्ते में पड़नेवाले विद्रोही बनारस और इलाहाबाद नगरों में सिपाहियों और आबादी का निर्ममतापूर्वक संहार किया। उसकी क्रूरता पर लार्ड कैनिंग तक नाराज हो गया और उसने उसे कमान से मुक्त करके उसका पद जनरल हैवलाक को दे दिया। हैवलाक ने तो अपनी बारी में अपने रास्ते में आनेवाले गांवों को जलाकर और सैकड़ों को

पेड़ों पर लटकाकर फाँसी देकर सचमुच कत्लेआम किया । जिन नगरों से होकर गुजरा, उनमें एक कानपुर भी था, जो दिल्ली और लखनऊ के साथ साथ विद्रोह का एक प्रमुख केन्द्र था । कानपुर में विद्रोहियों नेतृत्व नानासाहिब कर रहे थे । ब्रिटिश सैनिकों ने अपने परिवारों सहित छावनी की किलेबन्दी में शरण ले रखी थी और वे अपने तोपखाने के बल पर घेरा डालनेवाले सिपाहियों को रोके रहे । लेकिन तीन हफ्ते बाद उन्हें आत्म-समर्पण करना पड़ा ।

इसी बीच लगभग दस हजार विद्रोही सिपाही और किसान नगर में जमा हो गये थे और वे हैवलाक की सेना से जाकर टक्कर ली, लेकिन वे बहादुरी से लड़ने के बावजूद पराजित हुई । जून के मध्य में कानपुर में घुस आने के बाद हैवलाक की सेना से नगर में तबाही मचा दी । उसके बाद हैवलाक ने विद्रोही के एक और प्रमुख केन्द्र, लखनऊ, में घुसने की दो बार असफल कोशिशें की । 21 सितम्बर को हैवलाक लखनऊ पहुँच गया । लेकिन सिपाहियों ने उसकी टुकड़ी को घेर लिया ।

तीन महीने बाद 45 हजार सिपाहियों की फौज जमा करने के बाद कैम्पबेल ने लखनऊ पर अंतिम आक्रमण करने का निश्चय किया । वहाँ उस समय तक जमा हुए सभी लोगों (लगभग दो लाख) ने नगर की रक्षा करने में भाग लिया । वे बहादुरी से लड़े, लेकिन उनके पास हथियारों और कुशल सेनानियों का अभाव था । लखनऊ के लिए लड़ाई एक महीने तक चलती रही । 19 मार्च 1858 को

नगर पर कब्जा हो गया और लगभग दो हफ्ते तक ब्रिटिश फौजें लूट और कत्लेआम मचाती रहीं । लूट का माल वस्तुत: बहुत अधिक था ।

1 नवम्बर, 1858 को महारानी विक्टोरिया के नाम से एक उद्घोषणा की गयी, जिसके अनुसार भारत का प्रशासन ब्रिटिश ताज को सौंप दिया गया और ईस्ट इंडिया कंपनी भंग कर दी गयी । महारानी ने किसी भी अंग्रेज की हत्या में प्रत्यक्ष रूप में भाग लेने वालों के सिवा विद्रोह में शामिल होनेवाले सभी सामंतों को क्षमादान का आश्वासन दिया । उसने यह घोषणा की कि नयी सरकार भारतीय सामंतों के सांपत्तिक अधिकारों का सम्मान करेगी । इस उद्घोषणा का यह परिणाम हुआ कि सामंती उच्च वर्गों ने अब अपने को विद्रोह से अलग कर लिया । अवध के ताल्लुकेदारों, राजाओं और जमींदारों ने जिन्होंने कैनिंग की मार्च घोषणा के बाद विद्रोह कर दिया था, अब हथियार रख दिये । केवल उन्हीं सामंतों ने संघर्ष जारी रखा, जिन्हें क्षमादान की आशा नहीं थी ।

अंग्रेजों ने विद्रोह को कुचल दिया, फिर भी उन्हें भारत में अपनी नीति में सुधार करने के लिए मजबूर होना पड़ा । ईस्ट इंडिया कंपनी को खत्म कर दिया गया और भारत ब्रिटिश सरकार का एक उपनिवेश बन गया, जो अब औपनिवेशिक प्रशासन के सभी कर्मचारियों को नियुक्त करने लगी । अंग्रेज इसके भी

आकांक्षी थे कि सामंतों का असंतोष न भड़के और इसलिए उन्होंने अधिक सतर्कपूर्ण नीति अपनायी और अधिक प्रभावशाली सामंतों को रिआयतें प्रदान कीं । विद्रोह के बाद भारत में ब्रिटेन की औप - निवेशिक नीति में एक नये चरण का आरंभ हुआ ।

2·1·1·4· रानी विक्टोरिया के प्रशासनिक सुधार और ब्रिटिश शासन का बढ़ता हुआ प्रभाव :-

1857-1859 का जन विद्रोह भारत के इतिहास में एक महत्वपूर्ण सीमाचिह्न है । उसने ब्रिटिश शासन के सामाजिक आधार की आपेक्षिक कमजोरी को प्रकट किया और अपने शासकों के प्रति जनसाधारण की गहरी नफरत को व्यक्त किया ।

ब्रिटिश पूंजीपति वर्ग प्रशासन तंत्र को मजबूत करने और इसे नयी ऐतिहासिक परिस्थितियों के अनुकूल बनाने के वास्ते औपनिवेशक प्रशासन प्रणाली में महत्वपूर्ण परिवर्तन करने के लिये विव हो गया था । इन प्रशासनिक सुधारों के दौरान कुल मिलाकर राजकीय तंत्र, यानी ब्रिटेन के भारत के औपनिवेशिक दासीकरण के मूल साधन का अंतिम रूप सामने आया ।

2 अगस्त, 1858 को ब्रिटिश संसद ने भारत के बेहतर शासन के लिए एक अधिनियम पारित किया, जिसके तहत भारत में राजकीय सत्ता ब्रिटिश ताज को हस्तांतरित कर दी गयी और औपनिवेशिक

प्रशासन ब्रिटिश संसद और सरकार के प्रत्यक्ष नियंत्रण में आ गया। द्वैध शासन प्रणाली अर्थात बोर्ड ऑफ कंट्रोल और ईस्ट इंडिया कंपनी के कोर्ट आफ डायरेक्टर्स के जरिये शासन को समाप्त कर दिया गया। इन निकायों को भंग कर दिया गया और उनके कार्यों को भारतीय मामलों के लिये एक नवगठित मंत्रालय को हस्तांतरित कर दिया गया, जिसके तत्वावधान में एक इंडिया काउंसिल कायम की गयी, जिसके सदस्य ब्रिटिश और भारतीय सिविल सर्विस के बड़े अफसर थे। ब्रिटिश गवरनर जनरल को वाइसराय की भी उपाधि दे दी गयी और इस प्रकार वह देश में ब्रिटिश ताज का प्रत्यक्ष प्रतिनिधि बन गया। प्रशासन का केन्द्रीकरण करके ब्रिटिश पूंजीपति वर्ग ने औपनिवेशिक प्रशासन के कार्यकलाप पर अपना नियंत्रण मजबूत बना लिया। इस तरह ब्रिटिश शासन का प्रभाव बढ़ता रहा।

2·1·2· आर्थिक परिस्थितियाँ :-

2·1·2·1· ब्रिटन की शोषण मूलक अर्थनीति :-

ब्रिटन में औद्योगिक पूंजीपति वर्ग द्वारा अपनी स्थिति मजबूत करने के बाद भारत का आर्थिक विकास अधिकाधिक रूप में उस वर्ग के हित में होने लगा। भारत को धीरे-धीरे ब्रिटिश वस्तुओं के बाज़ार और ब्रिटिश उद्योग के कच्चे मालों के स्रोत में परिवर्तन कर दिया जाता था।

2·1·2·2· ब्रिटन की सीमाशुल्क नीति :-

ब्रिटन की सीमा शुल्क नीति ने भारत को कम निर्यात प्रशुल्कों की वजह से ब्रिटिश निर्यात प्रोत्साहित करनेमें सहायता को, जब कि उच्च आयात प्रशुल्क ब्रिटन में भारतीय दस्तकारी सामान के आयात में बाधक थे। भारत में ब्रिटिश कपड़े के आयात पर दो और साढ़े तीन प्रतिशत के बीच शुल्क था। ब्रिटेन में आने-वाले भारतीय कपड़ों पर आयात शुल्क बीस और तीस प्रतिशत के बीच था। परिणाम स्वरूप भारत को पहले की भाँति कपड़ों का निर्यात करने के स्थान पर इसका आयात शुरू करने के लिए विवश होना पड़ा। अन्य मालों के संबंध में भी घटनाक्रम इसी प्रकार चला।

2·1·2·3· वस्त्र व्यापार में कुटिल नीति :-

हालांकि ब्रिटिश वस्त्रों की बिक्री भारत के स्थानीय वस्त्रों की तुलना में कम दाम पर होती थी, फिर भी उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक उनकी अधिक मंग केवल नगरों में और बंदरगाहों के निकट अवस्थित कुछ ग्रामीण बस्तियों में ही थी। भारतीय दस्तकारों को जिन्हें अपने पुराने बाजारों से वंचित कर दिया गया था, अपने हाथ से बुने वस्त्रों को उसी दाम पर बेचने के लिए मजबूर होना पड़ा, जिस पर ब्रिटिश मिलों में बने वस्त्र बेचे जाते थे। परिणाम स्वरूप

दस्तकारों के जीवन स्तर तेजी से गिरावट आयी । उदाहरणार्थ मद्रास प्रेसिडेंसी में बुनकारों को कुल आय में 1815 और 1844 के बीच 75 प्रतिशत की गिरावट आयी ।

2·1·2·4· कृषक नीति :-

किसानों के शोषण की सामंती विधाओं का इस्तेमाल करते हुए और उन्हें तेज करते हुए अंग्रेजों के लिए पहले से वस्तुत: कोई पूंजी लगाने की चिंता किये बिना छोटो किसानो काश्तों से कच्चे माल प्राप्त करना संभव हो गया । संभवत: यही कारण था कि भारत में बागान नहीं विकसित किये गये । अफीम के पोस्ते और नील खरीदने के लिये किसानों के साथ बड़े पैमाने पर जबरदस्ती ठेके किये जाते थे । इस प्रणाली ने इन फसलों की अपने खेतो में खेती करनेवाले किसानों को वस्तुत: भूदास जैसा बना दिया । नील बगान के अंग्रेज मालिक-निलहे साहब-पेशगी पैसा देकर किसानों को बेबस बना देते थे और फिर उनको पूरी की पूरी फसल को ठेके में मनमाने तौर पर निर्धारित बहुत ही कम दाम पर हथिया लेते थे, जिसका मतलब यह था कि किसान कभी अपने कर्ज अदा नही कर सकता था । माँ-बाप के कर्ज उनके बच्चों पर चढ़ जाते थे । हर बगान मालिक के पास गुंडों के गिरोह होते थे, जो किसानों को नियंत्रण में रखते थे, और उनके भागने पर या तो उन्हें पकड़कर वापस ले आते थे या पडोसी बागानो मे काम करने वाले किसानों को उठालाते थे । किसानों ने इन गैर

कानूनी तरीकों, लूट और अत्याचार का विरोध "नीलविद्रोहों" से किया, जो अठारहवीं शताब्दी के नौवें दशक से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक रह रह कर होते रहे ।

2·1·2·5· किसानों की बढ़ती ऋणग्रस्तता और भूमिहीनता :-

सातवें और आठवें दशकों में रैयतवारी क्षेत्रों में 1857-1859 के विद्रोह के पूर्व आरंभ की गयी जमीन की पैमाइश और बंदोबस्त कार्रवाइयाँ पूरी हो चुकी थीं । नये भूकर के लागू करने के दौरान रैयतों के निजी भूस्वामित्व के मालिकाना अधिकारों को अंतिम रूप दे दिया गया । एक ऐसी स्थिति में, जब कि माल-मुद्रा संबंधों का विकास तेज हो रहा था, निजी भूस्वामित्व के अधिकारों के दृढ़ीकरण के परिणाम स्वरूप भूमि अधिक मूल्यवान हो गयी और बाजारी जिंस परिचालन मे अधिकाधिक खींचती गयी । भूमि की कीमतों में तेजी से वृद्धि हुई, जो कृषि-पैदावार की कीमतों में आम वृद्धि से अधिक थी । अविकसित पूंजीवादी उद्यम के संदर्भ में भूमि की खरीद ही सबसे लाभप्रद तरीका बन गया जिसमें व्यापारी, महाजन और सामंत अपनी संचित रकम लगा सकते थे ।

जमीन के महाजनों, व्यापारियों और जमींदारों के हाथों में जाने ने भारतीय कृषि के आर्थिक आधार को परिवर्तित नहीं किया । किसान जो अपनी काश्त का मालिक नहीं रह गया था, अब कमरतोड़ लगान से पंगु काश्तकार की तरह की उस पर खेती करता रहा ।

पट्टे पर दी गयी जमीन के रकबे तथा काश्तकारों की संख्या में वृद्धि हुई । इसके साथ ऐसे लोगों की संख्या में भी वृद्धि हुई, जिनकी आय का मुख्य स्त्रोत लगान था ।

उन्नीसवीं शताब्दी के पांचवें, छठे और सातवें दशकों में विशेष रूप से विद्रोह के दौरान किसानों के बीच असंतोष की बढ़ती लहरने उपनिवेशवादियों को विद्रोह के बाद के तीन दशकों में बंगाल, उत्तर-पश्चिमी प्रांत, पंजाब और मध्य प्रांत में जमींदार-काश्तकार संबंधों के नियामक कानून बनाने के लिए विवश किया । इन कानूनों ने नाम के लिए जमींदारों द्वारा काश्तकारों के अधिक सुविधा प्राप्त समूहों के सामंती शोषण को सीमित कर दिया । पर व्यवहार में भूस्वामी किसानों से उनकी फसलों का आधा या इससे भी अधिक लगान के रूप में लेते रहे । इसके अलावा किसानों को अपने सामंतों के लिए तरह-तरह की बेगार भी करनी पड़ती थी । औपनिवेशिक काश्तकारी कानून ने, जिसका उद्देश्य भारतीय किसानों के असंतोष को रोकना था, व्यवहार में उनके शोषण की सामंती विधियों को बढ़ावा ही दिया ।

2·1·2·6· भारत का ब्रिटिश पूंजी के लिये निवेश का क्षेत्र बन जाना :-

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में भारत का ब्रिटिश पूंजी के लिए निवेश के एक क्षेत्र के रूप में प्रयोग शुरू हो गया। भारत में ब्रिटिश निवेश का पहला प्रमुख साधन रेलवे ने प्रदान किया। कच्चे मालों के स्रोत तथा बाजार के रूप में भारत के शोषण के लिए संचार और परिवहन के आधुनिक साधनों की जरूरत थी। रेलवेमार्ग का निर्माण इस इरादे और तरीके से किया गया था कि उससे ब्रिटिश उपनिवेशवादियों द्वारा देश के दासीकरण और शोषण में सहायता मिले। रेलमार्ग का निर्माण ब्रिटिश व्यापारियों के लिए धन का अक्षय स्रोत बन गया, क्योंकि औपनिवेशिक अधिकारी रेल कंपनियों को उनके वास्तविक व्यय से निरपेक्ष अधिकतम मुनाफे प्रत्याभूत करते थे। ब्रिटिश ठेकेदारों के मुक्तहस्त अपव्यय की कीमत भारतीय करदाताओं के खून और पसीने से चुकायी जाती थी।

ब्रिटिश पूंजी निवेश के लिए दूसरा महत्वपूर्ण क्षेत्र सिंचाई-नहरों का निर्माण था। ये नहरें उन क्षेत्रों में बनायी गयीं, जहाँ निर्यात के लिए फसलों की खेती होती थी (उदाहरणार्थ सिंध और पंजाब, जो निर्यात के लिए कपास और गेहूं की खेती के मुख्य क्षेत्र बन गये थे)। सिंचाई शुल्कों के जरिये अंग्रेजों के लिए न केवल किसानों के मत्थे अपनी लागत पूरी करना ही, बल्कि भारी मुनाफे कमाना भी संभव हो गया।

ब्रिटिश साम्राज्यवादी औपनिवेशिक शोषण की सभी विधायों-कराधान, तैयार मालों का आयात, कच्चे मालों का निर्यात का इस्तेमाल करते हुए इस गुलाम देश से विशाल औप - निवेशिक " खिराज " निचोड़ रहे थे, जिसका कुल मूल्य लगभग दस करोड़ पौंड सालाना के बराबर था ।

2·1·3· सामाजिक परिस्थितियाँ :

2·1·3·1· उपन्यास के उद्भव कालीन सामाजिक परिस्थितियाँ :-

भारत में अंग्रेजी शासन प्रारम्भ होते-होते मुगल शासकों की शक्ति क्षीण हो चुकी थी । शिक्षा की कमी तथा तत्कालीन समाज की दशा भी इस पतन का बहुत सीमा तक कारण थे । विलास-प्रियता तथा अत्यधिक मद्यपान ने अधिकारियों को पतन के गेड्ढे में गिरा दिया था । समाज के प्रत्येक वर्ग में अंधविश्वास, अशिक्षा तथा कुरीतियाँ आदि फैली हुई थीं, जो उसकी उन्नति में सब प्रकार से बाधक थीं । जनता का ज्योतिष आदि पर विश्वास था, अत: अज्ञानी एवं अपढ़ लोगों ने उसे ठगने का एक रास्ता यह भी अपना लिया था । धार्मिक अंध विश्वास से जनता की उन्नति के मार्ग बन्द कर दिये गये थे । चरित्र-हीनता तत्कालीन समाज का मुख्य दुर्गुण था । मठ तथा अन्य धार्मिक स्थान व्यभिचार के बड़े-बड़े अड्डे बन चुके थे और लोग अन्धे बनकर नरक में गिरते जाते थे । अनेक पाखंडी जातियों से भी लोगों को घृणा थी । बेगारी का प्रचार था । जनता में नैतिकता

की कमी थीं। देश की बौद्धिकता भी नष्ट हो चुकी थी। शासकों में अधिकांश विलास-प्रिय होते थे। उच्च लोगों में तड़क-भड़क तथा ऐश्वर्य-प्रदर्शन की भावना व्याप्त थी। ये लोग भड़कीले तथा कीमती वस्त्रों का उपयोग करते थे। इनके भोजन में नशीली वस्तुओं तथा उत्तेजक पदार्थों की बहुलता रहती थी। इनके उपयोग में लायेजाने वाले बर्तन भी कीमती होते थे। इस युग में जहाँआरा, रोशनआरा, जेबुन्निसा, चाँदबीबी, ताराबाई तथा नूरजहाँ आदि अनेक इतिहास प्रसिद्ध स्त्रियाँ हुई। इन स्त्रियों की ख्याति चाहे जिन कारणों से रही हो, परन्तु इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि तत्कालीन भारतीय महिला समाज में कोई उल्लेखनीय विशेषता न थी। स्त्रियों में अशिक्षा, अज्ञान तथा अन्ध विश्वास ही अपेक्षाकृत अधिक होने का कारण सम्भवतः उनकी पर्दे की प्रथा तथा रूढ़िवादिता थी। इस दृष्टि से जीजाबाई आदि कुछ स्त्रियाँ आदर्श नारियाँ कही जा सकती हैं।

2·1·3·2· अंग्रेजों की शिक्षा नीति :-

अंगरेजी शिक्षा का प्रचार आरम्भ में विशेषतः बंगाल में हुआ। उत्तर भारत में लोग इस ओर उन्मुख नहीं हुए। इस का एक कारण यह है कि पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवध को बहुत बाद में ब्रिटेन राज्य में मिलाया गया। कलकत्ता विदेशी व्यापारियों का केन्द्र था, फलतः अँगरेजी शिक्षा प्राप्त लोगों को व्यावसायिक फर्मों और प्रशासकीय

दफ्तरों में नौकरी पाने की सुविधा थी । बंगाल के बाहर में ये सुविधाएँ उपलब्ध नहीं थीं । ईसाई मिशनरीयों के साथ सम्बद्ध होने के कारण वहाँ के लोग अंगरेजी शिक्षा को शंका की दृष्टि से देखते थे शिक्षा में पिछड़े रहने के कारण उत्तर भारत के सांस्कृतिक विकास में भी गत्यावरोध आया, जिसे दूर करने में समय लगा ।

आधुनिक शिक्षा के प्रसार में तीन प्रमुख तत्वों के योग को स्वीकार करना होगा : 1· विदेशी ईसाई मिशनरी 2· अंगरेजी शासन व्यवस्था 3· प्रगतिशील भारतीय समाज सुधारक । ईसाई मिशनरी की दृष्टि में अपने धर्म प्रचार के लिए जनता से संबंध स्थापित करना आवश्यक था । अत: उनके शिक्षा प्रसार का उद्देश्य धर्म को जनसाधारण की भाषा के माध्यम से सुलभ और सुगम बनाना था । अंगरेजों ने भारत जैसे विस्तृत भू भाग पर शासन के लिए जिस व्यवस्था के जटिल जाल का निर्माण किया था, उसके लिए अनेक भारतीय शिक्षित युवकों की आवश्यकता थी, जो उनके रीतिरिवाज से ही नहीं वरन उनकी आधुनिक शिक्षा से भी परिचित हों । व्यापार के विस्तार के लिए भी अंग्रेजों को क्लर्क, मैनेजर और एजेंटों की आवश्यकता का अनुभव हो रहा था । अत: भीतर से न चाहते हुए भी, बाह्य परि - स्थितियों के कारण उन्हें आधुनिक शिक्षा का प्रसार करना पड़ा । भारतीय जीवन में वर्षों की दासता से उत्पन्न जो जड़ता, धार्मिक रूढ़ियाँ एवं चिंतन में जो गत्यावरोध उत्पन्न हो गया था, स्वयं उद्‌बद्ध भारतीय उसे दूर करने के लिए प्रयत्नशील हो उठे थे ।

प्रारंभ में अंग्रेजी शासनावस्था, भारत में पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार का विरोध करती रही । बाद में मिंटो, मुनरों, राजा राममोहन राय के प्रयत्न के पश्चात पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार के निमित्त स्कूल कालिज खुलने की व्यवस्था हुई । 1823 के प्रसिद्ध " मिनट " में इस तथ्य पर आग्रह प्रकट किया गया है कि ऐसे स्कूल और कालेज खोले जाएँ - जहाँ देशवासी लोकसेवा की नियुक्ति के लिए तैयार हो सकें । मैकेल की यह मान्यता थी कि हिन्दुस्तान कोष से भारत वर्ष की सांस्कृतिक एवं तत्सम्बन्धी पुस्तकों के प्रकाशन में कुछ भी व्यय नहीं किया जायेगा ।

लेकिन अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली की नीति के अधिकांश परिणाम भारतीयों के हित में हुए । धीरे-धीरे शिक्षित मध्यवर्ग ने यूरोप के आधुनिक लोकतांत्रिक विचारों को आत्मसात कर लिया और अपने देश की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था में सुधार के लिए वे ही तर्क उपस्थित किये और मध्ययुगीन रूढ़िवादिता के साथ ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विरोध किया । यद्यपि ब्रिटिश शासन को अपने प्रशासनिक हितों के लिए एक विस्तृत बाबू वर्ग तो मिल गया किन्तु इसके साथ ही देश में व्यापक राष्ट्रीय चेतना का निर्माण हुआ । ध्यान से परख ने से यह मालूम पडता है कि इन दोनों प्रक्रियाओं का नेतृत्व शिक्षित मध्यवर्ग ने ही किया । इस तरह अंग्रेजी शिक्षा नीति, मुद्रण-प्रकाशन व्यवस्था के कारण बढ़ती पुस्तक संख्या और साक्षरता,

एक नये मध्यवर्ग के विकास ने जिस सामाजिक गतिशीलता को जन्म दिया । उससे भारतीय जनता की सामाजिक, सांस्कृतिक संरचना और मानसिकता में संक्रमण की स्थिति उत्पन्न हो गयी ।

2·1·3·3· मुद्रण एवं प्रकाशन व्यवस्था :-

भारत वर्ष में मुद्रण-यन्त्र स्थापित करने का श्रेय पुर्तगालियों को है । सन् 1674 में ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा बम्बई में मुद्रण-कार्य आरम्भ किया गया । अठारहवीं शताब्दी में मद्रास, कलकत्ता, हुगली, बम्बई आदि स्थानों में छापेखाने स्थापित हुए । मुद्रण-यन्त्र के कारण साहित्य में वैयक्तिकता की भावना आयी । इसके पूर्व साहित्य सामान्यतः श्रुत हुआ करता था । उसके प्रशंसकों की संख्या सीमित होती थी । इसलिए साहित्यकारों के लिए आवश्यक था कि अपने श्रोताओं की रुचि का ध्यान रखें, पर छापेखाने ने सारी स्थिति ही उलट दी । अब साहित्यकार और समाज का सीधा सम्बन्ध नहीं रह गया - मुद्रण के माध्यम से ही वे एक-दूसरे से सम्बद्ध हो पाते थे । इस माध्यम ने साहित्यकार को अवसर दिया कि वह बहुत-कुछ व्यक्तिगत भी अभिव्यक्त कर सके । मुद्रण-यन्त्र के आविष्कार के पूर्वसाहित्य में वैयक्तिकता का समावेश अत्यल्प था ।

आधुनिक काल का साहित्य मुद्रण-कला के कारण अपने रूप-रंग, अभिव्यंजना, प्रभावान्विति आदि में मध्यकालीन साहित्य से पृथक और स्वतंत्र रूप से अस्तित्ववान् हो गया है। आधुनिक काल के साहित्य में जो वैविध्य, वैयक्तिक कल्पना-छवियाँ, बौद्धिकता और प्रयोगात्मकता आयी है उसका आंशिक दायित्व छापेखाने पर भी है।

आधुनिक काल के साहित्य में मुद्रण-कला के कारण जो वैविध्य आये है उसी में उपन्यास एक है। उपन्यास आधुनिक युग की देन है। इसके लेखक और पाठक भी मध्यवर्गीय है। उपन्यास का विषय भी मध्यवर्गीय मानव जीवन से सम्बन्धित है। मुद्रण यंत्र के आविष्कार के पहले, उपन्यास के उद्भव के लिये अवश्यक गद्य साहित्य और मध्यवर्गीय समाज दोनों भी अविकसित रहे।

2·2· प्रवृत्तियाँ :

2·2·1· उद्भव कालीन उपन्यासकार और उनके उपन्यास :-

इस युग (प्रेमचन्द पूर्व युग) के उपन्यास कारों ने परम्परागत कथा साहित्य को ही अपना आधार माना। दशकुमार चरित, कथा सरित्सागर, पंचतन्त्र और हितोपदेश आदि घटना प्रधान रचनाओं का उद्देश्य मनोरंजन प्रदान करना और साथ ही साथ सुधारवादी दृष्टि-कोण होता था। इन कृतियों के समान ही जासूसी और तिलस्मी

उपन्यासों का मुख्य उद्देश्य होता था, मनोरंजन प्रदान करना । इसी कारण इस युग के उपन्यासों की प्रमुख विशेषता थी । इनका घटनाप्रधान होना । स्वरूप की दृष्टि से इस युग के उपन्यास परम्परा से हटकर पश्चिम का नवीन शिल्प लेकर आये । इस युग के उपन्यासों को हम सुविधा की दृष्टि से तीन वर्गों में विभक्त कर सकते है —

1· शुद्ध मनोरंजन प्रधान उपन्यास
2· उपदेश-प्रधान सामाजिक उपन्यास
3· ऐतिहासिक उपन्यास

शुद्ध मनोरंजन प्रधान उपन्यासों में घटनाओं की सृष्टि लेखक इस तरह करता है, कि रचना में अनेक अद्भुत करिश्मे दिखाई पड़ते हैं। जासूसी और तिलस्मी उपन्यासों में पाठक की कौतूहल वृत्ति को बनाए रखने की अद्भुत क्षमता होती है, किन्तु इस समानता के बावजूद जासूसी और तिलस्मी उपन्यास के शिल्प में अंतर है । जासूसी उपन्यास का कथानक सीमित कार्यकरण श्रृंखला से जुड़ा होता है, जबकि तिलस्मी उपन्यास के कथानक में विस्तार और बिखराव अधिक होता है । तिलस्मी उपन्यासों में कथा का क्रम आगे की ओर अग्रसर होता है, जासूसी उपन्यास में पीछे की ओर जाता है । जासूसी उपन्यास की कथा तथ्यपूर्ण, तत्कालीन समाज से सम्बन्धित, वास्तविक घटनाओं के आधार पर होती है, जबकी तिलस्मी उपन्यास की कथा चमत्कार पूर्ण सामन्ती वातावरण युक्त तथा कल्पनाजन्य होता है ।

इस युग के उपन्यासकारों में सर्वाधिक ख्याति तिलस्मी उपन्यासकार देवकीनन्दन खत्री को प्राप्त हुई । इनके प्रसिद्ध तिलस्मी रचनाएँ हैं -- चन्द्रकान्ता, चन्द्रकान्ता सन्तति और भूतनाथ ।

किशोरीलाल गोस्वामी भारतेन्दु और द्विवेदीयुग के मध्य की कड़ी हैं । इन्होंने लगभग 65 उपन्यास लिखे, जिन में ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, तिलस्मी और जासूसी उपन्यास है । ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिकता गौण है, लेकिन कल्पना की ऊँची उड़ानें, तिलस्मी करामतें अधिक दृष्टिगत होती हैं । गोस्वामीजी ने विषय यद्यपि ऐतिहासिक व सामाजिक लिए किन्तु तत्कालीन जासूसी और तिलस्मी प्रवृत्तियों से वे मुक्त न हो सके । गोस्वामी की तिलस्मी व जासूसी रचनाएँ है, राज कुमारी तारा, लवंगलता, कटे मुंड की दो दो बातें, तिलस्मी सोस महल, जिन्दे की लाश, नौलखा हार, खूनी औरत का सात खून आदि है ।

दुर्गा प्रसाद खत्री ने उपन्यास लेखन कला बिरासत में ग्रहण की थी । इसी कारण पिता द्वारा छोडे गये अधूरे उपन्यास " भूतनाथ " को उन्होंने सफलता पूर्वक पूर्ण किया । इनकी जासूस अपराध प्रधान रचनाएँ है, लाल पंजा, रक्तमण्डल, सफेद शैतान, प्रतिशोध आदि ।

गोपालराय गहमरी ने हिन्दी में जासूसी उपन्यासों की परम्परा का श्रीगणेश किया। इन्होंने उपन्यासों के अतिरिक्त काव्य और नाट्य रचना भी की और जासूसी ऐतिहासिक, सामाजिक उपन्यास भी लिखे। किन्तु इनके हिन्दी साहित्य में ख्याति जासूसी उपन्यासकार के रूप में ही प्राप्त हुई। इनकी कुछ रचनाएँ हैं -- "सिर कटी लाश, बेगुनाह का खून, जासूस की भूल, जासूस की चोरी, घर का भेदी, लड़का गायब, खूनी गायब, लटकती लाश, जासूस की ऐयारी, तीन जासूस ठन-ठन गोपाल आदि।

गहमरी जी के समकालीन जासूसी उपन्यासकारों में जयरामदास भी उल्लेखनीय हैं। इनकी प्रमुख रचनाएँ है लंगडा खूनी, बिना सवार का घोडा, भूतों का डेरा, विषम रहस्य आदि।

इन्ही की कोटि में दूसरे लेखक आते हैं ठाकुर जंगबहादुर सिंह। इन्होंने भी अपराध प्रधान जासूसी उपन्यास लिखे हैं। इन्होंने विचित्र खून, शेरसिंह, विलक्षण जासूस, बूढ़ा जासूस आदि जासूसी उपन्यास लिखे।

इस प्रकार हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रेमचन्द पूर्व युग निर्माण युग कहा जा सकता है। जासूसी और तिलस्मी घटना प्रधान उपन्यासों का इस युग में बोलबाला था सरल बोलचाल की भाषा का प्रयोग कर इन लेखकों ने उपन्यास विधा को लोकप्रिय बना दिया।

हिन्दी में प्रेमचन्द पूर्व उपन्यास की ख्याति के दो मुख्य स्तम्भ हैं -- एक है नीतिपरक, सामाजिकता तथा दूसरा स्तम्भ है मनोरंजन की प्रचुरता । नीतिपरक सामाजिकता का शिलान्यास तो बाबू श्रीनिवासदास ने किया, जबकि इस धारा को गति देने का श्रेय सर्व श्री बालकृष्ण भट्ट, अयोध्यासिंह उपाध्याय, मेहता लज्जाराम, ठाकुर जगमोहन सिंह और गोस्वामी आदि को मिलता है । दूसरा स्तम्भ अधिक सशक्त रूप में आलोकित हुआ क्योंकि इसने हिन्दी में एक विशिष्ठ पाठक वर्ग तैयार किया ।

इस युग में सामाजिक उपन्यासों का वांछित विकास नहीं हो सका । इसका कारण यह है कि उन्नीसवीं शताब्दी तक हिन्दी का विशिष्ट बुद्धिजीवि वर्ग तैयार नहीं हुआ था, पहले मुगल काल में फारसीका और फिर अंग्रेजों के भारत-आगमन और सन 57 की क्रान्ति की विफलता में अंग्रेजी परस्त मानसिक दासता की प्रतीक वह पीढ़ी तैयार की, जो हर दृष्टि से पश्चिमी संस्कृति, भाषा और साहित्य की दास बनाती चली गई । एक ओर कीट्स शैली और शैक्र डिक्स, को महान कहने वाली पीढ़ी तो दूसरी ओर अयोध्यासिंह उपाध्याय तथा किशोरीलाल गोस्वामी जैसे कट्टर परम्परा-वादी कथाकार भारतीय नये पीढ़ी को कैसे अपने प्रभाव में ला सकते थे ।

उदाहरण के लिए उपाध्याय जी के " ठेठ हिन्दी के ठाट " को लीजिए । इसमें लेखक ने एक चौदह वर्षीय बालक देवनन्दन और बालिका देवबाला में बाल सुलभ स्नेह, निष्कपट दुलार और एकान्त होने की उत्कंठ इच्छा दर्शाई है, किन्तु देवबाला का पिता उसका विवाह पापाचारी श्यानाथ से कर देता है, जो उसे छोड़कर कलकत्ता में एक रखैल के साथ रहने लगता है । देवबाला एक स्थल पर कहती है — " पति नारी का देवता है, वह वैसा ही क्यों न हो पर तिरिया उसका अयोग और बुरा नही चाह सकती ।"[1] देवबाला एक परम्परावादी आदर्श नारी है, जिसमें लेखक ने भारतीय पातिव्रत धर्म का जयघोष दर्शाया है । यह उपन्यास देश की कुरीतियों, झूठे धार्मिक आडम्बरों, थोथी पारस्परिक मान्यताओं पर एक व्यंग्य भी है, साथ ही प्राचीनता के प्रति आस्था का परिचायक भी है । इस आस्था के मोह ने ही उन्नीसवीं शताब्दी के युवा पीढ़ी को दिग्भ्रान्त कर दिया और उसने शुद्ध साहित्यिक प्रवृत्ति से मुहँ मोड़कर सहज मनोरंजन प्रचार प्रवृत्ति की ओर झुकना श्रेयस्कर समझा ।

श्री देवकीनन्दन खत्री ने सन् 1861 में तथा उसके बाद " चन्द्रकान्ता " एवं " चन्द्रकान्ता सन्तति " नामक उपन्यास प्रकाशित किये । इनके प्रकाशित होते ही हिन्दी जगत में एक धूम मच गई और इनके आगे पूर्ववर्ती सामाजिक उपन्यास फीके पड़ गये ।

1· अयोध्यासिंह उपाध्याय – ठेठ हिन्दी का ठाट – पृ·45·

लोगों का कहना है कि "चन्द्रकान्ता" पढ़ने के लिये कितने ही उर्दू व्यक्तियों ने हिन्दी सीखी । और इस तथ्य से इनकार भी नहीं किया जा सकता कि मनोरंजन प्रधान प्रवृत्ति ने सामाजिक, नीतिपरक उपदेशपरक प्रवृत्ति को झकझोर दिया था ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने "हिन्दी साहित्य के इतिहास में 1877 ई॰ में श्रद्धाराम कृत "भाग्यवती" नाम के एक सामाजिक उपन्यास का उल्लेख किया है, जिसकी बड़ी प्रशंसा हुई थी । इसके अनुसार "भाग्यवती" नव जागरणकालीन आन्दोलन के समय की एक लोकप्रिय कृति ज्ञात होती है । इसलिए इसके कथानक में सामाजिक स्थितियों के चित्र पर्याप्त मात्रा में दिखाई पड़ते हैं । कदाचित् इसी आधार पर वस्तु और शिल्प दोनों दृष्टियों से इसे प्रौढ़ रचना स्वीकार किया गया है । वस्तुतः यह एक "उपदेशाख्यान" है क्योंकि इसमें उपदेश विशेष के लिए कथा को गढ़ा गया है । इसकी कथा में न विश्वसनीयता है और न स्वाभाविकता ही । शैली शिल्प की दृष्टि से भी इसमें आधुनिक हिन्दी उपन्यास का रूप-विधान प्राप्त नही होता ।

इस युग के उपन्यास कारों में सबसे पहले जिस उपन्यासकार का नाम बड़ी श्रद्धा के साथ लिया जाता है, वह है भारतेन्दु मण्डली का जगमगाता नक्षत्र लाला श्रीनिवासदास जिन्होंने परीक्षागुरु [1882] लिखकर हिन्दी में सामाजिक उपन्यास का शिलान्यास किया ।

इस युग के परम्पराओं और नये आविष्कारों के फलस्वरूप नये आदर्श एवं नई मान्यताओं के बीच, एक विचित्र संघर्ष की स्थिति में डोल रहा था, जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव " परीक्षागुरु " पर पड़ा । " परीक्षागुरु " एक शिक्षा-प्रद उपन्यास है । इसमें यह दिखाया गया है कि एक धनी व्यक्ति किस प्रकार अपने चापलूस मित्रों के फेर में पड़कर ऋणी होकर दुःख पाता है, तथा अन्त में एक ईमानदार मित्र की सहायता से उसका कल्याण होता है । इस उपन्यास की शैली तर्कपूर्ण है, जिसमें शिक्षा और उपदेशात्मकता की भावनाओं की प्रधानता है ।

2·2·2· प्रेमचन्द का प्रवेश :-

प्रेमचन्द का उपन्यास लेखन काल वैसे तो उर्दू में सन् 1905 से ही शुरू होता है किन्तु हिन्दी में 1918 से प्रारम्भ होता है । प्रेमचन्द अपने युग के सर्व प्रमुख और प्रतिनिधि उपन्यासकार हैं । उनके उपन्यासों की प्रधान विशेषताओं में एक यह है कि उनमें एक क्रमबद्ध विकास-रेखा दृष्टिगोचर होती है । उनके अधिकांश पात्र ऐसे हैं, जो काल्पनिक-जगत के जाल से खींचकर यथार्थ जगत की व्यवहारिकता की ओर बढ़ते प्रतीत होते हैं । पूर्व युगीन कथा परम्परा के फलस्वरूप वे आदर्शवाद का आगमन करने-से जान पड़ते हैं, परन्तु इतना होने पर भी नवीन युग की समस्याओं के प्रति उदासीनता उनमें नहीं मिलती । एक दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द ने सर्व प्रथम उपन्यास के क्षेत्र से अनावश्यक आदर्शवादिता का बहिष्कार

किया, जो अबतक के उपन्यासों को एक प्रमुख विशेषता कही जा सकती है । हिन्दी उपन्यासों में नया मोड देनेवाले प्रेमचन्द अपने युग के ही नहीं सर्वोत्कृष्ट उपन्यासकार हैं । आधुनिक युग में हिन्दी उपन्यास की जो नयी प्रवृत्तियाँ देख पड़ती हैं, अपने बीज रूप में वे प्रेमचन्द के उपन्यासों में न्यूनाधिक मात्रा में विद्यमान हैं । इसी प्रकार प्रेमचन्द के उपन्यासों में जो समस्याएँ उठायी गयी है, वह व्यक्तिगत और पारिवारिक न होकर समाजव्यापी है और सामाजिक सीमाओं का स्पर्श करती हैं । प्रेमचन्द ने भारतीय नागरिक एवं ग्रामीण जीवन के अनेक महत्वपूर्ण प्रश्नों तथा उनके विविध पक्षों पर मानवतावादी दृष्टिकोण से विचार किया । यही कारण है कि उनकी कृतियाँ जनता का साहित्य है, जिसमें भारतीय सामाजिक जीवन प्रतिबिम्बित होता है । ग्रामीण समाज, सामाजिक कुरीतियाँ, धार्मिक-पाखण्ड, वेश्या-समस्या, अछूत-समस्या, राजनैतिक-स्वतन्त्रता, क्रांति का स्वरूप तथा समाज के विभिन्न वर्ग आदि उनके उपन्यासों के मुख्य विषय कहे जा सकते हैं ।

प्रेमचन्द का सर्वप्रथम उपन्यास " सेवासदन " सन् 1918 में प्रकाशित हुआ । इस उपन्यास उनके आदर्शवादी विचारों का परिचय देने तथा विविध समस्याओं के प्रति उनके दृष्टिकोण के स्पष्टीकरण की दृष्टि से असाधारण महत्व का है । इस उपन्यास की कथा वस्तु विविध सामाजिक समस्याओं पर आधारित है । समाज की रूढ़ि - वादिता, स्त्री-शिक्षा की समस्या, अनमेल विवाह की समस्या, वेश्या

समस्या, दहेज को समस्या आदि पर उपन्यास में विचार किया गया है । ये समस्याएं इसके पूर्व के उपन्यासों में भी मिलती हैं, परन्तु सामाजिक व्यवस्था की जिन कमियों को ओर इस कृति में संकेत किया गया है, वह नवीन है ।

" सेवासदन " की रचना का केन्द्रबिन्दु " सुमन " है । वह सभ्य एवं औसत दर्जे की एक सुन्दर लडको है । उसकी विशिष्टता यह है कि वह अन्याय के सामने सिर नहो झुकातो । वह आत्म - सम्मान को ठुकराया जाना नहीं स्वीकार करतो । उसके पिता थानेदार है किन्तु पिता के आर्थिक विषमताओं ने उसे सुयोग्य वर से वंचित रखा । अंत में " सुमन के मामा उमानाथ एक दुहेजू वर गजाधर के साथ उसका विवाह करा देते हैं । सुमनको माँ बुड्ढे वर को देखकर बहुत रोतो है और उसे ऐसा लगता है कि मानो किसो ने सुमन को कुएं में डाल दिया हो । गरोबो और अनमेल विवाह के फलस्वरूप सुमन के भविष्य को आशाओं पर पानो फिर जाता है । दंपति के स्वभाव में मेल नहीं होने के कारण आत्मिक संबन्ध नहो जुड़ पाते फलत: वह अपना मन बहलाने के लिए वकोल पद्मसिंह के यहाँ जाने लगो, इस पर गजाधर संदेह करने लगता है और सुमन के साथ खरोदी हुई दासो के समान व्यवहार करता है । अब सुमन ने अच्छो तरह समझ लिया था कि समाज के वर्तमान ढाँचे में संस्कार संपन्न स्त्रो की कोई इज्जत नहीं है । इज्जत है तो उन स्त्रियों की जो अपनी इज्जत बेचने के लिए तैयार हैं ।

इस अनुभव से प्रेरणा पाकर वह अपने घर के सामने रहने वाली भोली नामक वेश्या के यहाँ आना जाना प्रारंभ करती है। इस वेश्या के यहाँ बड़े-बड़े सम्मानित और प्रतिष्ठित व्यक्ति निसंकोच जाया करते है। पति वहाँ जाने से बलपूर्वक रोकता है। पत्नी के रूप में सुमन को गजाधर से सदैव स्नेहहीन और संदेह एवं तिरस्कार पूर्ण व्यवहार मिलता है और दूसरी ओर भोली को वेश्या के रूप में समस्त वैभव और बडे-बडे सेठ रईसों एवं सुशिक्षित पुरुषों का संमान प्राप्त होता है। इस सामाजिक अन्याय से सुमन क्षुब्ध हो उठती है। पति उसे घर से निकाल देता है। वह विवश होकर पद्मसिंह के यहाँ आश्रय लेती है। पद्मसिंह धर्म की आड़ में सुमन को वेश्या-पथ पर लाकर खडी कर देता है। सुमन विट्ठलदास को जो उसे वेश्यावृत्ति छोड़ने के लिए समझाने जाते हैं, अपने जीवन का कटु सत्य पेश करती है। विट्ठलदास सुमन के तर्कों से परास्त हो जाते है तथा जब पद्मसिंह सुमन से मिलते हैं, तब वह उन्हें भी व्यंग्य बाणों से बेधकर आहत कर देती है। पद्मसिंह प्रायश्चित करते हुए स्वीकार करता है कि वह उस समय सुमन को घर से बाहर न करता तो उसकी यह दशा न होती।

अंत में सुमन विट्ठलदास और पद्मसिंह के समझाने पर एक विधवाश्रम में संमिलित हो जाती है और मानवतावादी धरातल पर प्रतिष्ठित होकर, अपने अपराध को स्वीकार कर लेती है। देश की लाखों दु:खी आत्माओं के समान परिश्रम करके, ईश्वर के भरोसे जीवनयापन का विट्ठलदास को विश्वास दिलाती है।

प्रेमचन्द समाज सुधारक की भाँति सुमन का ही नही, अन्य वेश्याओं का भी सुधार करना चाहते है जिसके साहित्य में आदर्शवाद की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। विधवा स्त्रियों के लिये "सेवासदन" की स्थापना की जाती है और उसका नियंत्रण सुमन को सौंप दिया जाता है। केवल यही सूत्र प्रेमचन्द के यथार्थ और आदर्श दोनों रूपों में सामंजस्य करता है।

"प्रेमाश्रम" जो पहले उर्दू में लिखा और छपा पहले हिन्दी में §1921§, एक कृषि-सम्बन्धी उपन्यास है, जिसमें औद्योगिक सभ्यता से पहले के गाँव की सामाजिक और आर्थिक दशा का विशाल चित्र अंकित है। प्रेमाश्रम में वे न केवल विस्तार से किसानों के असंतोष और तकलीफ के कारणों को रेखांकित करते हैं, अपितु उनके जागरण को देशव्यापी जन-जागरण से जोड़कर देखते हैं।

किसान एक ओर जमीन्दारी के कुत्सित स्वार्थों की चोट झेल रहा है, दूसरी ओर पुलिस आदि के अत्याचार उसे तोड़ रहे है। ये सभी घटनाएँ लखनपुर नामक गाँव में होती हैं। अमेरिका से पढ़कर लौटे प्रेमशंकर गरीबों की सेवा करते रहता है। बाद में उनको ग्राम सुधार का अगवा बनाकर वे स्पष्ट करते है कि पढ़े-लिखे सभी लोग जनसाधारण के उत्पीडन में रुचि नही लेते। एक ओर किसानों को धोका देनेवाले ईर्फानअली है, झूठी मेडिकल रिपोर्ट देनेवाले डॉ॰ प्रियानाथ है और सबसे बढ़कर ज्ञानशंकर है। सब पढ़े-लिखे हैं। इनके अतिरिक्त दीपसिंह जैसे राज्यसभा के सदस्य हैं,

जिन्होंने अपने वर्ग के स्वार्थों पर जनहित का मुलम्मा चढ़ा रखा है। दीपसिंह ऐसा प्रस्ताव लाना चाहते हैं कि जमींदारों को आसामियों से लगान वसूल करने के ऐसे अधिकार मिलने चाहिए कि वे अपनी इच्छा से जिस आसामी को चाहें, बेदखल कर लें। प्रेमचन्द जमींदार परिवार के प्रेमशंकर को " डिक्लास " करके गाँव रहकर किसानों को संगठित करते दिखाते हैं। यही नहीं अपने भाई ज्ञानशंकर के पुत्र मायाशंकर को भी इसी समाजवादी रास्ते पर डाल देते हैं।

प्रेमशंकर ने प्रेमाश्रम की स्थापना की, किसानों की ओर से लड़े भी, लेकिन प्रेमचन्द उनकी सीमाओं से अनभिज्ञ नहीं हैं। वे उनसे किसी बड़े परिवर्तन की अपेक्षा भी नहीं करते। एक स्थान पर इस तरह का संकेत भी दिया गया है। जब जब मायाशंकर उनसे किसानों का कष्ट निवारण का उपाय पूछता है, तब-तब वे या तो मौन रहो जाते हैं या किसानों को, मूर्खता आलस्या आदि दु:स्वभाओं को उनकी दुर्दशा के लिए जिम्मेदार ठहरा देते हैं। यानी कि प्रेमशंकर पूरी तरह अपने वर्गचरित्र से बाहर नहीं जा पाते। तत्कालीन जमींदारों का मनोविज्ञान कुछ इस तरह का था कि आसामी स्वभाव से नीच, बदमाश और लतखोर होता है। अत: रिआया पर जुल्म करना जन्मसिद्ध अधिकार है। नालिश, कुर्की, बेदखली आदि से वे किसानों के असंतोष को कुचलने के प्रयास में सदैव सक्रिय रहते हैं। " प्रेमाश्रम " का किसान स्वभाव से विद्रोही नहीं, लेकिन उसे मरजाद प्यारी है। यदि डपटसिंह

के लिए मरजाद का मतलब है खेती, तो मनोहर के लिए मरजाद इज्जत है। जब किसानों से जबरन बेगार ली जाती है, घास छिलवाई जाती है, डंडों से खबर ली जाती है, तब उनकी सहनशीलता जवाब दे जाती है। बेदखली की धमकी पर मनोहर की टिप्पणी से जाहिर है, किसान हमेशा दब्बू बनकर नहीं रह सकता, "यहाँ हमारे खेतों की मेड़ों पर कोई आया तो उसके बाल-बच्चे उसके नाम को रोएँगे।" यही नहीं वह विलासी के अपमान का बदला गौस खाँ की हत्या करके लेता है। इस घटना से प्रेमचन्द यह संकेत देते हैं कि शोषण-तंत्र का रवैया नहीं बदला तो किसान कानून को अपने हाथ में लेने से नहीं हिचकिचाएगा।

प्रारंभ में किसानों का संघर्ष छुटपुट और वैयक्तिक है। धीरे-धीरे उसमें धार आती है। समय बीतने के साथ वह सामूहिक रूप धारण करता है। ज्यों-ज्यों किसान संगठित होते हैं, शोषण-शक्तियों का दबाव उन पर बढ़ता जाता है। प्रेमशंकर सहित सभी प्रमुख किसान जेल में ठूँस दिए जाते हैं। अंत में किसानों की विजय होती है। प्रेमचन्द के तत्कालीन आदर्शवादी-सुधारवादी रुझान ने उन्हें मायाशंकर के त्याग और प्रेमाश्रम के महत्त्व पर जोर देने के लिए प्रेरित किया। अंत में मायाशंकर की यह घोषणा कि अब किसान अपनी जोत के खुद काश्तकार होंगे, किसान संघर्ष को एक "यूटोपियन" मोड़ देती है। इसी प्रकार एक महत्वपूर्ण समस्या का लगभग अव्यव-हारिक समाधान प्रस्तुत किया गया है।

" प्रेमाश्रम " उपन्यासकार के नाते प्रेमचन्द की कीर्ति का विस्तार करता है । आरम्भ में कहा जा चुका है कि इसकी प्रमुख विशेषताएँ है — इसी गठी हुई शैली, इसके मार्मिक, मानसिक और सामाजिक संघर्ष तथा पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित जमीन्दारों के साथ समस्त सामान्तशाही का यथार्थ चित्रण । यह भारतीय साहित्य में पहला उपन्यास है, जो ग्रामीण जीवन और उसकी आधार भूत समस्याओं को उठाता है और इनका काल्पनिक सामाधन भी देता है । अब तक के उपन्यासों में मध्यवर्ग की सामाजिक समस्याओं का ही समावेश था । प्रेमचन्द भारतीय साहित्य में नवीन ढंग के कथा-साहित्य को सृष्टि करने वाले अग्रदूत थे । इसीलिए " प्रेमाश्रय " भारतीय कथा-साहित्य के इतिहास की युग-सूचक कृति कही जा सकती है ।

2.2.3. उपन्यासों की मुख्य प्रवृत्तियाँ (1882 से 1918 तक) :

साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में उपन्यास साहित्य में सामाजिक जीवन की वास्तविकताओं की अभिव्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक होती है परन्तु भारतीय लेखकों का इन्द्रियबोध व भावबोध को उपन्यास के उद्भवकालीन समाज में औपन्यासिक कथ्यों को ग्रहण करने की शक्ति अपेक्षाकृत कम थी और औपन्यासिक संरचना भी उनके लिये नितान्त नयी थी । यही कारण था आरंभिक भारतीय उपन्यासों की विषय वस्तु या कथ्य का शिल्प का संबंध जहाँ एक ओर पूर्ववर्ती संस्कृत महाकाव्य परंपरा या उर्दू दस्तान परंपरा या भारतीय नाटक

परंपरा, या बेताल पच्चीसी, सिंहासन बत्तीसी कथा परंपरा जैसी भारतीय परंपराओं के प्रभावों से था वहाँ दूसरी ओर धीरे-धीरे तत्कालीन क्षीणोन्मुख सामंती व्यवस्था, धर्म व्यवस्था, वर्ण-व्यवस्था, संयुक्त पारिवारिक जीवन आदि के विभिन्न पहलुओं पर उसकी समस्याओं से था । अतः आरंभकालीन भारतीय उपन्यास साहित्य, समाज के क्षीणोन्मुख सामन्ती रूप तथा विकासशील उत्पादन की नयी शक्तियों और संस्कृति की सम्मिलित देन है जिसका वस्तु-मूल अधिकतः इसके पूर्ववर्ती और अंततः तत्कालीन समाज में है परन्तु ये उपन्यास भारतीय साहित्य के स्वाभाविक परिणाम के रूप में नहीं बल्कि नये सामाजिक संबंधों के प्रारंभ बिन्दु के रूप में उद्भूत हुए हैं, क्यों कि यद्यपि भारत में अंग्रेजी शासन तब तक स्थिर हो गया परन्तु निचले स्तर पर भारतीय सामंती व्यवस्था व जमींदारी व्यवस्था का पूर्णतः विनाश नहीं हो पाया । फलस्वरूप आरम्भिक दिनों के भारतीय उपन्यास में न्यूनाधिक रूप में ईसाई धर्म के प्रचार की प्रवृत्ति पायी जाती है । लेकिन तत्काल में जहाँ एक ओर अंग्रेजी शिक्षा और शासन और नीतियों के द्वारा मध्यवर्ग और उससे उपन्यासों का विकास हुआ वहीं दूसरी ओर उन्ही के फलस्वरूप भारतीय लेखकों में अपने देश और समाज के संबन्ध में विचार करने की प्रवृत्ति जागी । अतः आदिकालीन समग्र भारतीय उपन्यास साहित्य में चाहे सामाजिक उपन्यास साहित्य हो या ऐतिहासिक, सामाजिक कुरीतियों का निर्मूलन लेखकों का आशय रहा । इसलिये आरंभिक कालीन सामाजिक उपन्यासों में तत्कालीन समाज के परिव्याप्त कुरीतियों, मुख्यतः पारिवारिक जीवन की समस्याओं, संयुक्त परिवार, पारिवारिक

कलह, विधवा जीवन, बाल विवाह, व्यभिचार, वेश्यागमन, पतिव्रता का आदर्श, देवदासी का कुत्सित जीवन, धार्मिक रूढ़ियाँ, पुलिस अदालत के अकथनीय अत्याचार, दहेज प्रथा, स्त्री शिक्षा, भ्रष्टाचार, सती प्रथा, सरकारी कर्मचारियों में परिव्याप्त भ्रष्टाचार का प्रति - पादन कथ्य के रूप में हुआ था ।

उद्‌भव कालीन या प्रेमचन्द युग पूर्व के मुख्य उपन्यासों का विवरण नीचे तालिका के रूप में दिया गया है :

	उपन्यास	लेखक	वर्ष
1·	परीक्षा गुरु	लाला श्रीनिवासदास	1882
2·	नूतन चरित्र	रत्नचन्द प्लीडर	1883
3·	नूतन ब्रह्मचारी	बालकृष्ण भट्ट	1886
4·	विधवा विपत्ति	राधाचरण गोस्वामी तथा देवीप्रसाद शर्मा	1888
5·	श्यामा स्वप्न	ठाकुर जगमोहन सिंह	1888
6·	निस्सहाय हिन्दू	राधाकृष्ण दास	1890
7·	चन्द्रकान्ता और चन्द्रकान्ता सन्तति	देवकीनन्दन खत्री	1891
8·	सौ अजान एक सुजान	बालकृष्ण भट्ट	1892
9·	नयेबाबू	गोपालराम गहमरी	1894

	उपन्यास	लेखक	वर्ष
10·	जया	कार्दिक प्रसाद खत्री	1896
11·	सास पतेहू बडा भाई	गोपालराम गहमरी	1898
12·	धूर्त रसिकलाल	लज्जाराम मेहता	1899
13·	स्वतन्त्र रमा और परतन्त्र लक्ष्मी	लज्जाराम मेहता	1899
14·	हिन्दू गृहस्थ	लज्जाराम मेहता	1904
15·	आदर्श दम्पति	लज्जाराम मेहता	1904
16·	बिगडे का सुधार	लज्जाराम मेहता	1907
17·	सौन्दर्योपासक	ब्रजानन्दन सहाय	1911
18·	आदर्श हिन्दू	लज्जाराम मेहता	1915
19·	लाल चीन	ब्रजानन्दन सहाय	1916
20·	रामलाल	मन्नन द्विवेदी	1917
21·	वीरमणि	मिश्रबन्धुओं	1917

2•3• वर्गीय पृष्ठभूमि :-

उपन्यास का सामाजिक आधार वस्तुत: मध्यवर्ग ही है । मध्यवर्ग की धरती में ही उपन्यास का बीज पड़ा । उपन्यास जन्म से यथार्थवाद की ओर उन्मुख रहा है । उपन्यास मनोरंजन के साथ समाज की जटिल समस्याओं एवं उनके समाधान को उद्देश्य रूप में ग्रहण कर के साहित्य क्षेत्र में अवतीर्ण हुआ ।

सामाजिक समस्यायें जैसे पारिवारिक कलह, विधवा जीवन बालविवाह, व्यभिचार, वेश्यागमन, पतिव्रता का आदर्श, देवदासी का कुत्सित जीवन, धार्मिक रूढ़ियाँ, पुलिस अदालत के अकथनीय अत्याचार, दहेज प्रथा, स्त्री शिक्षा, रिश्वत खोरी, आदि समस्याओं का अनुभव करने वाले, झेलने वाले अधिकतर मध्यवर्ग के लोग ही है । इसी कारण से सामाजिक समस्याओं को और यथार्थता को मध्यवर्ग के लोग ही ठीक से समझ सकते है । अत: उपन्यास के उद्भव काल से भी अधिकतर उपन्यासकार मध्यवर्ग के है । उपन्यास मध्यवर्ग से संबन्धित होने के कारण इसके पाठक भी अधिकतर मध्यवर्गीय है ।

उपन्यास के उद्भव कालीन उपन्यासकार जैसे देवकीनन्दन खत्री से लेकर प्रेमचन्द तक के अधिकांश उपन्यासकार मध्यवर्गीय है ।

2·3·1· शिक्षित मध्यवर्ग से उपन्यासकारों का उदय :-

भारत में शिक्षा का प्रचार खास करके व्यावसायिक कर्मों और प्रशासकोय दफ्तरों में नौकरों की भर्ती के लिए और ईसाई धर्म के प्रचार के लिए हुआ । लेकिन परिणाम तो इसका उलटा हुआ । धीरे-धीरे शिक्षित मध्यवर्ग ने यूरोप के आधुनिक लोकतांत्रिक विचारों को आत्मसात कर लिया और अपने देश की सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक व्यवस्थाओं में सुधार के लिए मध्ययुगीन रूढ़िवादिता के साथ ब्रिटिश साम्राज्य का विरोध किया । इसके पूर्ति के लिए साहित्य की माध्यम को अपनाया गया । फलत: उपन्यास का उद्भव हुआ । इसके द्वारा वे सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि समस्याओं का समाधान सहित प्रस्तुत कर जनता को जगाने की कोशिश की । इस प्रकार उपन्यासकारों का उदय शिक्षित मध्यवर्ग से हुआ ।

2.4. निष्कर्ष :-

हिन्दी प्रदेश पर पहले मुगलों का शासन फिर अंग्रेजों का आगमन बाद में 1857 की क्रान्ति आदि के प्रभाव के कारण समाज पतनावस्था में था । अंग्रेजी सरकार अपने स्वार्थ के लिए शिक्षा का प्रचार किया फलतः शिक्षित मध्यवर्ग का उदय हुआ । वे समकालीन व्यवस्था में सुधार की आवश्यकता का अनुभव किया और इसी की पूर्ति के लिए उपन्यास का उद्भव हुआ । उपन्यास का झुकाव पहले से भी यथार्थता की ओर रहा । धीरे-धीरे उपन्यास की विभिन्न प्रवृत्तियाँ जैसे सामाजिक, ऐतिहासिक, हास्यरसात्मक, जासूसी आदि का उदय हुआ । उद्भवकालीन सभी उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में सामाजिक कुरीतियों को समाधान सहित प्रस्तुत किया है । इस प्रकार उद्भवकालीन हिन्दी उपन्यासों के विषय में कहा जा सकता है कि ये विशेषकर हिन्दी प्रदेश और सामान्यतः सम्पूर्ण भारत की सामाजिक, राजनैतिक व आर्थिक परिस्थितियों के प्रभावस्वरूप मध्यवर्ग के क्रोड में पैदा हुए और प्रवृत्तियों के रूप में उन उपन्यासों में देश की परिस्थितियाँ और मध्यवर्गीय मानसिकता ही प्रतिफलित हुई ।

/:

तृतीय अध्याय

तेलुगु साहित्य में उपन्यास का उद्भव :
परिस्थितियाँ, प्रवृत्तियाँ और वर्गीय पृष्ठभूमि

/:

तेलुगु, साहित्य में उपन्यास का उद्भव : परीस्थीतियाँ प्रवृत्तियाँ और वर्गीय पृष्ठभूमि

3·1· परीस्थीतियाँ :

3·1·1· राजनैतिक परीस्थीतियाँ :

3·1·1·1· तेलुगु राज्य में मुगलों का शासन :-

तेलुगु राज्य को व्यापक रूप में दक्कन या दक्षिण कहा जाता था । इस राज्य में मुगलों का शासन 1687 ई· में आरम्भ हुआ । गोलकोण्डा राज्य के पतन के बाद समस्त तेलुगु राज्य मुगल साम्राज्य के आधीन हो गया । औरंगजेब के षड्यंत्र के कारण कुतुबशाही राजवंश के अंतिम शासक अबुल हसन तानेशाह को देवगिरि दुर्ग में कैद किया गया । 1636 में अहम्मद नगर और 1686 में बीजापुर राज्य मुगलों के अधिकार में आचुके थे । आरवीटी राजवंश के शासकों की प्रयत्नों के फलस्वरूप विजयनगर के अवशिष्ट भूभागों में से कुछ प्रान्त उनके आधीन आगए ।

महम्मद की सेना सहयाद्रि पर्वतों के समीप रहकर अपने राज्य की आजादी की रक्षा करती रही परन्तु दक्कन के पश्चिम प्रान्त को छोडकर बाकी सबकुछ मुगलों की अधीनता में आ गई। औरंगजेब ने एक ओर महाराष्ट्र के राजाओं को कुचलने की योजना बनाई और दूसरी ओर अपने आधीन जो राज्य थे उनमें सुदृढ़ शासन की व्यवस्था की।

बीजापुर और गोलकोण्डा राज्यों के मुगलों के अधिकार में आने के बाद औरंगजेब ने उन दो राज्यों को जोड दिया और अपने प्रतिनिधि को प्रशासक नियुक्त किया। " कालीमात-इ-तयिबातें नामक ग्रन्थ में औरंगजेब के निधन का वर्ष 1707 बताया गया। उस ग्रन्थ में यह भी लिखा गया कि प्रशासनिक सुविधा के लिए खानादेश, बिरार, हैदराबाद, मछलीपट्टणम (बन्दर), बीजापुर, औरंगाबाद इत्यादि छे: सूबों के रूप में दक्कन राज्य को मुगल साम्राज्य ने विभाजित किया।

सैनिक अधिकारी ही सूबों के प्रशासक नियुक्त हुआ करते थे। राजकुमार कांबक्ष को बीजापुर और हैदराबाद सूबों का प्रशासक नियुक्त किया गया। मुगल सम्राट के ईमानदार सेनानियों, कर्म - चारियों को मुगल साम्राज्य के छोटे छोटे भागों के शासक, सुबेदार नियुक्त किया जाता था।

तेलुगु राज्य 37 साल तक (1687 से 1724) मुगल सुबेदारों के शासन में था । इस समय में एक भी गाँव मुसलमानों के दुष्कार्यों से नही बच सका । धर्मांध मुसलमान शासक मन्दिरों को लुटवाये थे । हिन्दू स्त्रियों को सताये थे । हिन्दू संस्कृति की अवहेलना होती थी । सुन्दर और मूल्यवान शिल्प अपने नाक, कान, हाथ, पैर आदि खो कर विकृत बन गये थे । मुसलमान शासकों और सैनिकों ने मन्दिरों का नाश करके उनके स्थान में मसजिद, दर्गा, ईदगाह आदि का निर्माण किया थे ।

मुगल शासकों ने तेलुगु राज्य को अपना जायदाद मानकर लोगों को लूटा था, खेतों का विध्वंस किया था । उस समय की प्रजा अकाल और लूटपाट से पीड़ित थी । उसने धन, मान, प्राणों को खोया था । दुष्टशासन, अनावृष्टि, आक्रमणों, युद्धों, अधिक कर, पिण्डारियों के दुष्कार्यों, मुसलमानों के कुकर्मों आदि से तेलुगु प्रजा निराश थी ।

मुसलमानों के दुष्कार्यों को देख कर कुछ देश भक्त युवकों ने क्रान्ति संघों की स्थापना की । उन्होंने मुसलमानों के दुष्ट शासन का अन्त करने के लिये यत्न किया लेकिन उनमें अर्थ और नेतृत्व की कमी थी ।

3·1·1·2· तेलुगु राज्य में आसफजाही निजामों का शासन :-

आसफजाही निजाम राज्य के संस्थापक निजाम-उल-मुल्क के दादा अबिदखान मगल दरबार में रहते थे। उन्होंने 1687 के गोलकोण्डा युद्ध में प्रधान भूमिका निभाकर वीरगति प्राप्त की थी। बाद में उनके पुत्र और निजाम-उल-मुल्क के पिता शाहबुद्दीन मालवा और महाराष्ट्र के सूबेदार नियुक्त हुए थे।

1707 में औरंगजेब की मृत्यु हो गई। 1710 में शाहबुद्दीन की मृत्यु हो गई। 1708 और 1712 के अन्तराल में देश में अराजकता फैल गई। 1713 में फारूकीसियर दिल्ली का राजा बन गया। उसने शाहबुद्दीन के पुत्र कमर उद्दीन प्रथम आसफजा को " निजाम-उल-मुल्क " की उपाधि प्रदान कर दक्कन में राजप्रतिनिधि नियुक्त किया। 1748 में 77 वर्ष की आयु में आसफजाह का निधन हो गया।

निजाम-उल-मुल्क के बाद उसके द्वितीय पुत्र नासिरजंग को मुगल सम्राट ने " निजाम उदौला " की उपाधि प्रदान कर उसे दक्कन के राजप्रतिनिधि नियुक्त किया। आसफजा का पौत्र मुजफ - फरजंग ने दक्कन के राजप्रतिनिधि के पद का अपने को दावेदार बताया और इस अधिकार को पाने के लिये उसने डूप्ले के फ्रान्सीसियों का समर्थन पा लिया। गवर्नर डूप्ले ने अपनी सेना लेकर कडपा, कर्नूल, सवनूरु के नवाबों के साथ कूट नीतिक चाले चलना प्रारम्भ किया। सन् 1750

दिसम्बर में पठान शासकों में एक कर्नूल से नवाब हिम्मत खाँ ने नासिर जंग की हत्या कर डाली । इसके ने नासिरजंग के निधन के उपरान्त उसके सिंहासन के उत्तराधिकारी के रूप में मुजफ्फर जंग को अपने सेनापति बुस्सी के साथ हैदराबाद भिजवाया । परन्तु मार्ग मध्य में कडप्पा के पास 1751 में पठान नवाबों ने युद्ध में मुजफ्फर जंग की हत्या कर डाली ।

मुजफ्फरजंग की मृत्यु के बाद भूराजस्व मंत्री राज्य रघुनाथ ने बुस्सी को रिश्वत देकर उसकी सहायता से प्रथम आसफजा के तृतीय पुत्र सलाबंत जंग को सुबेदार घोषित करवाया । फ्रासन्सीसियों ने बडे-बडे जागीरदारों को अपने वश में कर लिया । सलाबंत जंग ने फ्रान्सीसियों का प्रभाव कम करने का यत्न किया लेकिन सफल नही हो सका ! 1758 में अंग्रेजी गवर्नर कर्नल फोर्ड कोण्डूरू के युद्ध में फ्रान्सीसि सेना को पराजित किया । उसने दूसरे वर्ष मछलीपट्टणम को अपने आधीन कर लिया । फिर सलाबंत जंग से सन्धि करली । 1765 में दिल्ली के बादशाह शाहआलम ने क्लाइव से सन्धि करके आन्ध्र के क्षेत्र अंग्रेजों को दे दिये ।

सन् 1761 ई॰ में असफजा का चौथा पुत्र निजामअली द्वितीय असफजा की उपाधी से निजाम बना । निजाम का भाई सलाबंत जंग गुण्टूरू का अधिपति बन कर जीवन पर्यन्त वही रहा ।

सन् 1782 में सलाबंत जंग की मृत्यु हो गई। परन्तु निजाम ने 1788 तक गुण्टूर शहर अंग्रेजों को नही सौंपा। 1794 में महाराष्ट्र के पेशवा ने कर अदा करने के लिए निजाम पर दबाव डाला। निजाम ने पेशवा से युद्ध करने का निश्चय किया। परन्तु अंग्रेजों ने निजाम का सहायता नही की। युद्ध में निजाम पराजित हुआ। उसके बाद निजाम को सहायता के लिये नियुक्त छे: अंग्रेज सैनिक पल्टन निकाल दिये गये। रेमाण्ड नामक फ्रान्सिस सेनापति की सहायता से निजाम ने अपनी सेना को सुदृढ़ बनाया। 1798 में रेमाण्ड की मृत्यु हो गई तो अंग्रेजों के लिये खतरा टल गया।

सन् 1783 में जब वेल्लेस्ली गवर्नर जनरल बनकर भारत आया। तब किर्क नामक व्यक्ति हैदराबाद का रेसिडेण्ट पद पर रहा। उसने रेमाण्ड द्वारा संगठित फ्रान्सीसि दल को हटा कर ब्रिटिश सैनिक दल को व्यवस्था करवाई। उस सेना के भरण पोषण के आवश्यक व्यय की पूर्ती के लिए निजाम को मैसूर राज्य से प्राप्त अपने सभी क्षेत्र अंग्रेजों को सौंपना पडा। निजामान्ध्र और ब्रिटिशान्ध्र के रूप में तेलुगु राज्य के दो टुकडे हो गये। इस सैनिक व्यवस्था के कारण प्रजा को अनेक कष्टों का सामना करना पडा। इस ब्रिटिश सेना विदेशी आक्रमण को रोकने और आन्तरिक विद्रोह को दबाने के बदले जबरदस्ती कर वसूलो में स्थानीय सरकारी नौकरों की सहायता करने लगी। इस से किसान, व्यापारी आदि लोग मुसीबतों में पड गये।

1803 में द्वितीय आसफजा निजामअली खाँ की मृत्यु के बाद उनका पुत्र नवाब सिकन्दर बहदूर तृतीय असफजा की उपाधि के साथ गद्दी पर बैठा ।

तृतीय आसफजा नवाब सिकन्दर बाहदूर के प्रधानमंत्री मीर आलम 1808 में मर गया । तब राजा चन्द्रलाल राज्य का प्रधान अधिकारी बन गये । उस समय देश में अराजकता फैली हुई थी । पिण्डारी समूहों के विद्रोह के कारण हैदराबाद राज्य के सीमा प्रदेश के गाँवों की जनता भयभीत हो गयी । ये पिण्डारी ब्रिटिश मंत्रिमण्डल से सम्बन्धित नौकरियों में थे । इसलिये उन्हें कुचलने के लिये सहायक सैनिक दलों का उपयोग करना सम्भव नहीं था । उस समय के ब्रिटिश रेसिडेण्ट हेनरी रस्सल प्रशिक्षित अनुभवी सैनिकों से " रस्सल दल " नामक एक दल का संगठन किया । निजाम को चुकाये जाने वाले राजस्व से इस नई सेना का वेतन आदि देने की व्यवस्था की गई ।

1816 में विलियम पामर नामक एक धनी अंग्रेज ने सूद का व्यापार करने के लिये ब्रिटिश सरकार से लाइसेन्स प्राप्त करके हैदराबाद में एक बडा बैंक स्थापित किया । राज्य के प्रधान चन्द्र लाल के द्वारा बैंक वाले निजाम को प्रतिवर्ष 24 प्रतिशत सूद पर धन देने लगे । धीरे-धीरे ऋण का भार बढ़ गया । पामर के ऋण चुकाने के लिए गवर्नर जनरल हेस्टिंगस ने निजाम को बीस लाख रुपये

भिजवाये । इसके प्रतिफल की रूप में आन्ध्र के उत्तरी सरकारी क्षेत्रों के लिये अंग्रेजों से प्रतिवर्ष मिलने वाला भूराजस्व सात लाख रूपये छोड देना पडा ।

सिकन्दर के बाद उसका पुत्र नासिर उद्दौला नामक चौथ असफजा ने 1829 में गद्दी पर बैठा । 1845 में मंत्री चन्दूलाल की मृत्यु हो गई । उस समय निजाम का राज्य शासन बहुत असन्तोष जनक स्थिति में था । 1849 तक राज्य का ऋण भार 64 लाख तक बढ गया । ऋण चुकाने का कोई मार्ग नही था । उन परिस्थितियों में गवर्नर जनरल डलहौसी ऋण वसूली के लिए एक पद्धति बनाई । उसके अनुसार निजाम से उसने एक समझौता किया । जिसके अनुसार निजाम ने अपने राज्य में स्थित ब्रिटिश सेना को भरण पोषण के लिये बिहार, रायचूर, अंतर्वेद शोलापुर और अहम्मदनगर के क्षेत्रों को ब्रिटिश सरकार के हवाले कर दिया । 1857 मार्च में निजाम की मृत्यु हो गई ।

1857 में नासिर उद्दौला के प्रथम पुत्र नफते अफजल उद्दौला नामक पाँचवा आसफजा राज्याधिपति बना । 1857 में महान सैनिक विद्रोह भडक उठा तत्कालीन प्रधान सालरजंग ने अंग्रेजों का रक्षक बनकर अपने प्राणों को जोखिम में डालकर नगर में भडके विद्रोह को कुचल दिया । इस सैनिक विद्रोह में निजाम द्वारा प्रदर्शित राजभक्ति को देखकर विक्टोरिया महारानी ने खुश होकर उससे एक नया समझौता

किया । उसके अनुसार शोलापुर, रायचूर, अन्तर्वेद, अहम्मदनगर आदि प्रान्त पुनः निजाम को लौटा दिये । निजाम के पचास लाख रुपयों का बकाया ऋण माफ भी कर दिया गया। 1869 में निजाम का निधन हो गया ।

1869 में निजाम का पुत्र मीर महम्मद आलीखाँ नामक छटा आसफजा राज्याधिकारी बना और 1911 तक उसने राज्य किया । इस समय निजाम तीन साल का था । परन्तु समर्थ सालारजंग ने बहुत कुशलता के साथ राज्य का संचालन किया । सालरजंग के प्रशासनिक परिवर्तनों के फलस्वरूप किसानों की स्थिति बेहतर हो गई । कई कानूनों में सुधार हुआ । सती प्रथा निषिद्ध करदी गयी । नगर के लिए पानी की उत्तम व्यवस्था की गई । शिक्षा की योजनाबद्ध व्यवस्था की गई ।

1911 में नवाब मीर उस्मान अली खाँ नामक सातवाँ आसफजा निजाम को गद्दी पर बैठा । यह इस वंश का अंतिम शासक था । इन्होंने 1911 से 1947 तक राज्य किया ।

3·1·1·3· तेलुगु राज्य पर 1857 महान सैनिक विद्रोह का प्रभाव :

1857 में उत्तर में जब अंग्रेजों के खिलाफ बगावत की बात मालूम हुई तो तेलुगु राज्य में उसकी प्रतिक्रिया हुई। स्वदेशी जमीनदारों देश भक्तों, मंत्रि, प्रजा आदि विद्रोहियों से हाथ मिलाकर अंग्रेजों को भारत से भगाने के लिये एकीकृत होने लगे थे। उत्तर भारत में मोरठ, लखनऊ, मध्य प्रदेश आदि प्रान्तों में विद्रोहियों ने अंग्रेजों को मार डाल ने को योजनाये बनाये थे। दक्षिण भारत में प्रमुखत: निजाम राज्य में इस विद्रोह का प्रभाव कम था। निजाम के इस विद्रोह को प्रोत्साहन नही देने के कारण विद्रोहियों और प्रजा निराश हुए थे।

1857 जुलाई 7 को बेगम बजार में सैकडों रोहिल्ल लोगों ने तुर्रेबाजखान और मौल्वी अल्लाउद्दीन के नेतृत्व में रेसिडेन्सी पर धावा बोल दिया। दो घंटे तक लडाई हुई। रोहिल्ला पीछे हटे। तुर्रेबाजखान को गिरफ्तार किया गया। अल्लाउद्दीन वही मर गये। बीदर, औरंगाबाद, नांदेड, गुलबर्गा, अजंता आदि जगहों में स्थानीय लोगों के नेतृत्व में अंग्रेजों के खिलाफ लडाई हुई।

आदिलाबाद जिले में गोंड लोगों ने अंग्रेजों का विरोध किया । उट्नूर तालुके में रामजी गोंड के नेतृत्व में गोंडों ने अंग्रेजों से युद्ध किया। उस युद्ध में गोंड हार गये । रामजी गोंड को नर्मल में एक पेड के नीचे फांसी की सजा दी गई । महबूबनगर जिले में पंडुग सायन्न को इसी कारण मौत की सजा दी गई ।

निजाम के प्रधानमन्त्री सालरजंग ने अंग्रेजों का पक्ष लेकर यह सारा काम किया । विद्रोह को कुचल कर देश को उन्होंने गुलाम बना दिया ।

3·1·1·4· तेलुगु राज्य में अंग्रेजों का शासन :-

1758 के तीसरे कर्नाटक युद्ध के लिए दो प्रधान क्षेत्र बन गए । उनमें एक कर्नाटक और दूसरा तेलुगु प्रान्त के सरकारी क्षेत्र । उस समय अंग्रेजों की जलसेना का बल अद्वितीय था । इस कारण समुद्र के युद्ध में उन्हें विजय प्राप्त हुई । इस कारण फ्रान्सीसियों को यूरोप से पुदुच्चेरि तक सेना, हथियार और रसद आदि पहूचने में बहुत बाधा हुई । अंग्रेजों के लिए यूरोप से बंगाल को समय पर सैनिक सहायता मिल रही थी । 1762 तक कर्नाटक में फ्रान्सीसियों को ठहरने के लिये कहीं जगह नही बची ।

इस प्रकार सत्ता पाने के लिए प्रतिद्वन्द्वी फ्रान्सीसियों और दूसरे शासकों को पराजित कर अंग्रेजों ने जिस राज्य को प्राप्त किया था, उसे स्थिर रखने के लिए उन्हें थोडा समय लगा । तेलुगु राज्य के छोटे मोटे राजा, जमीनदार बटाईदार आदि अधि - कारियों ने तुरन्त उनकी आधीनता को स्वीकार नहीं किया । उन्होंने विद्रोह के मार्ग को अपनाया और उत्साह के साथ अपने विद्रोह को प्रदर्शित किया । उस समय देश पर शासन करने की क्षमता अंग्रेजों में बहुत कम थी । वे मूलत: व्यापारी थे और वे सब कम्पनी के नैकर थे । इसके अतिरिक्त राज्य शासन और अन्य व्यवस्था स्वयं उन्ही को करना पड़ा । इसलिए प्रथम दशा में उनके द्वारा अनेक गल्तियाँ हुई । इस प्रकार अनेक कारणों से 1768 से 1838 तक सरकारी क्षेत्रों में और 1800 से 1804 तक रायलसीमा में अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह होते रहे । 1807 में थामस मनरो आन्ध्र प्रदेश के अधिकारी नियुक्त हुए थे । वे एक समर्थ शासनाध्यक्ष थे । उसने अपनी सेना की सहायता से दृढ़ संकल्प के साथ व्यवहार किया । बाटाईदारों के विद्रोहों को पाँच सालों में कुचल दिया और विद्रोहियों को निर्दयता के साथ दण्ड देकर उनके दुर्गों को नष्ट कर दिया । उसमें सामान्य किसानों के प्रति सहानुभूति थी । पिछडी जातियों की तरक्की में वह अधिक प्रयत्नशील रहा । रायलसीमा में पाटेदारों के उपद्रव पूरी तरह समाप्त हो गये और वहाँ पर अंग्रेजों का शासन सुस्थिर हो गया । इस प्रकार 19 वी शताब्दी के आरम्भ होने तक तेलुगु

देश के अधिकांश प्रदेश अंग्रेजों के प्रत्यक्ष शासन में आ गये थे। शेष प्रदेश तेलंगाणा के नाम से निजाम के शासन में हैदराबाद राज्य में अन्तर्भाग बन गए। उस रियासत ने भी अंग्रेजों के सार्वभौमाधिकार को स्वीकार कर लिया। परोक्ष रूप में अंग्रेजों का अधिकार वहाँ भी चलने लगा। इस प्रकार तेलुगु राज्य अंग्रेजों के शासन के अंतर्गत आ गया।

3.1.2. आर्थिक परिस्थितियाँ :

3.1.2.1. ब्रिटन की शोषण मूलक अर्थनीति :-

1800 ई. से पूर्व ही भारत वर्ष धन धान्य से समृद्ध रहा इसी कारण विदेशियों ने इस देश के ओर आकर्षित हुए। यूरोप के व्यापारी यहाँ से कपड़े, सुगन्ध की वस्तुएँ आदि ले जा कर अपने देश में लाभार्जन करते थे। उन में से एक संघ ने व्यापार के बहाने यहाँ पैर रखा और भारत पर राज्याधिकार प्राप्त कर लिया।

ब्रिटन की सन् 1776 ई. की औद्योगिक क्रान्ति के कारण तेलुगु देश में ही नहीं अपितु पूरे देश के आर्थिक क्षेत्र में महत्त्व पूर्ण परिवर्तन हुआ। विभिन्न यंत्रों का आविर्भाव हुआ। कच्चे माल का आयात विदेशों से करके, विभिन्न वस्तुओं को बनाकर उन्हें पूरब के देशों को निर्यात करना आरम्भ किया गया।

इस से तेलुगु देश के वस्त्र व्यापार में भारी नुकसान हुआ । प्राचीन काल से तेलुगु राज्य की जनता अपनी जीविका खेती से चलाती थी फिर भी कुटीर उद्योग आर्थिक क्षेत्र में समुचित स्थान प्राप्त कर चुके थे । अनेक लोग बुनाई, बढ़ाई गिरी आदि उद्योगों के द्वारा अपना जीविका कमाते थे । खेती पर निर्भर परिवार सूत कात कर कुछ धन कमाते थे । किन्तु औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप उत्पन्न सस्ते वस्तुएँ तथा अंग्रेजों के अधिकार ने मिलकर देश में प्रचलित उद्योगों का अंत कर दिया ।

तेलुगु देश के उद्योगों में लोहे का उद्योग और बुनाई का उद्योग मुख्य थे । सन् 1800 ई॰ से पूर्व किसान, बढ़ाई, लोहार आदि के उपयोगी साधन हमारे देश में ही बनाते थे । कच्चे लोहे को गलाकर इस्पात बनानेवाले कारीगर तेलुगु जिले में रहते थे । लेकिन धीरे-धीरे कच्चे लोहे को गलाने के लिए आवश्यक कोयला, लकड़ियाँ पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलने के कारण, विदेशों में यंत्रों की सहायता से तैयार होने वाले सस्ते लोहे का आयात होने लगा । देशी उद्योग धन्धों में कंपनी सरकार के मदत की अभाव के कारण लोहे का उद्योग नष्ट हुआ । इस उद्योग पर निर्भर रहने वाले कर्मचारी बेरोजगार बन गये । कृषक और सूत करने वाले भी अपनी जीविका खो बैठे । निर्यात संबन्धी व्यापार नाम मात्र का हो जाने पर जनता की खरीदने की शक्ति कम हो गई । फलस्वरूप विदेशी वस्तुओं

के आयात बढ़ गयी । देश गरीब बन गया । सरकार के निरादरण के कारण बढ़ाई का उद्योग 1850 ई॰ तक जीर्ण शीर्ण हो गया । 1900 ई॰ तक अंग्रेजों की शासन के कारण देश की जो दुर्दशा हुई उससे जनता सजग हो गई ।

3·1·2·2· कृषक नीति-किसानों की बढ़ती ऋण ग्रस्तता भूमि हीनता :-

अंग्रेजों को प्रशासनिक अधिकार मिलने के बाद उसके द्वारा जनता पर कर लगा कर लाभार्जन करना शुरू किया । अंग्रेजों के प्रशासन के आरंभिक समय में देश के करों में भूमि की लगान अग्रगामी थी । इससे जितना अधिक लाभार्जन के कर सक्ते थे, उस दृष्टि से बार-बार लगान की पद्धति में परिवर्तन करते गये ।

अंग्रेजों के प्रशासन के अंतर्गत आनेवाले उत्तर सरकारी जिलों की जमीने, हवेली जमीने व जमींदारी जमीनें नाम से दो प्रकार की थी । सरकार अपने लिए जिन जमीनों को रख चुकी थी वे हवेली जमीने कहलाई और इसमें रहने वाले किसान सरकार से सीधा संबन्ध स्थापित कर सरकार द्वारा नियुक्त नौकरों को लगान अदा करते थे । जमीनदारी जमीनों के लिए उनके नाम पर व्यवहार बचौ लिया लगान वसूल करते थे । पहले लगान वसूल करने में नीलाम पद्धति चलती थी । इस से जनता की स्थिति दुर्भर बनी तथा कंपनी को मिलनेवाली आमदनी बाकी रह गयी ।

1802 ई॰ तक स्थाई लगान पद्दति अमल में आयी । इस पद्दति की प्राथमिक दशा में अनेक कमियाँ थी । लगान की अधिकता, जमीनों को नाप, उर्वरता के आधार पर तारतम्य निकालने में कई दोश दिखाई पडे । इस कारण किसानों को अनेक कष्ट व नुकसान उठाना पडे । सन् 1855 ई॰ के पश्चात सर्वे सेटिलमेंट डिपार्टमेंट के प्रबन्ध के कारण उपज में से खर्च निकालने के बाद जो ठोस आमदनो होतो थी उसमें से आधे से अधिक लगान वसूल र करने के निर्णय के कारण क्रमश: सारे दोश अदृश्य हुए । अंग्रेज सरकार को वांछित लाभ को सिद्दि हुई । क्रमश: आय को भी वृद्दि हुई । स्थाई वृद्दि से प्रशासन और भी सुदृढ़ बना ।

1800 ई॰ से 1850 ई॰ तक के मध्यकाल में तेलुगु देश का जनसंख्या दुगनो हुई । सुरक्षा का देश में व्याप्त होना इसका एक कारण है । देश के उद्योग धंधे नाम मात्र के होने के कारण जनता के जोवन निर्वाह का एक मात्र साधन खेती बनो । इसो कारण जमोन पर दबाव बढ़ गया। जमोन के अधिकतम भाग खेती के काम में लाया गया । किन्तु जमोनों का अधिकतम भाग केवल वर्षा पर निर्भर था । वर्षा के अभाव के कारण कई सालों तक देश में अकाल को स्थिति बनो रहो । जीवन यापन दुस्साहय होगया । आहार का अभाव के कारण कई लोगों का अंत हुआ । उन दिनों में पश्चिम घाटियों में वर्षा बराबर नहीं होतो थी । इस से कृष्णा, गोदावरो नदियों में थोडी मात्रा में हो पानो बहा करता था । पानो के अभाव के कारण फसले सूख गई थीं । गुण्टूर जिले में इसको तीव्रता रही जो मद्रास तक व्याप्त

हुई । तेलंगाना प्रान्त अत्यधिक पीड़ित था । इस कारण अकेले गुण्टूर जिले की पाँच लाख लोगों में से दो लाख लोग कर गये । यह दुस्थिति सरकार में कुछ चेतना लाई । देश की जनता में खरीदने की शक्ति नहीं रहने के कारण अंग्रेज देश में तैयार की गई वस्तुओं की बिक्री कम हो गई । सरकार ने उपलब्ध सिंचाई की सुविधाओं को उपयोग में लाकर खेती को प्रोत्साहित करने का उत्तरदायित्व स्वीकार किया । सन् 1852 तक गोदावरी नदी पर धवलेश्वरम के पास और 1955 तक कृष्णानदी पर विजयवाडा के पास बाँधों का निर्माण सर आर्थर काटन नामक इंजनीयर के नेतृत्व में संपन्न हुआ । इन बाँधों के कारण कृष्णा, गोदावरी के मुख द्वार के परिसर प्रान्तों में अकाल का निवारण हुआ । किन्तु शेष तेलुगु देश में कुछ हद तक अकाल सताता रहा । 1877-78 ई. के बीच मध्य दक्षिण भारत में जो अकाल पडा वह धाता अकाल कहा गया । तेलंगाना प्रान्त भी इस अकाल से पीड़ित था । उसी कारण गुण्टूर गोदावरी जिलों से अनाज को इन प्रान्तों में भेजकर अकाल से लोगों की रक्षा की गई ।

3·1·2·3· आन्ध्र का ब्रिटिश पूंजी के लिए निवेश का क्षेत्र बन जाना :-

19 वीं शताब्दी के बीच में तेलुगु देश भी भारत के अन्य राज्यों की तरह ब्रिटिश पूंजी के लिए निवेश का एक क्षेत्र बन गया । कच्चे मालों के स्त्रोत तथा बाजार के रूप में भारत के शोषण के लिए ब्रिटिश सरकार को संचार और परिवहन के आधुनिक साधनों की आवश्यकता थी । तेलुगु देश में पहला साधन रेल्वे ने प्रदान किया । 1864 ई· में कापाडि से नेल्लूर तक, गूडूर-रेणिगुंटा, चित्तूर तक बिछाये गये रेल मार्ग से तेलुगु देश में रेलमार्गों का निर्माण आरंभ हुआ । 1893 ई· में विजयवाडा से कोव्वूर तक और राजमहेन्द्री से वाल्टेर तक रेल मार्ग पूरा हुआ । इस प्रकार रेल्वे की सहायता से अंग्रेजी सरकार ने देश के दासीकरण और शोषण में सफलता पाई ।

3·1·3· सामाजिक परिस्थितियाँ :-

3·1·3·1· उपन्यास के उद्भव कालीन सामाजिक परिस्थितियाँ :-

19 वीं और 20 वीं शताब्दियों में भारत के अन्य प्रान्तों की भाँति तेलुगु प्रदेश ने अनेक सामाजिक परिणामों का सामना किया । सिर्फ भारत देश ही नहीं, संसार के बाकी सभी देशों ने भी इस युग में कल्पनातीत परिणामों का सामना किया । परन्तु पश्चिम यूरोप के परिणाम, वहाँ की जनता के हित की दृष्टि से हुआ है ।

भारत में यह उलटा हुआ है । परिणाम स्वरूप कुछ प्रान्तों में समाज का स्वरूप ही बदल गया । यद्यपि इस परिणाम का प्रभाव समूचे भारत पर पडा फिर भी तेलुगु प्रदेश ने पृथक रूप से एक विशिष्ट परिणाम का सामना किया । इस समय तेलुगु प्रदेश बहुधा विभक्त था । यद्यपि कृष्णा नदी के उपरी प्रान्त में आसफजादी निजामों ने शासन स्थिर बना लिया था फिर भी नदी के दक्षिण प्रान्त में अंग्रेजों का शासन चल रहा था । इस तरह तेलुगु देश के प्रजा अलग अलग शासन व्यवस्था में जीवन निर्वाह करते रहे । वहाँ का सामाजिक विकास भिन्न-भिन्न रूपों में हुआ ।

इस प्रकार 19 वीं और 20 वीं शताब्दियों में राजनीतिक, सामाजिक, तथा वैज्ञानिक क्षेत्रों में कई आन्दोलनों ने आन्ध्र की जनता को पर्याप्त रूप में उत्तेजित या प्रभावित किया है । इस प्रभाव को इतिवृत्त के रूप में ग्रहण कर आन्ध्र के प्रगतिशील लेखकों ने समाज को विभिन्न दृष्टिकोणों से परि - शीन-अनुशीलन कर, कई उपन्यासों की रचना की है और उपन्यास साहित्य की श्रीवृद्धि में योगदान किया है ।

3·1·3·2· आन्ध्र में अंग्रेजों की शिक्षा नीति :-

आन्ध्र में अंग्रेज सरकार के प्रवेश के समय तक यहाँ के सभी प्रान्तों में प्राचीन समय की शिक्षा पद्धति प्रचलित थी । इग्लैंड से कलकत्ता आये हुए थामस वेलिंगटन मेकाले के प्रोत्साहन से अंग्रेजी में ही शिक्षा देकर पाश्चात्य ज्ञान से छात्रों को परिचित कराने का निर्णय हुआ । 1853 ई· को कंपनी सरकार ने राजमहेंद्री में प्रोविजनल स्कूल खोल दिया । फिर वह कालेज बना । मिशिनरियों के प्रयासों के कारण 1854 ई· को कंपनी वालों ने "उड्स एड्युकेषनल डिस्पाच" नामक आदेश जारी किया । इसके फलस्वरूप मद्रास में सरकारी शिक्षा विभाग और मद्रास विश्वविद्यालय की स्थापना हुई । विधि और इंजिनीरिंग कालेज प्रारंभ किये गये । अंग्रेजी शिक्षा के लिये माध्यमिक विद्यालय और मातृभाषा शिक्षा के लिये मिडिल स्कूल आदि स्थापित हुए । मिशनरियों और अनधिकारियों के द्वारा स्थापित विद्यालयों को अनुदान देने की पद्धति का आरंभ हुआ जिससे मशिनरियों को लाभ हुआ । अंग्रेजी पढ़ने पर नौकरी की प्राप्ति और इससे समाज में गौरव आदि का लाभ कुछ सीमा तक वर्धक बने । प्रारंभ में परंपरागत विद्यार्जन करनेवाले परिवार इस ओर आकृष्ट हुए । मिशनरियों के प्रयासों के कारण कुछ पिछडे वर्ग माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने में सफल बने ।

इस प्रकार आन्ध्र में आधुनिक शिक्षा के प्रसार में ईसाई मिशनरी वा अंग्रेजी सरकार का अपना अपना स्वार्थ था। ईसाई मिशनरियों की दृष्टि में अपने धर्मप्रसार के लिए जनता से संबन्ध स्थापित करना आवश्यक था। अत: उनके शिक्षा प्रसार का उद्देश्य धर्म को जनसाधारण की भाषा के माध्यम से सुलभ और सुगम बनाना था। अंग्रेजों को शासन चलाने के लिये अनेक प्रान्तीय युवकों की आवश्यकता थी, जो उनके रीतिरिवाज से हो नहीं वरन् उनको आधुनिकतम शिक्षा से भी परिचित हो। व्यापार विस्तार के लिए भी अंग्रेजों को क्लर्क, मैनेजर और एजंटों की आवश्यकता का अनुभव हो रहा था।

इस प्रकार अंग्रेजों ने अपने स्वार्थ के लिये शिक्षा का प्रसार करने पर भी अधिकांश परिणाम आंध्र के हित में हुए। धीरे धीरे शिक्षित मध्यवर्ग ने यूरोप के आधुनिक लोकतांत्रिक विचारों को आत्मासात कर लिया और अपने देश को सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था में सुधार के लिए मध्ययुगीन रूढ़िवादिता के साथ ब्रिटिश साम्राज्य का विरोध किया।

3·1·3· मुद्रण एवं प्रकाशन व्यवस्था :-

मुद्रण यंत्र के स्थापना से पहले साहित्यकार और समाज का सीधा सम्बन्ध रहता था लेकिन अब मुद्रण के माध्यम से ही वे एक-दूसरे से सम्बन्ध हो पाते थे। इस माध्यम ने साहित्यकार को अवसर दिया कि वह बहुत कुछ व्यक्तिगत भी अभिव्यक्त कर सके। आधुनिक काल का साहित्य मुद्रण-कला के कारण अपने रूप-रंग, अभिव्यंजना, प्रभावान्वित आदि में मध्यकालीन साहित्य से पृथक और स्वतंत्र रूप से अस्तित्ववान् हो गया है। आधुनिक काल के साहित्य में मुद्रण कला के कारण जो वैविध्य आये है उसी में उपन्यास एक है। उपन्यास के उद्भव के लिये आवश्यक गद्य साहित्य और मध्यवर्गीय समाज दोनों भी मुद्रण्य यंत्र के आविष्कार के पहले अविकसित थे। इस प्रकार प्रेस उपन्यास साहित्य के उद्भव में एक प्रमुख भूमिका निभाई है।

3·2· प्रवृत्तियाँ :

3·2·1· उद्भव कालीन उपन्यासकार और उनके उपन्यास :-

सन् 1872 ई· में प्रकाशित नरहरि गोपाल कृष्णम्म चेट्टी कृत उपन्यास श्री रंगराजचरित्रमु को मद्रास गजिट ने प्रथम तेलुगु उपन्यास घोषित किया। ये आख्यायिका शैली में विरचित एक काल्पनिक ग्रन्थ है, जिस में सम सामाजिक गतिविधियों का किंचित चित्रण हुआ है। अधिकांश समालोचकों ने इसे प्रथम उपन्यास नहीं स्वीकार किया।

1872 ई॰ के पूर्व भी उपन्यास के नाम से तेलुगु में ग्रन्थ मौजूद है जैसे कोक्कोण्ड वेंकटरत्नम का "महाश्वेता"। ये उपन्यास बाणभट्ट की "कादम्बरी" की अनुकृति है। इसे भी प्रथम उपन्यास का स्थान नहीं प्राप्त हुआ।

अधिकांश समालोचकों के मतानुसार 1872 में ही रचित राजशेखर चरित्रमु, तेलुगु का सर्व प्रथम मौलिक उपन्यास है। इसका लेखक कंदुकूरि वीरेशलिंगम पंतुलू है। यद्यपि इसके सम्बन्ध में यह मत भेद है कि अंग्रेजी के विख्यात उपन्यास आलिवर गोल्डस्मिथ कृत "विकर आफ वेकफील्ड" का पद अनुकरण है। वास्तव में उपन्यासकार "विकर आफ वेकफील्ड" से प्रतिपाद्य चयन किया है और उसे भारतीय विशेषत: आन्ध्र के सामाजिक परिवेश में स्वाभाविक तथा सहज रूप में चित्रित कर दिया है। कंदुकूरि स्वयं एक युग प्रवर्तक है, उन्होंने न केवल दिशा निर्देशन ही किया है, वरन् अन्य कई लेखकों के द्वारा उपन्यासों को लिखवाकर उन्हें प्रोत्साहन भी दिया है। "राजशेखर चरित्रम," में उस समय के आन्ध्र प्रान्त की सारे विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया। पंतुलू जी का आशय भी यही रहा।

तेलुगु उपन्यास साहित्य के इस आरम्भिक काल में उपन्यासों के भिन्न प्रवृत्तियों को भी परखा जा सकता है। इस काल के उपन्यासों को अध्ययन की सुगमता के लिए ऐतिहासिक, सामाजिक, हास्यरसात्मक, जासूसी, राजनैतिक आदि वर्गों में विभक्त किया गया है।

श्री चिलकमूर्ति लक्ष्मीनरसिंहम् पन्तुलु तेलुगु के प्रथम ऐतिहासिक उपन्यासकार है । इनको प्रथम उपन्यास " रामचन्द्र विजयमु " को चिन्तामणि पत्रिका का प्रथम पुरस्कार मिला । इस उपन्यास की कथावस्तु सामाजिक है फिर भी इसकी दृष्टि ऐतिहासिक है । इसी दृष्टिकोण ने इनको आन्ध्र स्काट " को उपाधि से विभूषित किया है । ऐतिहासिक उपन्यास रचना में इनको ज्येष्ठ तथा श्रेष्ठ मानना चाहिए । चिलकमूर्ति के ऐतिहासिक उपन्यासों में " हेमलता ", " अहल्याबाई ", " कर्पूरमंजरी " आदि पुरस्कृत उपन्यास है । इन सब उपन्यासों में कर्पूरमंजरी " सर्वाधिक लोकप्रिय हुई है ।

इस समय के ऐतिहासिक उपन्यासों में अक्किराज, उमाकान्तम् का " टिप्पु सुल्तान ", केतवरपु वेंकटशास्त्री का " रायचूरूमुट्टडि " और " बोब्बिलि मुट्टडि ", दुग्गिराल राघवचन्द्रय्या का " विजयनगर साम्राज्यमु ", वेंकटपार्वतीश्वर कवियों का " प्रमदावनमु " श्री वेलाला सुब्बाराव का " राणी संयुक्त " आदि उल्लेखनीय है ।

सन् 1980 में प्रकाशित कंदुकूरि वीरेशलिंगम पंतुलु की " राजशेखर चरित्रम " को तेलुगु का प्रथम उपन्यास स्वीकार किया गया । सामाजिक उपन्यासों की रचना में कन्दुकूरि को ही मार्गदर्शक माना जाता है । गोल्डस्मिथ की " विकार आफ वेकफील्ड " के अनुसरण होने पर भी पन्तुलुजी का " राजशेखर

चरित्रमु " किसी प्रकार कम महत्वपूर्ण नहीं है । इतिवृत्त के विस्तृत दर्पि तथा नैतिक आकर्षण में शायद " विकार आफ वेक्कील्ड " से " राजशेखर चरित्रमु " की कुछ समानता हो सकती है, किन्तु अपने विषय तथा शैली, चरित्र-चित्रण और सामाजिक पृष्ठभूमि आदि कई दृष्टियों से वह आन्ध्र की अपनी वस्तु बन गयी है ।

श्री चिलक मूर्ति लक्ष्मी नरसिंहम् पंतुलु ने 1894 में " रामचन्द्र विजयमु " की रचना की थी, जिसमें यथावत् असत् पर सत् की, छलकपट तथा विश्वासघात पर धर्म तथा सद्वृत्तियों की विजय का चित्रण किया गया है । इस उपन्यास में भी पात्र अधिकतर मध्यवर्ग के है ।

20 वीं शताब्दी के आरम्भ में कुछ समय तक बंगाली, हिन्दी, मराठी आदि भारतीय भाषाओं के तथा अंग्रेजी, फ्रेंच आदि यूरोपीय भाषाओं के उपन्यासों के अनुवादों की बाढ़ सी आ गयी थी ।

इस समय में अनुवादों के अतिरिक्त कुछ मौलिक रचनाएँ भी प्रकाशित हुए है । इन रचनाओं में विज्ञान चन्द्रिका मण्डली द्वारा प्रकाशित भोगराजु नारायणमूर्ति की उपन्यास " विमलादेवी " उल्लेखनीय है ।

इस समय के कई उपन्यास केवल नाम मात्र के लिए ऐतिहासिक हैं । इसका कारण यह है कि उस युग के ऐतिहासिक शोध की अपरिपक्वता । इस उपन्यासों के लिए ऐतिहासिक तथ्य केवल आधार मात्र है । समस्त कथावस्तु तो लेखक की कल्पना, ऊहा तथा भावना बल पर ही निर्भर है । अत: उन्हें जितना ऐतिहासिक माना जा सकता है उतना ही सामाजिक भी । 20 वीं शताब्दी के आरम्भ में नवीन चेतना के प्रादुर्भाव से जनता की दृष्टि के ऐतिहासिक की अपेक्षा सामाजिक समस्याओं की ओर आकृष्ट होने के कारण, ऐतिहासिक उपन्यास धीरे-धीरे अपना स्थान खो गया । इस प्रवृत्ति के उदाहरण है केतवरपु वेंकट स्वामी के उपन्यास । ऐतिहासिक तथा सामाजिक उपन्यास रचना में इनकी प्रतिभा समान रही । फिर भी सामाजिक उपन्यास रचना की ओर शास्त्री जी का अधिक झुकाव रहा । शास्त्री जी के उपन्यासों में " इच्छिनी कुमारी " तथा " लक्ष्मी प्रसादम् " अधिक प्रसिद्ध है ।

हिन्दी में गोपालराय गहमरी दुर्गाप्रसाद खत्री, जयराम दास, ठाकुर जगमोहन सिंह आदि जैसे उपन्यासकार है जिन्होंने हिन्दी उपन्यास साहित्य की उद्भव काल में मौलिक जासूसी उपन्यासों की रचना की है । किन्तु तेलुगु उपन्यास साहित्य की आरम्भिक काल में जासूसी उपन्यासों का काफी विकास नही हुआ है । सुप्रसिद्ध तेलुगु लेखक कोडवगंटि कुटुम्बराव जी के बातों में देखिए — " जहाँ तक मै जानता हूँ, आज से लग भग साठ साल (1967 से साठ साल)

पूर्व से तेलुगु में जासूसी उपन्यास लिखे जा रहे हैं । प्रारम्भ में जो उपन्यास आये वे " पांच कौंडदेव " जैसे बंगाली लेखकों की रचनाओं के अनुवाद है । इनमें अद्भुत रस की मात्रा अधिक और जासूसी कम है । जासूस अत्यधिक श्रम कर कई प्रमाण एकत्रित करता है, किन्तु वे अपराधी का पता लगाने में किंचित भी सहायक नहीं होते । जासूसी स्वयं कई बार कष्टप्रद पिंजडे में फस दुर्दशा का शिकार होता है । यह केवल उत्सुकता के लिए है । किन्तु अन्त में जब उसे विजय प्राप्त होती है, तो लगता है, वह संयोग से ही प्राप्त हुई है, उस में जासूस के व्यक्तित्व का कोई महत्व नहीं है ।

इसके अतिरिक्त ऐसा लगता है कि जासूस तथा उसके प्रतिद्वन्द्वी खलनायक में कई असाधारण शक्तियाँ है । साधारण मानव जो कार्य नहीं कर सकता, वह काम वे आसानी से कर सकते है । लगता है कि जासूसी उपन्यास लिखने वालों को रसायनशास्त्र सम्बन्धी कई अन्धविश्वास है । इन रसायनों से खलनायक अति आश्चर्यजनक कार्य कर लेता है । किन्तु उन रसायनों के नाम नहीं होते ।

बहुत समय तक ऐसे उपन्यास अन्य कई भाषाओं से तेलुगु में अनूदित होते रहे है । " मायावी ", " मनोरमा ", " माया - विनो ", " पेटिकान्तारश्म ", " भूतगृह " आदि उपन्यास इसी

कोटि के है । इस प्रकार के उपन्यास में मयसभा, पगीट्पुक्का ‖ दिन का तारा ‖, कन्नपुदोंगा ‖ सेंधि का चोर ‖ आदि आन्ध्रों द्वारा लिखे हुए उपन्यासों के भी नाम लिये जा सकते है । "

श्री वीरेशलिंगम पंतुलु जी ने कहानी, उपन्यास, नाटिका, नाटक, निबन्ध आदि की रचना करते हुए आधुनिक आन्ध्र वाङ्मय का श्रीगणेश किया है । तेलुगु के प्रथम हास्य रसात्मक उपन्यास भी उन्हो ने लिखी थी । उस समय तेलुगु में हास्य रस प्रधान रचना का अभाव देख कर, उस अभाव की पूर्ति के लिये पंतुलु जी ने कुछ अनुवाद तथा मौलिक रचनाएँ की । उसमें प्रधान रचना है " सत्यराजा की पूर्व देश की यात्राएँ " ये जोनाथन श्वपट की " गलीवर ट्रावेल्स " नामक उपन्यास का अनुसरण है ।

उक्त उपन्यास में कथानायक एक ब्राह्मण ब्रह्मचारी युवक है । उन्होंने देश भ्रमण की इच्छा से दक्षिणदेश की ओर निकल पड़ता है । किसी मांत्रिक से परिचय प्राप्त कर, उनके मन्त्रोप देश के प्रभाव से दुर्भेद्य रहस्य मार्ग द्वारा " आडमल - थोलम " पहुँच जाता है ।

" आडमलयालम " देश का सारा वातावरण उसे पूर्णत: अपने देश के विपरीत प्राप्त होता है । हमारेदेश की स्त्रियों की दुर्दशाएँ जैसे रसोई घर में ही पडी रहना, बाजार न देख पाना, अनपढ़ बनी रहना, अज्ञान अंधकार में फँसी रहना, पुरुषों के हाथ का खिलौना बनना आदि उस देश में पुरुषों के भाग्य में बंदी थीं । बाद में वहाँ से लंका द्वीप जाता है । वहाँ उनकी भेंट राक्षसों के समूह से होती है । पंतुलुजी की इस उपन्यास की रचना ग्रान्थिक भाषा में होने के कारण और पंतुलुजी समाज सुधार हकी ओर पक्षपात होने के कारण इसका जितना समादर होना चाहिए था । उतना नही हुआ । इसके बाद पंतुलु जी पद्य रूप में दो और रचनाएँ - " अभाग्योपाख्यान " तथा " वन्यमृग प्रहासन " की थी ।

इस क्षेत्र में पंतुलुजी के बाद चिलकमूर्ति लक्ष्मी नरसिंहम् जी के नाम उल्लेखनीय है । चिलकमूर्ति जी सरल कविता, लोक प्रिय नाटकों का प्रणयन एवं हास्य युक्त सम्वाद रचना में अत्यन्त कुशल थे । इन्होंने कुछ प्रसहन और व्यंग्य-प्रधान नाटिकाएँ भी लिखी है । उस समय के समाज-सुधारक आन्दोलनों ने उन्हें हास्य प्रधान उपन्यास लिखने की प्रेरणा दी और परिणाम स्वरूप " गणपति " नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ । उन दिनों में वह श्रेष्ठ हास्य - रसात्मक उपन्यास के रूप में प्रसिद्ध और समादृत हुआ है ।

श्री मोक्कपाटि नरसिंह शास्त्री जी को हास्य प्रधान रचनाकारों में सिद्दहस्त तथा प्रथम लेखक माना जाता है । जेकब्स, मार्कट्वेइन, बेरी पेइन, बर्नार्डशा, चेस्टरटन आदि से प्रभावित होकर, अपनी संस्कृति तथा आचार-विचार के अनुकूल उस प्रभाव को अपना कर उन्होंने स्वच्छ हास्यरसात्मक उपन्यास की सृष्टि की है । उनका बैरिष्टर पार्वतीशम हास्यप्रधान उपन्यासों में श्रेष्ठ है ।

मोक्कपाटि के बाद मुनिमाणिक्यम का नाम ले सकते है । हास्य और करुणा रस के पोषण में मोक्कपाटि और मुनि - माणिक्यम का स्थान लगभग समान है । उपन्यासों में भी मुनि - माणिक्यम् का हास्य कोमल तथा सौम्य है । उनकी नायिका " कान्तम् " का साहित्य नायिकाओं में सर्वश्रेष्ठ हैस्थान है । इनके " दीक्षितुलु " और " अन्नय मंत्रि " को छोडकर बाकी सब हास्य प्रधान रचनाएँ है । हास्य प्रधान कहानिया और उपन्यासों के प्रणयन के अतिरिक्त उन्होंने हास्य रस का शास्त्रीय विवेचन करते हुए हास्य प्रधान कृतियाँ प्रस्तुत की हैं।

उन्नव लक्ष्मीनारायण की " मालपल्ली " (हरिजनों की बस्ती) के बाद उप्पाल लक्ष्मणराव का अतडु-आमें, महीधर राम मोहन राव जी का " रथ-चक्रालु ", " दावानलम् " श्री विश्वनाथ का पुलुल सत्याग्रहम् (बाघों का सत्याग्रह) आदि उद्भव कालीन राजनैतिक उपन्यास कहने योग्य है ।

इस प्रकार तेलुगु उपन्यास साहित्य के उद्भवकाल में ऐतिहासिक, सामाजिक, जासूसी, हास्यरसात्मक, राजनैतिक आदि विभिन्न प्रवृत्ति प्रधान उपन्यास लिखकर लेखकों ने उपन्यास विधा को लोकप्रिय बना दिया ।

3.2.2. आरंभिक उपन्यासों में पिछडापन, अंधविश्वास जाति प्रथा आदि कुरीतियों का यथार्थ चित्रण :-

1872 में प्रकाशित नरहरि गोपाल कृष्णम्म सेट्टी की " श्री रंगराज चरित्रमु " को कुछ आलोचक तेलुगु का प्रथम उपन्यास मानते है । किन्तु " रंगराज-चरित्रमु " पर अंग्रेजी का कोई प्रभाव नहो है । इतिवृत्त पूर्णतया मौलिक तथा कल्पित है । लेखक ने स्वयं लिखा है कि ऐतिहासिक वातावरण का आधार बनाकर, हिन्दुओं के आचार-विचारों का वर्णन करने के लिए इस नवीन ग्रन्थ की रचना की है । इस में समाज में प्रमुखत: दिखाई देने वाले जातिप्रथा, अंधविश्वास आदि कुरीतियों का यथार्थ चित्रण किया गया है ।

आन्ध्र प्रदेश में समाज सुधारक तथा साहित्यकार दोनों रूपों में वीरेशलिंगम पंतुलु जी का महत्वपूर्ण स्थान है । उन्होंने समकालीन समाज में परिव्याप्त कुप्रथाओं, विकृत सिद्धान्तों तथा अन्ध विश्वासों का खण्डन कर, समाज में अनेक परिवर्तन लाकर

युगपुरूष की उपाधि से विभूषित है । उनके रचनाएँ राजशेखर चरित्रमु, " सत्यवती चरित्रमु ", " सत्यराजा पूर्वदेश यात्रलु " आदि में समकालीन सामाजिक कुरीतियों का यथार्थ चित्रण मिलता है । 1878 से लेकर 1890 तक आन्ध्र प्रदेश में पंतुलु जी के अलावा और कोई उपन्यासकार नहीं था ।

राजशेखर चरित्रमु :-

धवलेश्वरम नामक गाँव में राजशेखरम् नामक एक संपन्न गृहस्थ रहता है । उस गाँव के ज्योतिषी रामशास्त्री आदि चाटुकार सदा राजशेखरम् की खुशामद कर उनसे पैसे ऐंठते रहते हैं । राजशेखरम् अपनी प्रशंसाएँ सुन फूलकर, पैसा बहाने वाले स्वभाव के है । उस गाँव के लोगों के अतिरिक्त दूसरे गाँवों के लोग भी राजशेखरम् के यहां आते है और दो-तीन दिन उनके यहाँ रहकर सत्कार ग्रहण कर जाते है । दूर-दूर के सम्बन्धी भी कोई न कोई रिश्ता जोड कर उनके यहाँ महीनों तक रहते है । धवलगिरि में हनुमान के मन्दिर बनाने में काफी पैसा खर्च करते रहते है । राजशेखरम् का साला दामोदरय्या पत्नी के मर जाने पर दूसरी शादी कर राजशेखरम् की सहायता पर ही उस गाँव में निवास करता रहता है । दामोदरय्या की प्रथम पत्नी की सन्तान शंकरय्या अपने मामा राजशेखरम् के घर में ही रहता है । राजशेखरम ने अपनी बड़ी लड़की रूक्मणी का विवाह करता है पर उसका पति बुरी संगति में

फंस कर घर छोड कहीं चला जाता है । उनकी इच्छा है कि दूसरी लड़की सीता का विवाह भानजे शंकरय्या के साथ कर दें । उनकी चाचा की लडकी सुब्बम्मा विधवा होने के कारण उन्हीं के घर में रहा करती है । इतने में उस गाँव में स्वर्ण विद्या जानने वाला एक बैरागी आता है, वह राजशेखरम के घर में कुछ दिन रहकर सोना बनाने के बहाने घर का सारा चाँदी सोना इकट्ठा कर भाग जाता है । कुछ दिन बाद एक मांत्रिक राजशेखरम् के पास आता है और विश्वास दिलाता है कि सुब्बम्मा का मृत पति ही भूत बनकर उसे सता रहा है । कुछ झाड-फूंककर छलकपट रच वह राजशेखरम के पुरस्कार पाकर भी सन्तुष्ट न होकर घर में रही सही सामग्री चुरा ले जाता है । राजशेखरम् उस गाँव में अपनी दुर्दशा को सहन नहीं कर सकते । वे मानसिक शांति के लिये पुण्यक्षेत्रों के दर्शन के लिए निकल पड़ते है । अनेक कष्ट सहने के बाद अन्त में फिर राजशेखरम को पूर्व वैभव की प्राप्ति होती है ।

इस उपन्यास में समाज की समस्त कुप्रथाओं की आलोचना की गयी है । झाड-फूंक, धर्माधिकारियों की अनीति, दुराचार, ग्रहण, शकुन, चटसार की पढ़ाई, त्योहार, बाल-विवाह, वैधव्य की दुर्दशा, स्वर्णयोग, जादू-टोना, कुछ लोगों की खुशामदें, वेश्याओं के अनर्थ, सरकारी अधिकारियों के अनुचित व्यवहार आदि सभी विषयों की सूक्ष्म आलोचना की गयी है । हम निस्संकोच कह सकते है कि आन्ध्र साहित्य का पहला सामाजिक उपन्यास " राजशेखर चरित्रमु " ही है ।

" राजशेखर चरित्रमु " तथा " विकार आफ वेक फील्ड " के इतिवृत्त में थोडा-बहुत साम्य होने पर भी, पन्तुलु ने अपनी रचना प्रधानतया समाज सुधार को दृष्टि में रख कर की है । अंग्रेजी के उपन्यास में साहित्य सौन्दर्य प्रधान है । उस में समाज सुधार की भावना का एक दम अभाव है । " राजशेखर चरित्रमु " पन्तुलु जी को मौलिक प्रतिभा का उज्जवल प्रमाण है ।

सत्यवती चरित्रमु :-

स्त्रियों के कल्याण के लिए पंतुलु जी " सतीहित बोधिनी " नामक एक पत्रिका चलाये थे । उसका संपादक और लेखक भी उन्हो थे । समाज में स्त्रियों पर होने वाले अत्याचार, अन्याय आदि का खण्डन करते हुए और स्त्री शिक्षा, स्त्री स्वतंत्रता का महत्ता घोषित करते हुए उन्होंने इस उपन्यास लिखा ।

मुंगोण्डा नामक गाँव में लक्ष्मी नारायणराव और यशोदम्मा के चार लडके होते है । बडा लडका वेंकटेश्वर्लु और उनकी पत्नी सुन्दरम्मा दोनों भी अशिक्षित है । अंधविश्वास, मूढ़ाचार, ईर्षा-द्वेष, अज्ञान आदि में एक से बढ़कर एक है । ये एक अशिक्षित पति पत्नी का दाम्पत्य है । दूसरा लडका नारायण मूर्ति और उनकी पत्नी सत्यवती शिक्षित है । तीसरा लड़का रामस्वामी अनपढ़ है परन्तु उसकी पत्नी महालक्ष्मी एक शिक्षित

और आदर्श नारी है । यह सभी विषयों में सत्यवती को आदर्श बनाती है और कष्टों को सहकर पति को सही रास्ते पर लाती है । चौथा लडका सुब्रमण्यम शिक्षित है लेकिन उनकी पत्नी सुरम्मा अशिक्षित है । यह भूत प्रेत के नाम लेकर चिल्लाती रहती है, पडोसियों से झगडती है ।

इस तरह पंतुलु जी स्त्री शिक्षा का महत्ता को घोषित करते है । निर्बन्ध वैधव्य, कन्या शुल्क, वृद्ध विवाह, मंत्र-तंत्र, ज्योतिषी आदि का समीक्षा किया गया है । उन दिनों में ही इस उपन्यास तमिल, कन्नड, मलयालम आदि भाषाओं में अनूदित हुआ था ।

सत्यराजा पूर्व देश यागलु :-

जोनाथन स्विफ्ट के अंग्रेजी उपन्यास " गलिवर ट्रावेल्स " के अनुसरण के रूप में पंतुलुजी इस उपन्यास को रचना किये थे । सत्यराजा नामक कथा नायक का यात्रा वृत्तांत ही इस उपन्यास का विषय है । इस उपन्यास के दो भाग है लंकाद्वीप और आडमलयालम । पंतुलु जी ने इस उपन्यास में समकालीन समाज में स्त्रियों के साथ होने वाला अन्याय पुरुषों पर आरोपित कर के लिखे है । आडमलयालम में जिसको पत्नी मर जाती है उसका नाक काटा जाता है । पत्नी मर गयी तो पति को भी उसके लाश के साथ खनन किया

रहता है । पुत्री ज्योति सरल तथा आदर्श स्वभाववाली कन्या है, जो अपने चरित्र बल से समग्र उपन्यास को ज्योतित करती रहती है । रामदास की बहन का पुत्र अप्पादास, आदर्श युवक है । अप्पादास तथा ज्योति में बचपन से ही स्नेह पनपता रहता है ।

इस मुख्य कथा के साथ उपन्यासकार चौधरय्या के परिवार की कथा आकलन स्वभाव, वैषम्य आदि के प्रदर्शनार्थ किया है । चौधरय्या क्रूर तथा लोभी स्वभाव का है और उनकी पत्नी लक्ष्मम्मा अतीव उदार तथा स्नेही है । उनके पुत्र रामानायुडु और दत्तक पुत्र वेंकय्या दोनों ही बडे होकर बलवान बन, खेती-बाडी में अपने पिता की सहायता करते है ।

रामदास अपने अस्पृश्य जाती के लोगों के उद्धार के लिए प्रयत्नशील रहता है । उसका पुत्र संगदास अपने पिता के अभिप्रेत कार्य की सफलता के लिए तन, मन से प्रयत्नशील रहता है । अपने मालिक चौधरय्या के पुत्र रामानायुडु को वह अपने व्याख्यान तथा व्यवहार से प्रभावित करता है । रामानायुडु संगदास के साथ मिल जुलकर रहता है । चौधरय्या को ये अच्छा नही लगता । चौधरय्या संगदास की हत्या करता है । मजदूरों के लिए अनेक समस्याएँ उत्पन्न करता है । रामदास का ज्येष्ठ पुत्र वेंकटदास गाँव छोडकर भाग जाता है । बाद में वह तक्केल्ला जग्गडु नाम से डाकू बनकर साहुकारों को लूट, दीन, दुखियों की सहायता करने लग जाता है । संगदास के समाधि के निकट ग्रामीणों द्वारा

" संगपीठम् " स्थापित होता है । वहाँ हरिजनों की शिक्षा - दीक्षा का सुन्दर प्रबन्ध किया जाता है । रामदास, अप्पादास और लक्ष्मी उसे चलाते रहते है । तक्केल्ल जग्गडु की चोरी डकैती के सिलसिले में रामदास के परिवार को गिरफ्तार कर लिया जाता है और उन्हें सुधार केन्द्र में भेजा जाता है ।

चौधरय्या के घर में रामानायुडु की पत्नी कमला पति के चचेरे भाई मोहन राव के साथ मद्रास भाग जाती है । अन्त में कमला चेचक रोग से और मोहन राव क्षय रोग से पीडित होकर मर जाते है । चौधरय्या के मृत्यु के बाद रामानायुडु और वेंकटय्या यह निश्चय करते है कि अपना सारा जायदाद संगपीठम को दे देंगे ।

एक दिन जेल सूपरिंटेंडेट पाल से अपने को बचाने के लिये लक्ष्मी नदी में कूदती है, अचानक अप्पादास तभी वहाँ पहुचता है और वह भी नदी में कूद कर अपनी जान दे देता है । जग्गडु पकडा जाता है । उसके द्वारा लक्ष्मी और अप्पादास का सहमरण का समाचार सुनकर महालक्षम्मा वही मर जाती है । अनेक कष्टों, यातनाओं को सहकर जग्गडु मर जाता है । तदनन्तर जेल में अनेक कष्टों का सामना कर रामदास मुक्ति लाभ करता है । वह अपना गाँव चला आता है । रामानायुडु आदि उसका स्वागत करते है । मंगलापुरम में जग्गडु की भेजी पाँच लाख की रकम से " विजय कला - शाला " की स्थापना की जाती है । इस प्रकार जीवन में पग-पग

पर कष्टों का सामना करने वाला रामदास अचंचल भाव से अपने कार्य में निमग्न रहता है । एक दिन वह अकस्मात् आरण्यकों की ओर चला जाता है । और यही उपन्यास भी समाप्त हो जाता है ।

इस उपन्यास में संगदास सर्वतोन्मुखी ज्ञान, अद्भुत त्याग, ज्योति अप्पादास का अशरीरी प्रेम, महालक्ष्मम्मा का वात्सल्य, वेंकटदास का आत्मार्पण, रामानायुडु का अकुंठित सेवा भाव और रामादास के निष्काम कार्यभाव का सुन्दर तथा प्रभावशाली ढंग से वर्णन किया गया है ।

3·2·3· उपन्यासों की मुख्य प्रवृत्तियाँ (1972 से 1920 तक) :-

आरम्भ कालीन तेलुगु उपन्यास साहित्य समाज के क्षीणोन्मुख सामन्ती रूप तथ्य विकासशील उत्पादन की नयी शक्तियों और संस्कृति की सम्मिलित देन है जिसका वस्तु-मूल अधिकतः इसके पूर्ववर्ती और अंततः तत्कालीन समाज में है । इस काल में जहाँ एक ओर अंग्रेजी शिक्षा और शासन और नीतियों के द्वारा मध्यवर्ग और उसके उपन्यासों का विकास हुआ । वहीं दूसरी ओर उन्हीं के फलस्वरूप तेलुगु लेखकों में अपने देश और समाज के संबन्धों में विचार करने की प्रवृत्ती जागी । अतः उद्भव कालीन समग्र तेलुगु, उपन्यास साहित्य में चाहे ऐतिहासिक हो व सामाजिक, सामाजिक कुरीतियों का निर्मूलन लेखकों का लक्ष्य

रहा । इसलिए आरम्भकालोन उपन्यासों में तत्कालोन समाज के कुरीतियाँ, मुख्यत: पारिवारिक जोवन की समस्याएँ, विधवा जीवन, बाल विवाह, व्यभिचार, धार्मिक रूढ़िया, दहेज प्रथा, स्त्री शिक्षा, भ्रष्टाचार, सरकारी कर्मचारियों में परिव्याप्त भ्रष्टाचार का प्रतिपादन कथ्य के रूप में हुआ था ।

इन सारे प्रवृत्तियों को उद्भव कालोन उपन्यासों जैसे राजशेखर चरित्रमु, सत्यवती चरित्रमु, रामचन्द्र विजयमु, आदि उपन्यासों में स्पष्ट रूप से देख सकते है ।

3·3· वर्गीय पृष्ठभूमि :-

उपन्यास का सामाजिक आधार मध्यवर्ग ही है । उपन्यास को मध्यवर्ग से अलग कर के नही देखा जा सकता । उपन्यास जन्म से याथार्थवाद की ओर उन्मुख रहा । उपन्यास का उद्देश्य ही समाज की जटिल समस्याओं और उनके समाधान को प्रस्तुत करना । सामाजिक समस्याओं जैसे पारिवारिक कलह, विधवा जीवन, बाल - विवाह, व्यभिचार, वेश्यागमन, धार्मिक रूढ़िया, पुलिस अदालत के अकथनोय अत्याचार रिश्वतखोरी, दहेज प्रथा, स्त्री शिक्षा आदि सभी समस्याओं को अनुभव करनेवाले झेलनेवाले अधिकतर मध्यवर्ग के लोग ही हैं । इसी कारण सामाजिक समस्याओं को और यथार्थता को मध्यवर्ग के लोग ही ठीक से समझ सकते है । अत: उद्भव काल

से भी उपन्यास के लेखक अधिकतर मध्यवर्ग के रहे । उपन्यास मध्यवर्ग से संबन्धित होने के कारण इसके पाठक भी अधिकतर मध्यवर्गीय ही है ।

अत: उपन्यास के उद्भवकालीन उपन्यासकार जैसे वीरेश - लिंगम से लेकर उन्नत लक्ष्मी नारायण तक अधिकतर लेखक मध्यवर्ग के है ।

3·3·1· शिक्षित मध्यवर्ग से उपन्यासकारों का उदय :-

ब्रिटिश सरकार ने शिक्षा का प्रसार भारत में अपने स्वार्थ के लिए करने पर भी परिणाम हमारे हित में ही हुए । धीरे-धीरे शिक्षित मध्यवर्ग ने यूरोप के आधुनिक लोकतंत्रिक विचारों को आत्म - सात कर लिया और अपने देश की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्थाओं में सुधार के लिए मध्ययुगीन रूढ़िवादिता के साथ ब्रिटिश साम्राज्य का विरोध किया । इसके पूर्ति के लिए साहित्य को माध्यम को अपनाया गया । फलत: उपन्यास का जन्म हुआ । इसके द्वारा वे सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक समस्याओं को जनता के सम्मुख रख कर उसे जगाने की कोशिश की । इस तरह उपन्यास - कारों का उदय शिक्षित मध्यवर्ग से हुआ ।

3.4. निष्कर्ष :-

तेलुगु राज्य पर पहले मुगलों का दुष्ट पालन, फिर असफ - जाही निजामों का बाद में कृष्णा नदी के उत्तर प्रान्त में असफजाही निजामों का और दक्षिण प्रान्त में अंग्रेजों का पालन आदि के कारण समाज पतनावस्था में था । प्रजा निराश थे । अंग्रेजों के शिक्षा प्रचार के कारण शिक्षित मध्यवर्ग का जन्म हुआ । वे समकालीन सभी व्यवस्थाओं में सुधार की आवश्यकता का अनुभव किया । इसी के पूर्ति के लिए एक सशक्त माध्यम के रूप में उपन्यास का उदय हुआ । उपन्यास का कथावस्तु मध्यवर्ग का होने के कारण इसके लेखक और पाठक के उदय भी मध्यवर्ग से ही हुआ । उद्भव कालीन उपन्यासकार अपने उपन्यासों में समकालीन सामाजिक समस्याओं को समाधान सहित प्रस्तुत करते थे । धीरे-धीरे तेलुगु उपन्यास अपनी विभिन्न प्रवृत्तियों के साथ विकास की ओर अग्रसर हुआ ।

चतुर्थ अध्याय

हिन्दी उपन्यास का विकास : समाजशास्त्रीय विवेचन

4• हिन्दी उपन्यास का विकास : समाजशास्त्रीय विवेचन

4•1• परिस्थितियाँ एवं परिवर्तन की प्रक्रिया :-

अंग्रेजों के आगमन तथा शिक्षा के प्रसार ने भारतीय जनता में अपने पिछड़ेपन के कारणों को खोजने की जिज्ञासा उत्पन्न की । फलस्वरूप देश में संगठन की बात सोची जाने लगी और कांग्रेस का जन्म हुआ । देश की परिस्थितियाँ तीव्रता से बदल रही थी । भारतीय नेता राजनीतिक अधिकार प्राप्त करना चाहते थे क्यों कि आर्थिक व सामाजिक अधिकार इसी में निहित थे । शिक्षित वर्ग में यह बात तेजी से फैल रही थी । इस शताब्दी के आरम्भ से ही बंगाल भारत के राजनैतिक जागरण का केन्द्र रहा है । सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से सम्पन्न बंगाल का अंग्रेजों ने विभाजन चाहा और 1905 ई• में बंग विभाजन की घोषणा कर दी । धीरे-धीरे

इस आन्दोलन ने उग्र रूप धारण कर लिया और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के नारे लगाने लगे । उभरते हुए राष्ट्रीय पूँजीवाद ने राष्ट्रीय भावना के विकास में काफी सहयोग दिया । फलस्वरूप देश में कपड़ा मिले, बैंक, स्टील उद्योग, जूते, साबुन आदि के कारखाने खुलने लगे ।

कांग्रेस का गरम और नरम दो दलों में विभाजन हो गया । मुस्लिम लीग की स्थापना के साथ हिन्दू और मुसलमानों में भेद-भावना आगई थी । जलियावाला बाग की घटना ने देश में अराजकता की स्थिति उत्पन्न कर दी थी । मुस्लिम लीग कांग्रेस से अलग हो गई थी । स्वामी श्रद्धानन्द के शुद्धि आन्दोलन से साम्प्रदायिक झगड़े बढ़ गए थे । प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में उसका विरोध किया है । हमारे नेता हिन्दू मुस्लिम एकता के लिये प्रयत्न तो करते रहे लेकिन इसे जड़मूल से नष्ट करने का प्रयास नहीं किया गया । इस युग से प्रभावित उपन्यासकारों विशेषत: प्रेमचन्द ने राष्ट्रीय आन्दोलन और नेताओं का चरित्र-चित्रण बड़े कलात्मक ढंग से किया है । शासन की बर्बरता, जमींदारों की शोषणवादी नीति, सरकारी कर्मचारियों की धोखा धड़ी, जनता का जागरण, सत्याग्रह, असहयोग आन्दोलन आदि सभी घटनाओं का चित्रण उनके उपन्यासों में मिलता है । 1937 के बाद राजनीति में साम्राज्यवाद का अन्त हो रहा था । भारतीय राजनीति में जमींदारों का विशेष स्थान रहा है । साम्राज्यवाद इन्ही की शासन नीति का एक अंग था । जमींदार अंग्रेजों के समर्थक थे ।

अंग्रेज भारत में औद्योगीकरण नही चाहते थे। फिर भी बदलती हुई परिस्थितियों के कारण भारत में भी कारखाने खुलने लगे। औद्योगीकरण के कारण ही मध्यवर्ग का जन्म हुआ। साधारण मध्यवर्ग गान्धीवाद से प्रभावित था तो शिक्षित मध्यवर्ग में साम्यवादी विचारधारा का प्राधान्य था। स्वतंत्रता की प्राप्ति में भी इस मध्यवर्ग ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाया।

हिन्दी उपन्यास का जो स्वरूप आरम्भ से था, वह समय के अनुसार बदल गया। क्योंकि परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है। परिवर्तन की प्रक्रिया देश व काल की परिस्थितियों पर आधारित होती है। साहित्य युग और समाज का दर्पण होने के कारण इस सामाजिक परिवर्तन को ग्रहण करता है। यद्यपि लेखक युग द्रष्टा होता है। तथापि युग की परिस्थितियाँ उसकी कृति को प्रभावित करती है। प्रेमचन्द तथा उनके समकालीन लेखकों के उपन्यासों में इसकी पुष्टि हो जाती है। अत: स्वतंत्रता आन्दोलन के समय के राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आदि परिस्थितियों को परखने से स्वतंत्रता आन्दोलन का उपन्यास पर प्रभाव और परिणाम स्पष्ट होते है।

4.1.1. राजनीतिक परिस्थितियाँ और उपन्यास पर उनका प्रभाव :-

20 वीं शताब्दी के आरम्भ में राजनीतिक दृष्टि से भारत का दर्जा जितना अंग्रेजों के जामने में घटा है, उतना पहले कभी नहीं घटा था ... संस्कृति के लिहाज से, शिक्षा प्रणाली ने हमारी जड़ ही काट दी और हमें जो तामील दी जाती है, उस से हम अपनी गुलामी की जंजीरों को ही प्यार करने लगे है । आध्यात्मिक दृष्टि से हमारे हथियार जबर्दस्ती छीनकर हमें नामर्द बना दिया गया है ।

स्वतंन्त्रता के पूर्व 1930 के बाद भारती जनके सामने केवल एक ही ध्येय प्रमुख था - स्वतन्त्रता । किन्तु स्वतंतत्रता के तुरन्त बाद अनेक समस्यायें उत्पन्न हो गई । उनमें पुनरावास की समस्या, देशी राज्यों के विलीनकरण, प्रशासनिक इकाईयों के निर्माण एवं विस्तार, शिक्षा एवं राष्ट्र की निर्माण की समस्या प्रमुख है । अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत ने अपने आप को तटस्थ देश के रूप में उभारा ।

स्वतंत्रता के पश्चात भारत में चार वर्ग प्रमुख बन गए - पूंजीवादी या उद्योगपति वर्ग, मजदूर या कामगार वर्ग, किसान वर्ग व बुद्धिजीवी मध्यवर्ग । ये चारों वर्ग अलग-अलग सिद्धान्तों के प्रतीक हैं । पूंजीवाद, औद्योगीकरण, पाश्चात्य अनुकरण, भौतिक

साधनों की उन्नति ने एक ओर बड़ी-बड़ी इमारतों, राजभवनों को खडा किया तो दूसरी ओर गरीबी के प्रतीक, हजारों झोपडे नित्य खडे होते जा रहे हैं। संविधान में भारत को धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र घोषित किया गया है। जनतंत्र ने व्यक्ति की महत्ता को प्रतिष्ठित किया है। साम्प्रदायिकता, धार्मिक कट्टरता आदि से सम्बन्धित परम्परागत मूल्य वैधानिक रूप से समाप्त हो गए हैं। सामाजिक परिवर्तन में भारतीय संविधान ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। विभिन्न रूढ़िग्रस्त सामाजिक मूल्यों का संविधान द्वारा निषेध हो जाने पर नए स्वास्थ मूल्यों की स्थापना हो रही है। मौलिक अधिकारों से व्यक्ति के मानसिक जगत में परिवर्तन आया है। इस परिवर्तन में वैज्ञानिक आविष्कारों का भूमिका भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

संचार साधनों के विकास से दो राष्ट्रों की दूरी कम हुई है। भिन्न संस्कृतियों के प्रभाव से राजनीतिक एवं सामाजिक विचारधारा में परिवर्तन आया है। देश की बदलती हुई राजनीतिक परिस्थितियों ने अनेक विचारधाराओं को जन्म दिया है। विभिन्न राजनीतिक दलों के पोषकों-समर्थकों ने अपनी-अपनी मान्यताओं के अनुरूप जन-जीवन के बीच विचारधाराओं को प्रसारित किया है। फलत: लेखकों के द्वारा भी उसी रूप में उनकी कृतियों में विचारों का समर्थन किया है। आधुनिककाल में भारत की

राजनीति में जहां एक विशाल जन समूह महात्मा गांधी का अनुसरण किया था वहीं मार्क्सवादी विचारधारा का प्रचार भी उत्तरोत्तर विकास करता जाता था । यह स्थिति नितान्त स्वाभाविक थी । जन जागरण काल में विचारों की स्वतंत्रता का विशेष स्थान होता है । अत: विभिन्न राजनीतिक वादों का जन्म भारत में भी हुआ है । ये राजनीतिक वाद मुख्यत: गांधीवाद, मार्क्सवाद एवं समाजवाद के रूप में आये । इन तीनों वादों की अभिव्यक्ति स्वतंन्त्रता के बाद के उपन्यासों में हुई है ।

यशपाल ने " देशद्रोही " में मार्क्सवाद का खुला समर्थन किया है । त्रिभुवन सिंह के शब्दों में, " देशद्रोही " के अन्दर सदा कामरेड की भाँति अन्य भारतीय राजनैतिक दलों की छीछालेदर नहीं की गई है, बल्कि लेखक का एक मात्र लक्ष्य भारतीय कम्यूनिष्ट पार्टी का समर्थन करना है । वह साम्यवाद का प्रचार करना चाहता है ।"[1] प्रेमचन्द के उपन्यास जिस तरह गांधीवादी युग के भारतीय जीवन को चित्रित करते है, यशपाल का प्रस्तुत उपन्यास उसी तरह उत्तर गांधीवाद युग की चेतना को व्यक्त करता है ।

---

1. त्रिभुवन सिंह, हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, 1973 - पृ. 206.

" विषादमठ " रांगेयराघव का एक समाजवादी चेतना युक्त उपन्यास है । बंगाल के एक गावं को उपन्यास का केन्द्र बनाकर दुर्भिक्ष की छाया में सामाजिक उपन्यास, आर्थिक विषन्नता एवं मानवीय विषमता के कई श्यामल चित्र हैं जो बदलते हुए मानव मूल्यों और सामाजिक परिवर्तनों का परिचय दे रहे हैं। पूंजी - पतियों की स्वार्थपरता को चित्रित कर पूंजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध सामाजिक चेतना को प्रबुद्ध किया गया है । अरूण का कथन है — " भीख से गरीबी मिटती नहीं, उसकी अवधि वास्तव में बढ़ती है । बंगाल चावल नही चाहता, क्रान्ति चाहता है । अगर नही कर सकता तो आजाद होने का उसे एक ही नहीं है । आजादी छिननी और भूखे से बढ़कर कौन क्रान्ति कर सकता है ।" [1]

जैनेन्द्र ने " सुनीता " में गांधीवाद का समर्थन किया है । श्रीकान्त का सिद्धान्त है प्रेम अहिंसा से जीवन का उन्नयन । उनका चरित्र गांधीवादी सिद्धान्तों पर आधारित है । इस प्रकार राजनैतिक परिस्थितियों में परिवर्तन आने से सामाजिक परिवर्तनों की गति तीव्र हुई है । आज विभिन्न वादों के संघर्ष ने राजनीति को भी भीषण रूप से आतंकित किया है । जब राजनीति में तनिक परिवर्तन आता है तो जीवन के अन्य क्षेत्रों में हलचल मच जाती है । इस प्रकार राजनीति ने भी जीवन मूल्यों को प्रभावित कर रखा है ।[2]

1· रंगेयराघव, विषादमठ, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, 1971 चौथा सं· पृ· 63·

2· जैनेन्द्र कुमार, सुनीता, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली 1973

4·1·2· सामाजिक परीस्थितियाँ :-

अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारतीय समाज व्यवस्था गांवों पर आधारित थी । ग्राम समाज वर्ग व्यवस्था की श्रृंखलाओं में जकड़ा हुआ था । लेकिन अंग्रेजों के आगमन के साथ भारत में उस नवीन दृष्टि का प्रवेश हुआ जिसमें नवजागरण, औद्योगीकरण, वैज्ञानिक, अन्वेषण, जागरूकता, नवीनता और ताजगी का समावेश था । " यूरोपीय आधुनिक क्रान्ति के फलस्वरूप पाश्चात्य देशों के विचार क्षेत्र में जो क्रान्ति हुई थी, उसका प्रभाव ऐतिहासिक घटनाचक्र के कारण भारतीय जीवन पर भी पड़ा । यहाँ दुनिया की चीजों को देखने-परखने की पद्धति बदली, विचार-क्रम बदला और शीघ्र ही धर्म तथा धार्मिक नैतिकता एवं परलौकिकता स्थान पर, समाज चारों ओर का जीवन, देश आदि बातें शिक्षितों का ध्यान आकृष्ट करने लगी । निस्सन्देह यह शिक्षित समुदाय नवोदित मध्यम वर्ग था ··· वह बौद्धिक पिपासा और प्रगति की आकांक्षा से ओत-प्रेत था और उसी पर समाज के नवनिर्माण का उत्तरदायित्व था ।" [1]

1· लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, बीसवी शताब्दी हिन्दी उपन्यास - नए संदर्भ - राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली - 1970, पृ· 250·

अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली केवल क्लर्क तैयार करने वा भारतीय संस्कृति को नष्ट करने के लिए सन्निविष्ट किया गया था । ईसाई मिशनरियों के धर्म प्रचार से भारत में धर्म परिवर्तन की प्रवृत्ति बढ़ने लगी थी । पाश्चात्य संस्कृति बुद्धिबल एवं भौतिक साधनों की उन्नति में विश्वास करती थी और भारतीय संस्कृति आत्मिक दृढ़ता और आध्यात्मिक चेतना से समन्वित थी । इन दोनों संस्कृतियों की टकराहट एवं समन्वय ने भारतीय समाज में भौतिकवाद को बढ़ाव मिला । समाज की अपेक्षा व्यक्ति प्रधान होने लगा । भोगवादी प्रवृत्ती ने धार्मिक आडम्बरों को बढ़ावा दिया । 19 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अंग्रेजी शासकों ने समाज सुधार की दृष्टि से दास-प्रथा, बाल-विवाह आदि का निषेध करने के लिए कुछ कानून बनाये । हिन्दू समाज सुधारकों ने आन्दोलनों के माध्यम से इन सुधारकों का क्रियान्वित किया । इन सामाजिक तथा सांस्कृतिक आन्दोलनों के फलस्वरूप परम्परागत सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन आया ।

ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज आदि धार्मिक संस्थाओं के सुधारु से सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन होने लगा । इन धार्मिक संस्थाओं का मुख्य उद्देश्य धर्म के माध्यम से युगीन सामाजिक कुरीतियों, अन्धविश्वासों को दूर कर नवीन जीवन दृष्टिकोण को विकसित करना था ।

मध्यवर्गीय समाज में संयुक्त परिवार थे। परन्तु आर्थिक क्षेत्र में परिवर्तन के कारण इन संयुक्त परिवारों का विघटन होने लगा। वर्ण-व्यवस्था भी शिथिल पड़ने लगी। अब जाति का स्थान वर्ग ने वा संयुक्त परिवार के स्थान पर आणविक परिवार पनपने लगे। औद्योगीकरण ने पूंजीपति वर्ग को जन्म दिया जो सामन्तवाद का ही नवीन संस्करण था। औद्योगिक विकास एवं शिक्षा के प्रसार ने मध्यवर्ग को भी जन्म दिया। अंग्रेजों की आर्थिक नीति ने खेतीहर मजदूर को शहरों की ओर उन्मुख किया। हिन्दी के आरम्भिक उपन्यास लेखकों ने अपने उपन्यासों में इन परिवर्तित परिस्थितियों का चित्रण किया। प्रेमचन्द की " गोदान " और प्रसाद की " तितली " में उक्त कथन की पुष्टि मिलती है।

4·1·3· आर्थिक परिस्थितियाँ :-

समाज के संघटन एवं उन्नति का आधार उसकी अर्थ - व्यवस्था पर निर्भर रहता है। सामाजिक परिवर्तनों के साथ-साथ आर्थिक परिवर्तन भी होते रहते हैं। भारतीय समाज में आर्थिक परिवर्तन भी होते रहते हैं। भारतीय समाज में आर्थिक परिवर्तन का प्रक्रिया में तीव्रता अंग्रेजों के आगमन से हुई। अंग्रेजों ने ग्राम संघटन को नष्ट कर देशीय उद्योगों पर कड़ा प्रहार किया। कच्चा माल प्राप्त करने के लिए उन्होंने कृषि व्यवस्था में भी हस्तक्षेप किया।

सस्ती मजदूरी ने अंग्रेजों को भारत में कारखाने खोलने को उत्साहित किया । विज्ञान और औद्योगीकरण ने पूंजीपति वर्ग को जन्म दिया । अकाल के कारण भारतीय कृषि व्यवस्था की स्थिति गिर गई । फलस्वरूप अन्न के लिए हमें विदेशों पर निर्भर रहना पड़ा । इस प्रकार आर्थिक परिवर्तन की प्रक्रिया में किसानों की आर्थिक स्थिति और भी खराब हो गई । भूमि बेचकर किसान मजदूर बन गया । पूंजीपति एवं जमींदार दोनों ही के अत्याचार का शिकार आम आदमी बनता जा रहा था ।

स्वतंन्त्रता प्राप्ति के पश्चात जमींदारी-प्रथा का उन्मूलन सरकार का प्रथम क्रान्तिकारी कदम था । जमींदार किसान को बन्धुआ मजदूर से अधिक नही समझता था । भूमि जोतनेवाले का भूमि पर अधिकार नही था । जमींदार छोटी-छोटी बातों को लेकर भीषण अत्याचार करता था । नागार्जुन ने " बलचनामा " में इसका यथार्थ चित्रण किया है । [1]

जमीन्दार किसान को ऋण देकर उसकी कई पीढ़ियों को अपना ऋणी बना लेते थे । " मैला आँचल " मे जमीन्दार किसानों को अनाज देते है और एक खाली कागज पर अंगूठे का

1· नागार्जुन, बलचनामा, किताब महल - इलाहाबाद 1965 पृ· 3·

निशान ले लेते है, फिर टेढ़ा, दुना और तीन गुना तक वसूल करने लगते है ।[1] स्वतन्त्रता के पश्चात वैधानिक रूप से जमीन्दारी प्रथा को उन्मूलन किया गया ।

वैज्ञानिक प्रगति ने उद्योगों को बढ़ावा दिया । औद्योगिक विकास ने पूँजीवाद को जन्म दिया है । कारखानों, मिलों आदि की स्थापना के फलस्वरूप भारतीय अर्थ-व्यवस्था कृषि के स्थान पर उद्योगों पर केन्द्रित हो गई । बढ़ते हुए पूँजीवाद ने जमीन्दार और किसान के अतिरिक्त मिल मालिक और मजदूर का एक नया वर्ग खडा कर दिया है । औद्योगीकरण ने मध्यवर्ग आदि को भी नये शब्दों से परिभाषित किया है । शोषक और शोषित वर्ग इसी का परिणाम है ।

औद्योगीकरण ने भारतीय समाज में जहाँ एक ओर आर्थिक व्यवस्था को सुदृढ़ किया है वही दूसरी ओर सामान्य जन-जीवन में काफी परिवर्तन उपस्थित कर दिया है । औद्योगीकरण ने भौतिक - वाद को जन्म दिया है । जिसके कारण आपसी सम्बन्धों का निर्धारण

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - मैला आँचल - राजकमल प्रकाशन - दिल्ली - 1976.

अर्थ के परिप्रेक्ष्य में होने लगा है । समाजिक परिप्रेक्ष्य में औद्योगीकरण ने सकारात्मक और नकारात्मक अथवा आशा और निराशा दोनों मूल्यों को समाज में स्थापित किया है ।[1]

अधिकाधिक उद्योगों के विकास के कारण शहरों में आवास की समस्या कठिन होती जा रही है । महानगरों का विकास इसी औद्योगीकरण का प्रभाव है । छोटे-मोटे, मकानों के लिए सुविधा कम व पैसा अधिक देना पड़ता है । बडे औद्योगिक प्रतिष्टानों की स्थापना से मजदूर संघटनों का विकास हुआ है । इन संघटनों के कारण वर्ग संघर्ष और भी तीव्र हो गया है । घटना, हड़ताल, घेराव आदि आज आम बात हो गई है । औद्योगीकरण से पूंजीपतियों और मजदूरों की संख्या में वृद्धि हुई है ।

औद्योगीकरण एवं शिक्षा के प्रसार ने जहाँ एक ओर शासन व्यवस्था को दृढ़ता प्रदान की है वहीं दूसरी ओर शिक्षित बेरोजगारी जैसी भीषण समस्या को जन्म दिया है । अमृतलाल नागर के उपन्यास " अमृत और विष " में तो लगभग सभी युवक बेरोजगार है । अपनी योग्यतानुरूप नौकरी न मिलने पर व्यक्ति विद्रोही बनकर हिंसा और तोड़-फोड़ को जन्म देता है । रमेश, छैलू, लच्छू आदि इसके उदाहरण है । छैलू मंदिरों में आग लगाता है ।

1· डा·हेमेन्द्र पनेरी, स्वातंन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास – मूल्यसंक्रमण, उदयपुर, संघी प्रकाशन, जयपुर 1964 – पृ· 227·

लच्छू तो अन्त तक शिक्षित बेरोजगार का शिकार रहता है। भवानी शंकर भी शिक्षित बेरोजगार है।[1] इससे बड़ी विडम्बना और क्या हो सकती है कि एम॰ए॰ पास युवक चाय की दुकान पर काम करता है।[2]

इसी प्रकार औद्योगीकरण का प्रभाव नगर ही नही गांवों में भी पड़ा है। ग्रामीण युवक भी थोड़ी सी शिक्षा प्राप्त करने के बाद अपने पैतृक धन्धे को अपनाने में संकोच करता है। असके अतिरिक्त ग्रामोण जन-जोवन में मशीनों के प्रति आकर्षण बढ़ता जा रहा है, वे भी सुख-सुविधा व मनोरंजन के साधनों को अधि-काधिक जुटाने का प्रयास करने लगे हैं।

4·1·4· सांस्कृतिक परिस्थितियाँ :-

19 वीं शताब्दी में विज्ञान के प्रसार ने मानवीय विचार-धारा को प्रभावित किया। नवीन मान्यताओं और नवीन मूल्यों ने संस्कृति के महत्व को पुन: प्रमुख विषय बना दिया। अत: जाति, समूह, रीति-रिवाज, विचारधारा एवं जीवन पद्धतियों में परिवर्तन

1· अमृतलाल नागर, अमृत और विष, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद - सं॰1971 - पृ॰ 72·

2· - वही - पृ॰ 256·

परिलक्षित हुआ ।[1] औद्योगिक क्रान्ति टूटती हुई सामन्त व्यवस्था एवं वैज्ञानिक प्रगति आदि सांस्कृतिक परिवर्तन का कारण बने । प्राचीनकाल में तथा मध्ययुग में बिना रहन-सहन जीवन-दृष्टिकोण बदले लोगों का आर्थिक परिवर्तन होता था । लेकिन आधुनिक भारत में बिना आधुनिक विश्वास बदले लोगों के रहन-सहन तथा जीवन दृष्टिकोण में महान् परिवर्तन आ गया ।[2]

परम्परागत भारतीय संस्कृति का प्रमुख आधार धर्म रहा है । वर्तमान भौतिकवादी संस्कृति आध्यात्म और धर्म प्रधान सांस्कृतिक मूल्यों के ह्वास का कारण बन रही है । आध्यात्म का स्थान भौतिक जीवन दर्शन ले रहा है । ईश्वर की सत्ता को सन्देह की दृष्टि से देखा जाने लगा है । भौतिक संस्कृति ने व्यक्तिवाद मार्क्सवाद एवं मनोविश्लेषणवाद को जन्म दिया ।

वैज्ञानिक उन्नति से धार्मिक अनुष्टानों एवं संस्कारों के प्रति समाज में अनास्था बढ़ी है । " झूठा सच " में जब पण्डित मुण्डन-संस्कार की वैज्ञानिकता पर बल देता है तो मर्सो कहती है -- " दुनिया भर में मुण्डन नही होता, वहाँ सबके

---

1. डा. हेमेन्द्र पानेरी - स्वतंन्त्रयोत्तर हिन्दी उपन्यास - मूल्य संक्रमण - संघी प्रकाशन, जयपुर 1964 - पृ.104.
2. हुमायू कबीर - पृ. 18.

दिमागों में गर्मी भरी रहती है, मेरा ही मुण्डन कभी नहीं हुआ । मेरे दिमाग में कौन गर्मी भरी है ।"[1] धर्म और उससे सम्बन्धित प्राचीन मान्यताएँ निरर्थक समझी जाने लगी है । "अमृत और विष का रमेश कहता है -- "धर्म और मज़हब राजनीति को जिस तरह पीछे घसीट रहे है, यह आगे आने वाली दुनिया के लिए अच्छी बात नहीं है ।"[2]

आधुनिक मूल्य परिवर्तन की प्रक्रिया से पुरुष की विचार - धारा प्रभावित हुई है । परम्परागत जीर्ण-शीर्ण समाज की "दरार पड़ी दीवार । यह गिरेगी । इसे गिराने दो । यह समाज कब तक टिका रहेगा ।"[3] परम्परागत नैतिकता के बन्धन ढीले पड़ने से समाज में पाप पुण्य की परिभाषा भी बदल गई है । विवाह, सतीत्व, नैतिकता, सदाचार, एकनिष्ठ प्रेम आदि मध्ययुगीन पूँजीवादी एवं सामंतवादी समाज के सांस्कृतिक मूल्य रहे है । किन्तु आज के जीवन में और उसी के अनुरूप उपन्यासों में भी विवाह का विरोध, स्वच्छन्द प्रेम, अवैध काम-सम्बन्धों को मान्यता मिलने लगी है ।

---

1. यशपाल - झूठासच [द्वितीय खण्ड], विप्लव कार्यालय, लखनऊ, 1972 - चतुर्थ संस्करण - पृ. 544.
2. अमृतलाल नागर, अमृत और विष, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद - 1971 - पृ. 5, 6.
3. फणीश्वरनाथ रेणु - मैला आँचल - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1973 - पृ. 223.

" गुनाहों की देवता " का डा॰ शुक्ला यह स्वीकार करता है कि — " यह सचमुच, जाति, विवाह सभी परम्परायें बहुत बुरी हैं। बुरी तरह सड़ गई हैं। इन्हें तो काट फेंकना चाहिए।"[1] इस प्रकार युग के अनुकूल आदर्श बदलते हैं और उसकी कसौटियाँ भी बदल जाती हैं।

प्रथा-परम्परायें भारतीय संस्कृति की अभिन्न अंग है। सम्पूर्ण जीवन में व्यवहार का निर्धारण प्रथा-परम्पराओं ही करती हैं किन्तु वर्तमान परिस्थितियों में ये परम्परायें अव्यवहारिक हो गई है। " बून्द और समुद्र " की वन कन्या कहती है — " हमारे बहुत से रस्म, रिवाज बिलकुल बेमानी, एक जबर्दस्ती की निष्ठा लिए हुए चले आते हैं। शादी हो गई हो, तीज त्योहार हो, सब इस कदर कीमति बना दिए गए है कि उनमें बरतने वाला आदमी हरगिज किसी किस्म की नैतिक सुन्दरता को अपनाने लायक रह ही नहीं जायेगा।"[2] उखड़े हुए लोग " के सूरज के शब्दों में बौद्धिकता के प्रसार ने हमारे सभी प्रचारी आदर्शों की जड़ों को हिला दिया है।[3] अंधविश्वास एवं रूढ़ियों से मुक्त प्राप्त कर मानव तर्क का आश्रय ग्रहण कर रहा है।

1· धर्मवीर भारती, गुनाहों का देवता – साहित्य भवन, इलाहाबाद – 1963 – पृ॰ 278·

2· अमृतलाल नागर, बून्द और समुद्र – किताब महल – इलाहाबाद 1964 – पृ॰ 133·

3· राजेन्द्र यादव, उखड़े हुए लोग, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली –1970 पृ॰ – 229·

इस प्रकार स्वतंन्त्रता के पश्चात सामाजिक परिवर्तन का कारण पाश्चात्यीकरण, शहरीकरण, औधोगीकरण, यन्त्रीकरण आदि का विकास एवं प्रसार रहा है। औधोगीकरण ने औधोगिक बस्तियों का निर्माण कर क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित किए हैं। शहरीकरण ने सामाजिक सम्बन्धों को प्रभावित किया है।

4·2· उपन्यासों की प्रवृत्तियाँ :-

विश्व उपन्यास की तुलना में हिन्दी उपन्यास की परम्परा बहुत छोटी और स्वस्थ परम्परा है। 19 वीं शताब्दी के आरम्भ में विभिन्न धार्मिक एवं राजनीतिक कारणों से समाज में हो रहे विभिन्न परिवर्तनों एवं जड़ व आस्थाहीन सामाजिक, धार्मिक परम्परा का विरोध होने से नई परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई। इन परिस्थितियों का प्रभाव हिन्दी उपन्यास पर पड़ा। "पश्चिमी सभ्यता के प्रसार एवं विभिन्न सुधारवादी आन्दोलनों के कारण हिन्दी उपन्यास का प्रतिपाद्य विषय बदल गया था। उन्हीं उपन्यास लेखक भारतीय संस्कृति को पाश्चात्य संस्कृति की अपेक्षा अधिक उच्च दिखलाने की ओर प्रवृत्त हुए। प्रेमचन्द तक पहुँचते-पहुँचते हिन्दी उपन्यास में काफी परिवर्तन आ चुका था। इस युग में वर्ग संघर्ष की भावना तो विधमान थी किन्तु उसे किसी

पात्र के द्वारा न दिखाकर राजनीतिक चर्चा में इसका समावेश किया गया था । इस युग के लेखक राजनीतिक और सामाजिक दृष्टि से जागरूक थे । सुधारवादी प्रवृत्ति के कारण ये समाज का विकास तो चाहते थे किन्तु उग्रवादिता के नाम पर क्रान्ति नहीं चाहते थे ।" [1]

प्रेमचन्द का युग राजनीतिक उथल-पुथल का युग था । प्रेमचन्द परिस्थिति की देन थे । सामन्ती युग की समाप्ति, हिन्दू-मुस्लिम झगड़े, कांग्रेस का राजनीतिक संघर्ष तथा गांधी का अहिंसावाद प्रेमचन्द के उपन्यासों में स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं । [2]

प्रेमचन्द युग के बाद उपन्यासों में और भी अधिक गहराई आई जीवन के प्रति दृष्टिकोण और भी अधिक विस्तृत हो गया । इस युग के प्रमुख लेखक यशपाल, जैनेन्द्र, इलाचन्द जोशी, अज्ञेय, प्रसाद आदि हैं । ये सभी लेखक समझौते के स्थान पर क्रान्तिकारी हो उठे । इनके उपन्यासों में कहीं निम्न मध्यवर्ग को चित्रित किया गया है (जैनेन्द्र, अश्क) तो कहीं व्यक्तिवादी दृष्टिकोण अपनाया

---

1. डॉ. कुंवरपाल सिंह - हिन्दी उपन्यास, सामाजिक चेतना - राजकमल प्रकाशन - दिल्ली - पृ. 25.
2. डॉ. त्रिभुवन सिंह - हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद - हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी - 1973 - पृ. 184.

गया है । [अज्ञेय] मनोविश्लेषण-शास्त्र के प्रभाव से कुंठित मनःस्थिति का चित्रण अधिक किया जाने लगा । श्रमजीवी-वर्ग पहली बार इस काल में ही उभरकर सामने आया । इन पर साम्यवाद, फ्रायड आदि का प्रभाव अधिक पड़ा - यशपाल, रांगेयराघव, फणीश्वरनाथ रेणु, देवेन्द्र सत्यार्थी, नागार्जुन, भैरव प्रसाद गुप्त आदि इससे अधिक प्रभावित हुए ।

साहित्य में यह परिवर्तन नए सम्बन्धों तथा समझौते के स्थान पर विद्रोह के कारण आया था । इन कारणों को जन्म देनेवाली तत्कालीन सामाजिक तथा आर्थिक विषमताएँ थीं । सामाजिक क्षेत्र में व्यक्ति घर के दायरे को तोड़कर राजनीतिक प्रक्रियाओं का निकष बन गया था ।[1] नवीन जीवन-पद्धति ने समाज को दो विपरीत दिशाओं में बाँट दिया था । प्रेम-चन्दोत्तर युग के उपन्यासकार व्यक्तिवादी व समष्टिवादी दोनों रूपों में पहचाने जाते हैं । उपन्यास प्रवृत्ति के आधार पर विभाजित हो गया ।

उपन्यास का प्रवृत्ति के आधार पर विभाजन अथवा वर्गीकरण भिन्न लेखकों ने विभिन्न प्रकार से किया है । अब तक हिन्दी उपन्यास का विश्लेषण तत्वगत, विषयगत व शैलीगत

1· डॉ· कुंवरपाल सिंह - हिन्दी उपन्यास, सामाजिक चेतना - राजकमल प्रकाशन - दिल्ली - पृ· 27·

विशेषताओं के आधार पर हुआ है ।[1] विषय के आधार पर उपन्यासों को रोमांटिक, ऐतिहासिक, जासूसी, सामाजिक, पौराणिक आदि भेद-प्रभेद किए गए हैं । तत्व के आधार उपन्यास के उद्देश्य को परिलक्षित किया गया है और शैली के आधार पर आदर्शवाद, यथार्थवाद, प्रकृतिवाद, ऐतिहासिक यथार्थवाद आदि को परिधि में निबद्ध करने का प्रयास किया गया है । डा॰कान्ति वर्मा ने उपर्युक्त वर्गीकरण को अस्वीकार करते हुए उपन्यास का वर्गीकरण घटना केन्द्रित, व्यक्ति और अहं केन्द्रित, समाज एवं वातावरण केन्द्रित, विशिष्ट दर्शन एवं चिन्ताधारा केन्द्रित दृष्टिकोण के आधार पर किया है ।[2] डा॰सुषमा धावन ने प्रवृत्तियों का निर्धारण कृति में व्यक्त लेखक की मूलभूत-चेतना तथा जीवन दर्शन के आधार पर किया गया है । इस दृष्टि से उन्होंने औपन्यासिक प्रवृत्ति को पाँच आधारों पर वर्गीकृत किया है - सामाजिक उपन्यास, व्यक्ति - वादी, मनोविश्लेषणवादी, समाजवादी और ऐतिहासिक ।

1· डॉ॰ सुषमा धावन, हिन्दी उपन्यास - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - 1961 - पृ॰ - भूमिका से ।

2· डा॰ कान्ति वर्मा - स्वतन्त्र्योत्त हिन्दी उपन्यास - रामचन्द्र एण्ड कंपनी - दिल्ली - 1966 - पृ॰ 35·

डॉ॰शशि भूषण सिंहल ने उपन्यास लेखन की मूल दो दिशाओं को माना है — एक दिशा है पात्रों के बहिर्जगत या सामाजिक यथार्थ की ओर दूसरी है पात्रों के अंतर्गत या मानसिक यथार्थ को । इन दोनों दिशाओं के आधार पर उन्होंने उपन्यास की दो प्रवृत्तियाँ मानी है — एक सामाजिक तथा दूसरी मनो - वैज्ञानिक । ऐतिहासिक प्रवृत्ति को उन्होंने अलग से लिया है ।[1]

इस प्रकार उपर्युक्त वर्गीकरण के आधार पर उपन्यास की प्रमुख प्रवृत्तियाँ है — सामाजिक यथार्थवादी, व्यक्तिवादी, मनोविश्लेषणवादी, आँचलिक, व्यंग्यात्मक तथा ऐतिहासिक ।

4·2·1· सामाजिक यथार्थवादी उपन्यास :-

प्रेमचन्द हिन्दी के सबसे पहले सामाजिक यथार्थवादी उपन्यासकार है । उनके पूर्ववर्ती उपन्यासकार यथार्थ को गहराई से नही पकड़ सके और शिल्प भी नही सवाँर सके । प्रेमचन्द ने यथार्थ को पहचाना और मुख्यत: उसे ही अभिव्यक्ति देना अपने उपन्यास का लक्ष्य समझा । यथार्थ क्या है ? यथार्थ व्यक्ति का भी होता है, समाज का भी । अर्थात् एक पूरा-का-पूरा समाज

1· डा· शशि भूषण सिंहल - हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ (भूमिका) विनोद पुस्तक मन्दिर - आगरा - 1970·

एक विशेष ऐतिहासिक परिधि में एक विशेष प्रकार की बनावट में जीता है, उसकी कुछ सामान्य विशेषताएँ होती है, कुछ सामान्य प्रश्न होते है । सामान्य संघर्ष होते है, सामान्य जीवन मूल्य होते है, सामान्य सांस्कृतिक धरातल होता है । सामान्य विश्वास, सामान्य महत्ताएँ और हीनताएँ होती हैं । व्यक्ति इस समाज का या अखिल सृष्टि का एक सदस्य है, अतः उस में बहुत सी सामान्यताएँ यानी कि एकताएँ प्राप्त होते हैं, किन्तु व्यक्ति-व्यक्ति के अपने भी कुछ सत्य होते है जिन्हें वही जीता है । सामाजिक जीवन का, इन व्यक्ति सत्यों की विशेष परवाह नहीं होती, किन्तु व्यक्ति का जीवन इन सत्यों के आधार पर बहुत कुछ बनाता बिगड़ता है, अर्थात् व्यक्ति के जीवन-निर्माण में उसके निजी सत्यों का बड़ा हाथ होता है । व्यक्ति समाज-विशेष का प्रतिनिधि है, उसके अन्तर्मन में उन्तर्निहित उसकी विशेषताओं को, उसके बाहरी व्यक्तित्व के भीतर निहित उसके भीतरी व्यक्तित्व देखना भी साहित्यकार के लिए अनिवार्य होता है । तभी यथार्थ का व्यापक और सच्चा स्वरूप प्रस्तुत किया जा सकता है । इसी को प्रेमचन्द ने एकता में अनेकता और अनेकता में एकता कहा है । प्रेमचन्द ने किसी भी वाद की एकांगिकता से पीड़ित न होकर अपने पूरे युग और समाज को उसकी समस्त जटिलता वास्तविकता के साथ पकड़ लेना चाहते थे । अर्थात प्रेमचन्द ने यथार्थ के दोनों आयामों - सामाजिक और व्यक्तिगत को उभारा । इसलिए यथार्थ निरूपण के क्षेत्र में प्रेमचन्द का महत्त्व केवल ऐतिहासिक दृष्टि से नही है, स्थायी साहित्यिक मूल्यों की दृष्टि से भी है ।

जब हम कहते हैं कि प्रेमचन्द ने अपने युग और समाज को सच्चाई से देखा परखा है तो हमें उस युग और समाज के बुनियादी सत्यों की ओर दृष्टिपात कर लेना चाहिए जो जीवन की बनावट के मूल में निहित थे। प्रेमचन्द काउउपन्यास लेखनकाल वैसा तो उर्दू में सन् 1905 से ही शुरू हुआ होता है किन्तु हिन्दी में सन् 1918 से "सेवासदन" की प्रकाशन काल से प्रारम्भ होता है, बन्त होता है 1936 में। उनकी मौत के साथ। यह युग राष्ट्रीय और सामाजिक उथल-पुथल का युग था। वह संक्रान्तिकाल था। दो प्रकार की संस्कृतियों का, दो प्रकार के मूल्यों का। साथ-ही-साथ संघर्षकाल था, साम्राज्यवाद से राष्ट्रवाद का सामंती सभ्यता से महाजनी सभ्यता का, सामन्ती और महाजनी दोनों सभ्यताओं से शोषित किसानों और मजदूरों की शक्तियों का। राजनीतिक क्षेत्र में उथल पुथल मची थी, पराधीन भारत साम्राज्य -वादी ब्रिटिश राज्य से मुक्त होने के लिए तड़प रहा था।

सामाजिक क्षेत्र में कई वर्गों की आपस में टकराहट हो रही थी। सामन्तवादी समाज और महाजनी समाज की आपस में टकराहट तो थी ही, साथ ही सामन्तों यानी जमीनदारों और किसानों पूंजीपतियों और मिलमालिकों की आपस में टक -राहट हो रही थी। पूंजीवाद या महाजनी सभ्यता उदित हो रही थी, जमींदारी प्रथा भी देश में थी ही। महाजनी सभ्यता सामन्ती सभ्यता के मूल्यों को निस्सार सिद्ध कर रही थी।

जमीन्दारी प्रथा वास्तव में सामन्ती सभ्यता का ही एक अंग है। महाजनी सभ्यता के नाते शहरों में कल-कारखाने कायम हो रहे थे और सामन्ती रूढ़ियां धरमाराकार टूटने के हो रही थी। जमीन्दार मध्यस्थ था यानी वह किसानों से भूमि कर लेता था और सरकार को भूमिकर देता था। इस प्रकार किसानों से इतना लगान लेता था कि वह स्वयं भी मौज कर सके और सरकार को भी दे सके। इसके अलावा धर्म भी उनका शोषण कर रहा था। वे धर्म भीरु थे और धर्म अपनी मानवीय महत्ता खोकर गरीब इन्सान को शिकांजे में जकड़नेवाला अंधविश्वास और रूढ़ी-मात्र रह गया था। इसी धर्म ने किसान को इतना सहिष्णु और कुण्ठित बना दिया था कि वे हर जुल्म को अपने आप का फल मान लेते थे और जमींदार को, पुरोहित को शोषक प्रथाओं को धर्म के नाम पर सिर माथे ओढ़े हुए थे। पंडित का धर्म किसानों का खून चूसने का धर्म था, इसीलिए "गोदान" में पं॰दातादीन जीवन भर तो होरी का खून चूसता ही है, मरने पर भी गोदान कराकर धनिया की रही-सही कमाई चूस लेता है और वह भी धर्म के नाम पर। किसान अपनी पीडाओं से परेशान हो कर "मजूर" होते जा रहे थे। गोदान का गोबर इसी दिशा की ओर संकेत करता है।

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में तत्कालीन भारत के प्राय: सभी वर्गों की सभी प्रकार की समस्याएं उठायी है । मध्यवर्ग और निम्नवर्ग तो अपने समस्त परिवेश के साथ अंकित है । जमींदार और पूंजोपति जैसे अभिजात वर्ग या उच्चवर्ग तथा किसान और मजदूर जैसे निम्नवर्ग के अतिरिक्त एक वर्ग और था वह था मध्यवर्ग । मध्यवर्ग की अपनी समस्याएँ थी । वह उच्चवर्ग के स्तर पर आने का स्वप्न कल्पो थी परन्तु उसका आर्थिक धरातल निम्नवर्ग से बहुत ऊंचा नही था । उच्चवर्ग के पास अपनी इच्छाएं पूरी करने के पर्याप्त साधन थे, उसके पास शक्ति थी, प्रभुता थी, उच्च उसका जीवनस्तर बहुत ऊँचा था । निम्नवर्ग की आमदनी मध्यवर्ग की अपेक्षा कम थी, किन्तु एक तो निम्नवर्गीय परिवार के सारे सदस्य औरत हो या मर्द अर्थ-उपार्जन में भाग लेते हैं । दूसरे उनकी आकाक्षाएं और आवश्यकताएँ सीमित होती हैं । अतएव वे अपनी गरीबो की स्थिति में भी अधिक सन्तुष्ट और मनसा रुग्ण नही दिखाई पड़ते । किन्तु मध्यवर्गीय परिवारों में कमानेवाले पुरुष होते है, पुरुषों में भी सभी नही कमाते । जिसे नौकरी मिल जाती है वही कमाता है, शेष लम्बा परिवार उसकी आमदानी पर निर्भर रहता है । वह न तो मजदूरों की तरह अपने संघटन बनकर कोई क्रान्ति कर पाता है और न उच्चवर्गीय सुख-सुविधा के स्तर तक पहुंच पाता है । अतएव वह कुण्ठा का शिकार होता है, मानसिक रोगों से ग्रस्त होता है । वह चाहे या न चाहे अपने सामाजिक मर्यादा सुरक्षित रखने के लिए प्रचलित सड़ी-गली सामाजिक, धार्मिक मान्यताओं को उसे ओढ़ना पड़ता है ।

इसीलिए धर्म परम्परा और नारी-पुरुष सम्बन्धों से सम्बन्धित जीवन मूल्यों के क्षेत्र में जितनी घुटन मध्यवर्ग को है उतनी कहीं नहीं । दहेज समस्या, विधवा-समस्या, विवाह-समस्या, परिवारों में नारी की दयनीय स्थिति की समस्या, शान शौकान की समस्या आदि अनेक समस्याएँ मध्यवर्ग को विशेष रूप से पीडित कर रही हैं । वेश्या-जीवन को समस्या को भी मध्यवर्ग की ही एक समस्या मान सकते हैं । इन समस्याओं को हम प्रेमचन्द के सभी उपन्यासों में देख सकते हैं, किन्तु उनके "सेवासदन", "निर्मला" और "गबन" में बडी तीव्रता से उद्घाटित होते हुए पाते हैं।

सामाजिक यथार्थ की परम्परा में आनेवाले इस युग के अन्य उल्लेखनीय उपन्यास हैं—

जयशंकर प्रसाद	-	कंकाल, तितली
मन्नन द्विवेदी	-	कल्याणी
दुर्गाप्रसाद खत्री	-	लाल पंजा
मदारीलाल गुप्त	-	सखाराम
पांडेय बेचन शर्मा उग्र	-	घंटा, दिल्ली का दलाल, बुधुआ की बेटी शराबी
चतुरसेन शास्त्री	-	हृदय की प्यास, बहते आँसू
ऋषभचरण जैन	-	भाई, मंदिर दीप, सत्याग्रह
वृन्दावनलाल वर्मा	-	लगन, संगम, प्रत्यागत, कुंडलीचक्र, प्रेम की भेंट

राधिकारमण प्रसाद सिंह	-	रामरहीम
प्रतापनारायण श्रीवास्तव	-	विध, विजय
चंडी प्रसाद हृदयेश	-	मनोरमा
सियारामशरण गुप्त	-	गोद, अन्तिम आकांक्षा

कंकाल :-

कंकाल प्रसाद और उनके काल कृतियों के बीच यथार्थ का एक नया आयाम लेकर उभारता है । यह शुद्ध यथार्थवादी कृति है जिस में बिना किसी महत्ता या आदर्शों के आरोपण के समाज की विषमता को तटस्थ भाव से चित्रित किया गया है ।

तितली :-

भारतीय दृष्टि और कृषि-सभ्यता की गहरी पहचान का उपन्यास है । भारतीय दृष्टि भारतीय दाम्पत्य जीवन की कुछ बुनियादि शक्तियों को उभारती है और ऐसे करने के लिए उसके समा - नान्तर पाश्चात्य पद्धति के दाम्पत्य जीवन का परिप्रेक्ष्य उपस्थित करती है । उपन्यास की यात्रा कृषि-यथार्थ के बीच से होती है, इसलिए लेखक कृषि सम्बन्धी अनेक समस्याओं और घटनाओं की टकराहटों का ताप उभारता चलता है ।

रामरहीम :-

राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह कृत राम रहीम उपन्यास इस युग का एक चर्चित उपन्यास है । इस के कथ्य को समझने के लिए भूमिका में दिया गया लेखनीय वक्तव्य उपयोगी है -- "मैं ने रोजमर्रे की एक दिलचस्पी कहानी का एक टेक लेकर धर्म और समाज के तमाम कच्चे चिट्ठे खोलकर रख देने की कोशिश की है । मैं ने भारत वर्ष के इस युग के अत्याचार को, इस युग की पुकार को, दो जीती-जागती स्त्रियों के जीवन पर प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । यहाँ आध्यात्म के साये में श्रृंगार है, प्रेम का दमन थामे दर्शन है । इसीलिए वास्तविकता की सदी जमीन पर नैतिकता की किनारी टँकी है -- यथार्थवाद के मौसम में आदर्शवाद के छीटे हैं ।

प्रेमचन्द के बाद और स्वतंन्त्रता से पहले के सामाजिक उपन्यासों में दादा कामरेड और बिल्लेसुर बकरीरा महत्वपूर्ण है ।

दादा कामरेड :-

यशपाल के दादा कामरेड में उन्होंने नयी परिस्थितियों में करवटें बदलती, कसमसाती ऐतिहासिक चेतना को सच्चाई से प्रस्तुत करना चाहा है, स्थापित और उसे जगह-जगह से तोड़कर उभरती मूल्य चेतनाओं और मान्यताओं के द्वन्द्व को चित्रित किया है । अपनी ओर से कोई समाधान नहीं लादा है, केवल दिशा की ओर निर्देश कर दिया है ।

बिल्लेसुर बकरीहा :-

निराला कृत बिल्लेसुर बकरीहा लेखक के शब्दों में एक प्रगतिशील साहित्य का नमूना है । प्रगतिशील साहित्य का अर्थ है यथार्थवादी साहित्य । छायावादी कवि, लेखक जहाँ कहीं प्रगतिवाद या यथार्थवाद की ओर झुके है । अपनी रूमानी दृष्टि और भाषा नही छोड सके है किन्तु निराला की बात अलग है । बिल्लेसुर बकरीहा में निराला ने गाँव के जीवन की समस्त लघुता, छल-छन्द और विवशताओं के जीवन्त परिवेश में बिल्लेसुर की यथार्थ जीवन कथा को चित्रित किया है ।

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय समाज में तीव्र गति से परिवर्तन हुए हैं । औद्योगिकरण, शिक्षा का प्रसार, विभिन्न पंच-वर्षीय योजनाओं तथा पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार से समाज में एक ओर प्रगति हुई है तो दूसरी ओर उसके जीवन मूल्यों में परि - वर्तन आया है । औद्योगीकरण के प्रभाव एवं पश्चिम को व्यक्तिवादी प्रणाली के अनुरूप मनुष्य की स्थिति उसकी आय से निर्धारित हुई है । फलस्वरूप परिवर्तित सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों में संयुक्त-परिवारों का विघटन हुआ है । और उपन्यासों में एकाकी परिवारों का चित्रण होने लगा । औद्योगीकरण शिक्षा तथा यातायात की सुविधा ने परिवार को सीमित कर दिया है ।

परिवार का ढांचा परम्परागत परिवारों से सर्वथा भिन्न होता जा रहा है। आन्तरिक आत्मीयता जो संयुक्त परिवार का आधार थी वह समाप्त होती जा रही है। पिता के कहने पर ही अलग घर बसाने की बात सोची जाने लगी है।

परिवर्तन के इस युग में पारम्परिक मूल्यों के प्रति मोह एवं नवीन मूल्यों के प्रति सहज स्वाभाविक आकर्षण एक साथ बना हुआ है। समाज द्वारा स्वीकृत पति-पत्नी सम्बन्धों के परम्परागत स्वरूप में स्वावलम्बन की भावना एवं नारी शिक्षा के परिवर्तन उपस्थित कर दिये हैं। स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को व्यापक मानवीय आधार पर ग्रहण किया जाने लगा है। इसके परिणाम-स्वरूप सतीत्व व पातिव्रत्य भावना निष्प्राण होने लगी है। आत्म निर्भर नारी ने परिवार के सीमित दायरे को तोड़ दिया है। स्त्री आज केवल गृहिणी-मात्र नहीं है वरन् समाज के अन्य कई महत्वपूर्ण पदों पर कार्य कर रही है। आर्थिक स्वतन्त्रता ने उसके व्यक्तित्व को विभिन्न रूपों में विकसित किया है।

आधुनिक समाज-व्यवस्था की प्रमुख विशेषता वर्ग-भावना है। वर्ग चेतना सामाजिक परिवर्तन का प्रमुख साधन है। वर्तमान व्यवस्था में उच्च और निम्न वर्ग का संघर्ष मुख्यत: पूंजीवाद और समाजवाद का संघर्ष बन गया है। औद्योगिकरण ने जातिगत बन्धन शिथिल कर दिये हैं किन्तु इनका स्थान वर्ग-बोध ने ले लिया है।

आधुनिक युग में व्यक्ति की सामाजिक परिस्थिति का निर्णय जाति से न लिया जाकर उसकी आर्थिक परिस्थिति से लिया जाने लगा है । यंत्रकोण जन्य संस्कृति में पूंजीपति वर्ग अधिकाधिक विकसित हो रहा है और दूसरी ओर निम्न-वर्ग का शोषण बढ़ता जा रहा है । अधिकारों के प्रति सजगता एवं शिक्षा के प्रसार से निम्न-वर्ग में सामाजिक चेतना जागृत हो रही है । सामाजिक चेतना ने यूनियन का महत्व बढ़ा दिया है ।

स्वातन्त्र्योत्तर काल में निम्नलिखित उपन्यासकार प्रधान रूप से इस दिशा में योग देते हुए ज्ञात होते हैं । किन्तु मूलत: इसी धारा को न स्वीकारते हुए भी इसमें योग देने वाले अनेक उपन्यासकार हैं ।

यशपाल	- मनुष्य के रूप
उपेन्द्रनाथ अश्क	- गिरती दीवारें
रांगेयराघव	- मुर्दों का टीला
अमृतलाल नागर	- बून्द और समुद्र
भैरवप्रसाद गुप्त	- गंगा मैया

मनुष्य के रूप :-

इस उपन्यास में यशपाल ने प्रेम को केन्द्र-बिन्दु बनाकर मनुष्य के अनेक रूपों को उद्घाटित किया है। यशपाल प्रेम को कोई चिरन्तन स्थिर भाव नही मानते वरन् वह एक आचरण है, जो व्यक्तियों को वर्गों के सामाजिक आर्थिक ढाँचों के अनुरूप बदलता चलता है। सभी उपन्यासों को तरह इसमें भी यशपाल का समाजवादी दृष्टिकोण दो तरह से व्यक्त है, एक तो व्यक्तियों और वर्गों के विश्लेषण के रूप में और दूसरा समाजवादी संस्थाओं तथा व्यक्तियों के आचरण और विचारों के खुलेपन, तथा जीवन्तता तथा मानवता को अभिव्यक्ति के रूप में।

गिरती दीवारें :-

यह उपेन्द्रनाथ "अश्क" का एक मध्यवर्गीय विषयक उपन्यास है किन्तु कथा विन्यास की दृष्टि से बहुत हो फैले हुए, और यथार्थ की दृष्टि से बहुत उथरो हैं। कथा कहने का अनुपात हो नहीं दिखाई पड़ता 2 लेखक जब किसी पात्र को प्रस्तुत करता है तो इकट्ठे उसके दादा-परदादा से लेकर उस तक की कहानी कह जाता है। मध्यवर्ग की समस्याएँ जरूर उभरती है किन्तु वे व्यक्ति के गहन मन:सत्यों और संश्लिष्ट सामाजिक सम्बन्धों के बोध से यात्रा नहीं कर पातीं। बल्कि मन के हलके-फुलके रूमानी द्वन्द्वों को स्पर्श करती हुई बनी-बनायी राहों से गुजरती हैं।

मुर्दों का टीला :-

रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यास " मुर्दों का टीला " में सामाजिक जनचेतना का चित्र मिलता है । इसमें मोहन जोदड़ों की संस्कृति और सभ्यता को उपन्यास का आधार बनाया गया है । शोषक व्यवस्था के जन-जीवन के संघर्ष को बताया गया है ।

बूंद और समुद्र :-

अमृतलाल नागर के इस उपन्यास में स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय जीवन की विसंगतियों, समस्याओं और सम्बन्धों को व्यक्त करने के लिए लखनऊ के एक मुहल्ले को कथा-भूमि बनाकर चला है । लेखक ने आज के मनुष्य के भीतर उठते हुए भागावत, विचारगत परिवर्तनों, संक्रान्त मूल्यों और सम्बन्धों, राजनीतिक दलों की विभीषिकाओं से त्रस्त होती हुई मानवता को पहचाना है । उन्होंने समाज और व्यक्ति दोनों की विसंगतियों को तीव्र यथार्थवादी दृष्टि से देखा है, और समाज के विविध चरित्रों को और उनके सम्बन्धों को पहचाना है । इस प्रकार इस में आनेवाले सारे पात्र अपनी-अपनी सार्थकता प्रमाणित करते हैं ।

गंगा मैया :-

भैरव प्रसाद गुप्त की इस उपन्यास लेखक की समाज - वादी चेतना और समाजवादी यूरोपिया का मिश्रित रूप चित्रित करता है । मटरू गाँव का एक निर्भीक किसान है जो जमीन्दार और पुलिस के मिश्रित अत्याचारों को जीवन के साथ चुनौती देता हुआ अपनी जमीन पर डटा रहता है । दूसरी ओर गोपी है -- दुखी किसान - परिवार का एक सदस्य । उसकी पत्नी मर चुकी है, उसके माता-पिता बूढ़े हैं और एक विधवा भाभी है । उसे जेल काटनी पड़ती है । वहाँ मटरू से उसकी दोस्ती होती है । जमीन्दार के अत्याचारों, घातक रीति-रिवाजों से लड़ते हुए ये दोनों किसान चलते हैं । कालन्तर में मटरू के सहयोग से, सबके विरोध करने के बावजूद गोपी अपनी भाभी से ब्याह कर लेता है ।

4·2·2· व्यक्तिवादी उपन्यास :-

व्यक्तिवादी उपन्यास सामाजिक और मनोविश्लेषण-वादी उपन्यासों के बीच की कड़ी है । स्वतन्त्रता के बाद हिन्दी उपन्यासों में व्यक्तिवादी का तीव्र प्रसार हुआ है । व्यक्तिवादी उपन्यासों के पात्र अपना प्रबल व्यक्तित्व रखते है । इन उपन्यासों में व्यक्ति के जीवन की गतिविधियों मानसिक संघर्षों एवं बौद्धिक ऊहा-पोहों का चित्रण किया जाता है ।

व्यक्तिवादी उपन्यासों के लक्षणों का उल्लेख करते हुए नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है -- "जिसमें व्यक्तिगत जीवन घटना-व्यक्तिगत चरित्र, व्यक्तिगत जीवन-दर्शन, व्यक्तिगत-मनोविज्ञान, या व्यक्तिगत जीवन समस्या का निरूपण या निर्देश सर्वोपरि रहता है।"[1]

डा॰ कान्तिवर्मा के अनुसार "व्यक्ति और अहं केन्द्रित उपन्यासों के अन्तर्गत वे सभी उपन्यास लिए जा सकते है, जिनमें व्यक्ति को केन्द्र मानकर औपन्यासिकता का सृजन किया गया हो, मनोविश्लेषणात्मक, व्यक्तिपरक अहं निष्ट, आत्म केन्द्रित, व्यक्ति सापेक्ष, अंतश्चेतनावादी सभी उपन्यास इस वर्ग के अंतर्गत आजायेंगे। ऐसे उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ का पक्ष पृष्ठभूमि मात्र के लिए होता है। उस कैनवेस में केवल एक व्यक्ति का चित्र उभरता है, और उपन्यास का समग्र प्रभाव उसी व्यक्ति को रूपरेखा मानस पर छोड जाता है। व्यक्तिवादी उपन्यास के प्रायः सभी पात्र सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह की भावना रखते है।"[2]

---

1. नन्ददुलारे वाजपेयी - नया साहित्य नये प्रश्न, विद्या मन्दिर वारणासी - 1949 - पृ॰ 184॰
2. डा॰ कान्ति वर्मा - स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास -- रामचन्द्र एण्ड कम्पनी - दिल्ली - 1966 - पृ॰ 36॰

डा॰ सुषमा धवन ने व्यक्तिवादी उपन्यासों के सम्बन्ध में लिखा है -- "व्यक्तिवादी उपन्यास के प्राय: सभी प्रधान पात्र सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह की भावना रखते हैं। प्रेम तथा विवाह के प्रति उनका दृष्टिकोण परम्परावादी न होकर वैयक्तिक स्वतन्त्रता के विचारों से प्रभावित है। इन पात्रों के जीवन में सबसे जटिल समस्या प्रेम तथा विवाह की है। पाप तथा पुण्य में अन्तर दिखाने की है, नैतिकता तथा अनैतिकता को नवीन कसौटी पर परखने की है, सामाजिक बन्धनों तथा वैयक्तिक आकांक्षाओं के मूल्य को आंकने की है। इस सन्दर्भ में वे अपने विकास-पथ को प्रशस्त करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं।" [1]

व्यक्ति के विकास में समाज का महत्वपूर्ण योगदान है। उसके स्वयं के विचार, मानसिकता तथा जीवन के प्रति दृष्टिकोण सामाजिक परिवर्तनों के साथ-साथ परिवर्तित होते रहते है। व्यक्तिवाद ने व्यक्ति के अहं को विशेष महत्व दिया है। व्यक्तिवाद से प्रेरित पात्रों ने समाज के प्रति पूर्ण उपेक्षा बरती है। प्रेम और सेक्स, नैतिकता के नियम तथा सामाजिक रूढ़ियों परम्पराओं को व्यक्तिवादी दृष्टिकोण ने नवीन एवं स्वस्थ अर्थ प्रदान किए हैं।

---

1. डा॰ सुषमा धवन - हिन्दी उपन्यास - राजकमल प्रकाशन - दिल्ली - 1961 - पृ॰ 89.

कंकाल :-

इस उपन्यास में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों तथा व्यक्ति स्वातन्त्र्य की व्याख्या होने पर भी सामाजिक चेतना के स्तर विद्यमान हैं -- "पात्रों की बातचीत में नवयुग के अन्तःकरण से निकली हुई वाणी की प्रतिध्वनि प्रत्यक्ष हो उठती है जिस में प्रेम को व्यवसाय से ऊपर स्थान दिया गया है और व्यापारिक विवाह की भावना पर जिसने हमारे जीवन को मृतक सा बना दिया है, कुठाराघात किया गया है।"[1] कंकाल में प्रसाद ने विजय के माध्यम से सामाजिक अनाचार एवं विषमता और नैतिक को दिखाया है। सामाजिक अनाचार एवं विषमता व्यक्ति की विवाह सम्बन्धी मान्यता को परिवर्तित करने में सहायक रही है। विजय घण्टी से कहता है -- "जो कहते हैं अविवाहित जीवन पाशव है, उच्छृंखल है, वे भ्रान्त हैं। हृदय का सम्मिलन हो तो ब्याह है। मैं सर्वस्व तुम्हें अर्पण करता हूं और तुम मुझे, इसमें किसी मध्यस्थ की आवश्यकता क्यों - मन्त्रों का महत्व कितना .... मैं स्वतन्त्र प्रेम की सत्ता स्वीकार करता हूँ, समाज न करे तो क्या। इसी प्रकार तितली उपन्यास व्यक्तिवादी होने पर भी सामाजिक चेतना की ओर संकेत करता है।

---

1. गंगा प्रसाद पांडेय - हिन्दी कथा साहित्य - पृ. 72.

भूले बिसरे चित्र :-

व्यक्ति की वैयक्तिक उपलब्धि का महत्व है किन्तु वह समाज से कटा हुआ नहीं है । व्यक्ति की वैयक्तिक उपलब्धि समाज सापेक्ष है । भगवती चरण वर्मा के अनुसार, हर व्यक्ति अपने में अकेला है और शायद वह अकेलापन ही उसकी वैयक्तिक उपलब्धि है । सामाजिक प्राणी होने के नाते व्यक्ति इस वैयक्तिक अकेलेपन को लिए हुए भी जब तक वह समाज से जुड़ा रहता है तब तक वह स्थिर रहता है । वर्मा जी ने समाज की उस स्थिति को उपन्यासों में अभिव्यक्ति दी है जो विकास तथा ह्रास के बीच संक्रान्ति की प्रतीक है ।

समाज में प्रचलित परम्परायें पीढ़ी-दर-पीढ़ी बदल रही हैं । एक युग का सत्य दूसरे युग में अपनी सार्थकता खो रहा है । " भूले बिसरे चित्र " में भगवती चरण वर्मा ने चार पीढ़ियों के माध्यम से इस परिवर्तन को ही दिखाया है । " सम्मिलित परिवार शिवलाल के लिए आदर्श था, ज्वाला प्रसाद अंशतः उससे दबे रहते हैं और गंगाप्रसाद उनको नहीं मानता है । " 1 राजनीतिक धरातल पर भी इनकी मान्यताएँ परिवर्तन को स्पष्ट करती हैं । समाज की परिस्थितियाँ बदल रही हैं और बदलती

---

1. भगवती चरण वर्मा - भूले बिसरे चित्र - राजकमल प्रकाशन - दिल्ली - 1975 - पृ. 136.

हुई परिस्थिति के साथ व्यक्ति के जीवन-मूल्य बदल रहे हैं --
" इस नई दुनिया का रूप क्या होगा, मुंशी शिवलाल की समझ में यह बात नहीं, फिर भी उनके लड़के ने यह बात कही थी, जो नये युग का आदमी था और इसलिए वह बात गलत नही थी ।"[1]
ज्वाला प्रसाद इस परिवर्तन को इन शब्दों में स्वीकार करता है —
" इधर पिछले तीन महीनों में उसकी दुनिया बदल गई थी, उसका दृष्टिकोण बदल गया था ।"[2] अत: इस उपन्यास में समाज के परिपार्श्व में व्यक्ति को केन्द्र मानकर जीवन-मूल्यों और व्यक्ति परक चेतना की अभिव्यक्ति हुई है ।

गिरती दीवारें :-

घर के वातावरण की कठोरता और बाह्य जीवन का संघर्ष व्यक्ति की विवशता को बढ़ाते हैं। मध्यवर्ग की इस विवशता का लाभ समाज के कतिपय सम्पन्न व्यक्ति उठाना नही भूलते । इस प्रकार समाज में मध्यवर्ग का किसी न किसी रूप में शोषण होता रहता है । साधनाहीन शिक्षित वर्ग का भी शोषण समाज में हो रहा है । उपेन्द्रनाथ अश्क के " गिरती दीवारें " में कविराज चेतना का शोषण करते हैं । उसके द्वारा लिखी हुई पुस्तके उपनाम से

---

1. भगवती चरण वर्मा - भूले बिसरे चित्र - राजकमल प्रकाशन - दिल्ली - 1975 - पृ. 132.
2. - वही - पृ. 611.

प्रकाशित करवाते हैं। कविराज, रामदास, चेतन जैसे होनहार नवयुवकों का "भला करने" और उनकी प्रतिभा को "चूसने वाली" एक सबसे मोटी, सबसे चिकनी, चालाक जोंक है।"[1] आर्थिक विषमताओं सामाजिक मान्यताओं तथा व्यक्तिगत कुंठाओं ने मध्यवर्ग को ह्रासोन्मुख बना दिया है। परिणाम स्वरुप मानसिक उलझनों तथा नैतिक मान्यताओं ने मध्यवर्गीय प्रेम को वासनामय बना दिया है। जाति पाँति के बन्धनों ने प्रेम को एकांगी बना दिया है। सम्बन्धों के बीच संघर्षों की अनेक दीवारे खडी हैं जो उसके व्यक्तित्व के विकास में बाधक हैं। इन दीवारों की नींव कहाँ है? यह कब गिरेंगी और कैसे गिरेंगी।"[2] यह अनिश्चित है। पारिवारिक सीमाओं के व्यक्ति को विद्रोही बना दिया है। इस विद्रोही प्रवृत्ती के कारण वह इन सीमाओं को तोडना चाहता है।

उक्त चर्चित उपन्यासों के अलावा इसी प्रवृत्ती के अन्तर्गत आनेवाले उल्लेखनीय उपन्यासों को नीचे दिया गया है --

---

1. उपेन्द्रनाथ अश्क, गिरती दीवारें - नीलम प्रकाशन - इलाहाबाद - 1947 - पृ. 721.
2. - वही - पृ. 712.

राजेन्द्र यादव	-	सारा आकाश
नरेश मेहता	-	डूबते मस्तूल
धर्मवीर भारती	-	गुनाहों का देवता
भगवतीचरण वर्मा	-	रेखा
गिरिराज किशोर	-	चिड़िया घर
श्रीलाल शुक्ल	-	राग दरबारी
राजेन्द्र यादव	-	उखड़े हुए लोग
मोहन राकेश	-	अँधेरे बन्द कमरे
यशपाल	-	मनुष्य के रूप

4·2·3· मनोविश्लेषणवादी उपन्यास :-

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में समाज की समस्याओं से अलग व्यक्ति की मूलचेतना को अभिव्यक्त किया जाता है। सामाजिक संघर्ष उसकी मन:स्थिति को प्रभावित करते हैं। सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ समस्या विशेष पर उसके सोचने का ढंग परिवर्तित होता रहता है। यह परिवर्तित दृष्टिकोण ही मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों में सामाजिक परिवर्तन का स्वरूप है। आज अनेक समस्याओं, संघर्षों व दबावों से त्रस्त मानव-चेतना पहले जैसी सीधी-सादी निर्द्वन्द्व नहीं रही है, वह विचित्र अन्तर्संघर्षों से ग्रस्त, अस्पष्ट और दुरूह हो गई है।[1]

1· मृदुला गर्ग - उसके हिस्से की धूप - पृ· 149·

मनोविज्ञान का चित्रण प्रेमचन्द के उपन्यासों से ही आरम्भ हो गया था किन्तु आलोचकों ने प्रेमचन्द के मनोविज्ञान को उतना महत्व नहीं दिया जितना उनके सामाजिक यथार्थ को । प्रेम चन्द के उपन्यासों में सामाजिक जीवन अपने समस्त सम्बन्धों, जटिल प्रश्नों और समस्याओं, आशाकांक्षाओं के साथ उभारा है । इसीलिए उनके पात्र विशेषत: सामाजिक या वर्गीय पात्र हैं । लेखक इन पात्रों की वर्गीय विशेषताओं को खूब उभारता है, उनसे उनका व्यक्तित्व निर्मित करता है और परिस्थितियों के प्रवाह में उठते-गिरते उन पात्रों की मन:स्थितियों का आकलन करता है । अत: स्पष्ट है कि प्रेमचन्द इन पात्रों के सामाजिक रूप और सामाजिकता से जुड़े मन: सत्यों के उद्घाटन पर ही विशेष बल देते थे । कहाजा सकता है कि प्रेमचन्द की अपेक्षा व्यक्ति के चेतन मन को प्रधानता देते थे । इसीलिए इनके पात्रों का एक निश्चित व्यक्तित्व दिखाई पड़ता है ।

जो उपन्यास मूलत: मनोविश्लेषण पर आधारित होते है उन्हें मनोवैज्ञानिक उपन्यास कहते हैं । मनोविज्ञान साहित्य के लिए नयी वस्तु नहीं है, वह आदिकवि वाल्मीकि से लेकर आज तक के सभी कवियों और साहित्यकारों की कृतियों में लक्षित होता है, किन्तु मनोविश्लेषण वाद अपने सीमित अर्थ में आधुनिक चीज है । मनोविश्लेषणवाद मस्तिष्क के चेतन, उपचेतन और अचेतन तीन विभाग कर अचेतन को विशेष महत्व प्रदान करता है । यही अचेतन हमारे व्यक्तित्व, हमारे सारे कार्य-व्यापारों, हमारे सारे नैतिक आधारों का निर्माता और नियता है । चेतन तो हमारे मस्तिष्क का बहुत

छोटा भाग है, उसके द्वारा हम सामाजिक सम्बन्धों का बोध प्राप्त करते हैं। मनुष्य का व्यक्तित्व बहते हुए हिम-शैल की तरह है जिसका छोटा सा अंश चेतना की सतह पर लक्षित होता है और शेष नीचे छिपा रहता है। यह शेष भाग अचेतन है और यह केवल विस्तृत ही नहीं, शक्तिशाली भी है। चेतना में जो अंश प्रकट होता है वह अचेतन से ही होकर आता है जहाँ वह जन्म लेता है। अवचेतन को चेतन के विषय का निर्धारक कहा जा सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य मूलतः वह नहीं है जो ऊपर सतह पर दिखाई देता है, बल्कि वह है जो अपने भीतर अभिव्यक्त रूप से छिपा हुआ है और उसका जितना अंश बाहर दिखता है वह भी चेतना की उपज नहीं है, उस पर भी अनजाने ही परोक्ष रूप से अचेतन का नियन्त्रण, और प्रभाव है। अचेतन में मनुष्य की कुछ आदिम वासनाएँ रहती हैं। फ्रायड इन्हें यौन वासनाएँ, एडलर इन्हें हीनता की भावनाएँ, यंग इन्हें जीवनेच्छाएं मानते हैं।

इस प्रकार मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में हमें हमें ऐसा लगता है कि हम जीवन जी रहे हैं, जीवन की कहानी नहीं सुन रहें। चूँकि यह आन्तरिक जीवन की यात्रा है इसीलिए इसमें अनिवार्य भाव से बिम्बों और प्रतीकों की योजना होती है। अचेतन का सत्य इतना असम्बद्ध, निरन्तर परिवर्तनशील तथा अनेक क्षणों और व्यक्तियों का अनियोजित पुंज होता है कि उसे कहा नहीं जा सकता। बिम्बों द्वारा ही उसके उलझ और असम्बद्ध

रूप को उद्घाटित किया जा सकता है। चूँकि आत्म प्रधान उपन्यासों में विचार क्रम से सुनियोजित नहीं होते। इस लिए ये उपन्यास असम्बद्धता का प्रभाव पैदा करते हैं और विभिन्न प्रकार के पाठक इस विभिन्न प्रकार से धारणा करते हैं।

कुछ लोगों ने प्रेमचन्द कृत " निर्मला " को पहला मनोवैज्ञानिक उपन्यास कहते हैं। " निर्मला " हिन्दी का पहला मनोवैज्ञानिक उपन्यास है अथवा नहीं, इस पर विवाद हो सकता है, लेकिन इस उपन्यास से यह स्पष्ट है कि हिन्दी उपन्यासों में मनोविज्ञान की महत्ता क्रमशः बढ़ रही थी।

हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का शुरुवाद जैनेन्द्र के प्रथम उपन्यास " परख " (1929) से हुआ। तत्पश्चात्, इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय, भगवती प्रसाद वाजपेयी, डा॰देवराज, प्रभाकर मानवे, धर्मवीर भारती, नरेश मेहता इत्यादि के उपन्यासों ने हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यास को स्वतन्त्र व्यक्तित्व प्रदान करने में सहयोग दिया।

जैनेन्द्र कुमार	-	सुनीता, त्यागपत्र, परख
इलाचन्द्र जोशी	-	निर्वासित, जिप्सी, जहाज का पंछी
अज्ञेय	-	शेखर : एक जीवनी, नदी के द्वीप

सुनीता :-

जैनेन्द्र ने कथा साहित्य को एक नयी दिशा दी अर्थात् उन्होंने उपन्यास और कहानी को प्रेमचन्द के प्रभावों से मुक्त किया। उनकी कहानी निमित्त-मात्र होती है, व्यक्ति का मानस मन्थन ही उनका लक्ष्य होता है। इसलिए उनके उपन्यासों में घटना-बहुलता नहीं होती, आकस्मिकता नही होती, कौतूहल की तीव्र स्थिति नही होती, पूरी कहानी सहज ढंग से बिना उतार-चढ़ाव के चलती रहती हैं। इससे यह अनुभव होता है कि हम उपन्यास पढ़ने के स्थान पर लेखक के अभिप्रेत जीवन की सहज यात्रा कर रहे हैं। जैनेन्द्र जी का पहला उपन्यास " परख " है किन्तु " सुनीता " के माध्यम से ही जैनेन्द की मनोविश्लेषणात्मक उक्ति का प्रस्फुटन हुआ। यह उनके श्रेष्ठ उपन्यासों में माना जाता है।

सुनीता श्रीकान्त की पत्नी है। वह अपने पति के साथ रहती है। सुनीता के रूप, गुण-सम्पन्न होने के बावजूद श्रीकान्त कुछ अभाव का अनुभव करता है। एक दिन उसका क्रान्ति-कारी मित्र हरिप्रसन्न दिखाई पड़ जाता है। उसे वह घर लाता है। हरिप्रसन्न योग्य प्रतिभाशील होते हुए भी निरुद्देश्य और अव्यवस्थित है। श्रीकान्त अपनी पत्नी सुनीता को आदेश देता है कि वह हरिप्रसन्न को प्रसन्न रखे। हरिप्रसन्न को प्रसन्न रखने के क्रम में सुनीता अद्भुत द्वन्द्व से गुजरती है। एक बार श्रीकान्त कहीं बाहर जाते समय सुनीता से कह जाता है उसकी अनुपस्थिति में हरिप्रसन्न को कोई दु:ख न हो, उसकी इच्छा का ध्यान रखा

जाए सुनीता की ओर आकृष्ट हरिप्रसन्न उसे क्रान्तिकारियों के दल में शामिल करने के लिए जिद करता है और वह न चाहते हुए भी उसके साथ वन में जाती है जहाँ हरिप्रसन्न उसे समूचा पाना चाहता है । सुनीता जब वस्त्र उतार-उतार कर नंगी होने लगती है तब वह भाग खड़ा होता है । वह सुनीता को घर पहुँचा कर पलायन कर जाता है और सुनीता पुन: पति प्रेम से प्रेम करती हुई जीवन यापन करती है ।

कथा के बीच में सुनीता की बहन सत्या का प्रवेश होता है । सुनीता उसे हरिप्रसन्न से बान्धना चाहती है लेकिन वह सुनिता की ही ओर आकृष्ट होता है । लेखक ने सुनीता और हरिप्रसन्न के सम्बन्धों को कहीं खोला नहीं है, संकेतित किया है । दोनों के संबन्धों के बीच एक फासला है । वह फासला कोई सामाजिक या पारिवारिक प्रतिबन्धों का नहीं है ,वरन् दोनों के मन की स्थितियों का है, नैतिक मूल्यों का है । इसलिए उनके पारस्परिक आचरणों में एक दुरूहता-सी लक्षित होने लगती है । सुनीता पति की आज्ञा पाकर भी, हरिप्रसन्न की प्रच्छन्न इच्छा देखकर भी पूरे मन से उसकी ओर नहीं झुक पाती, हरिप्रसन्न सुनीता की ओर पूरे मन से झुककर भी कहीं ठहर जाता है इसलिए उनके आचरण में एक दूसरे प्रकार का असन्तुलन दिखाने लगता है । " सुनीता " उपन्यास में मन की यही कथा चलती रहती है ।

जिप्सी :-

जोशी जी के उपन्यास कथा-विन्यास की दृष्टि से सामाजिक उपन्यासों की परम्परा में ही आते हैं। अर्थात उनमें भी कथा की मंसलता, घटनाओं की संकुलता, विविध कथा-मोड़, आरोह-अवरोह आदि उसी तरह पाये जाते हैं जैसे सामाजिक उपन्यासों में। वे एक ओर तो व्यक्ति के मन: सत्य का उद्घाटन करते हैं, दूसरी ओर अभिजात वर्ग के अहं पर चोट करते हैं। ऐसा करने के लिए वे अपने प्रधान पात्रों को प्राय: पतित, अपेक्षित वर्ग से चुनते है। इसीलिए इनके कथानक व्यक्तियों तक सीमित न रह कर बाहर समाज में भी निकलते हैं।

जिप्सी जोशी जी के महत्वपूर्ण उपन्यासों में से है। इसमें स्पष्ट रूप से मनोविश्लेषणवाद और सामाजिक भावना का समन्वय है। प्रकारान्तर से समाजवादी दृष्टिकोण भी उभरा है। नारी-चेतना का ज्वलन्त उद्घाटन भी है। रंजन एक धनी और अभिजातवर्गीय व्यक्ति है, वह एक जिप्सी लड़की मनिया को देखता है, जिसकी बिसाती की एक छोटी-सी दुकान है। रंजन उस पर मुग्ध होकर उसकी सारी दुकान ही खरीद लेता है और मनिया को विवश होकर रंजन की शरण में बैठना पड़ता है। बाद में विवश होकर रंजन से विवाह कर लेती है। जब मनिया माँ बनती है तो रंजन को ऐसा लगता है कि मनिया उसके प्रति कम ध्यान देती है। वह ऊब कर मनिया के साथ कलकत्ते चले आता है। वहाँ वह अपने एक मित्र वीरेन्द्र के यहाँ

ठहरता है और उसकी सुन्दर पत्नी शोभ्मा के प्रेम के चक्कर में पड़ जाता है । वीरेन्द्र जनसेवक है, उसे रंजन और शोभ्मा के प्रेम सम्बन्धों की न तो खबर है न चिन्ता । एक दिन मनिया रंजन को धक्का देकर घर से निकल पड़ती है तथा वीरेन्द्र की संस्था में में शामिल होती है । कलकत्ते में ही उसका चहरा तेजाब से जल कर कुरुप हो गया है । वह अमेरिका जाकर प्लास्टिक सर्जरी करा आती है । इस बीच वीरेन्द्र का वध हो जाता है । मनिया तथा रंजन की फिर मुलाकात होती है । रंजन उसके नये रुप की ओर आकृष्ट होकर उसे पुन: पाना चाहता है । वह मनिया के कौशलपूर्ण आग्रह से अपनी सम्पत्ती का बहुत बड़ा भाग संस्था को दे देता है तो भी मनिया उसके साथ नहीं जाती और उसे जनसेवा के रचनात्मक कार्य करने के लिए पुन: पहाड़ भेज देती है ।

इस उपन्यास में अभिजातवर्गीय धनी व्यक्ति के अहंकार, भोग-लालसा तथा निम्न वर्ग की एक स्वतन्त्र नारी के स्वतन्त्र व्यक्तित्व बोध, सुविधापूर्ण परवशता में उसकी मानसिक छटपटाहट, सहज ईर्ष्या, क्रोध, प्रतिशोध और तेज का जीवन्त चित्रण तो हुआ ही है साथ-ही-साथ वर्गीय सत्यों के पारस्परिक वैषम्य और द्वन्द्व तथा श्रमशील सामाजिक संस्थाओं की सेवा, त्याग का भी सुन्दर अंकन हुआ है और उपन्यास की परिणति सामाजिक सेवा तथा रचनात्मक कर्मों में व्यक्ति के अहं के विसर्जन से हुई है ।

शेखर : एक जीवनी :-

"शेखर : एक जीवनी" जीवनी शैली का उपन्यास है। जीवनी-प्रधान उपन्यास मनोविज्ञान के प्रभाव के कारण अस्तित्व में आये हैं। अतः इसमें पात्रों की परस्पर अनुस्यूत श्रृंखला आद्यो-पान्त नहीं लक्षित होती और न तो पात्र घटना या कथा के विकास के साधन के रूप में ही दिखाई पड़ते हैं। ये पात्र शेखर की जीवन-धारा में मिलनेवाले अलग-अलग व्यक्तित्वों वाले पात्र हैं जो अपनी-अपनी विशेषताओं के कारण अपनी इयत्ता तो रखते ही हैं, साथ ही शेखर के व्यक्तित्व को कहीं-न-कहीं प्रभावित करते हैं - कहीं टकरा कर, कहीं मेल खाकर। इन पात्रों को लेखक ने भीतर से देखने की चेष्टा की है। अर्थात् वे पात्र घटना-प्रवाह या कथाधारा के विकास के साधन नहीं बनाए गए हैं, जीवन के अनुभवों, मानस सत्यों और जीवन-मूल्यों के आन्तरिक धरातलों पर प्रतिष्ठित कर विवेचन किये गए हैं। व्यक्ति मन के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म अनुभवों को, अन्तर्द्वन्द्वों को, बाहरी जगत के प्रति प्रतिक्रियाओं को, अवचेतन स्थित उलझी हुई संवेदनाओं को, मन में उभरती हुई जिज्ञासाओं और प्रश्नों को बड़ी मार्मिकता से अंकित किया गया है। लेखक शेखर की मनःस्थिति का बड़ा ही मनोवैज्ञानिक किन्तु कलात्मक विश्लेषण किया गया है, वह सत्य भी है, सुन्दर भी।

4.2.4. आंचलिक उपन्यास :-

स्वतंन्त्रता के बाद भारतीय समाज जटिल और बहु - आयामी हो गया है । राजनीतिक अस्थिरता, सामाजिक मूल्य विघटन एवं सम्बन्धों और स्वार्थों के संघर्ष ने ग्रामीण आंचलों को भी प्रभावित किया है । आंचलिक उपन्यासकारों ने आधुनिक प्राप्त मूल्यों के द्वन्द्व एवं परिवर्तन को गांव के सन्दर्भ में देखा है । औद्योगिकरण और नागरीकरण के प्रभाव से वहाँ भी मूल्य-विघटन की स्थिति उत्पन्न हुई है ।

आंचलिक उपन्यासों में सामाजिक परिवर्तन का स्वरूप, संघर्ष, विरोध, विद्रोह, प्रगतिवाद आदि के रूप उभारा है । किसी भी अंचल विशेष में नए प्रशासनिक, नयी व्यवस्था से उत्पन्न समस्यायें, क्षेत्रीय राजनीति, दलबन्दी, सामाजिक धार्मिक-आर्थिक रूढ़ियों से सम्बन्धित समस्याएं होती हैं । इन समस्याओं से निपटने के लिए संघर्ष जारी रहता है । इस संघर्ष के परिणाम स्वरूप सामाजिक परिवर्तन किसी न किसी रूप में उपस्थित होता रहता है ।

आंचलिक उपन्यास अधिकतर ग्रामीण अंचल से सम्बन्धित होने के कारण उनमें सामाजिक परिवर्तन का स्वरूप जमीन्दार के अन्याय के विरुद्ध संघर्ष के रूप में दिखाई पड़ता है । जागरण के इस युग में किसान की नई पीढ़ी जमीन्दार का प्रत्यक्ष विरोध करती है । अपने अधिकारों के प्रति सजग यह पीढ़ी अपने पूर्वजों की तरह जमीन्दार का अत्याचार सहने की अपेक्षा उनसे संघर्ष करना जानती है । " बलचनामा " इसका स्पष्ट उदाहरण है ।

आंचलिक उपन्यास ग्रामीण अंचल से सम्बन्धित होते हुए भी उनकी गति एक दिशा में नहीं, चारों दिशाओं में होती है । वह एक स्थान पर गतिशील समय में जीता है । अंचल की विविधता को रूप देने के लिए लेखक कभी इस कोण पर खड़ा होता है, कभी उस कोण पर, कभी ऊँचाई पर कभी नीचाई पर । इसमें अनेक पात्रों की आवश्यकता रहती है । हर पात्र की सत्ता महत्व की है । इनमें से कोई पात्र एक दूसरे के निमित्त नही होता, वे सब अंचल के निमित्त होते हैं । इस उद्देश्य को न समझ पाने के कारण ही लोगों को कथानक का, पात्रों का, सांस्कृतिक पक्षों का बिखराव दीखता है । उनमें एक सूत्रता और एक दिशागामिता नहीं दिखाई देती ।

आंचलिक उपन्यास घटना-प्रधान उपन्यासों की तरह कुछ खास पात्रों के जीवन से सम्बद्ध घटनाओं और समस्याओं को लेकर वेगवती धारा की तरह नयी-नयी भूमियों को पार करता हुआ आगे बढ़ता है और न तो वह मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की तरह कुछ गिने-चुने पात्रों के मन का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इन दोनों अवस्थाओं में बिखराव का कोई प्रश्न ही नही उठता किन्तु आंचलिक उपन्यास का उद्देश्य है स्थिर स्थान पर गतिमान समय में जीते हुए अंचल के व्यक्तित्व के समग्र पहलुओं को उद्घाटित करता। अंचल के जटिल जीवन चित्र को अंकित करने के लिए लेखक कही मोटी रेखाएं खीचता है, कही पतली, कही अवकाशों को भरने के लिए दो-चार बिन्दु अपनी तूलिका से झाड़ देता है। अनेक पर्वों, उत्सवों, परम्पराओं, विश्वासों, व्यथा के अवसरों संघर्षों, प्रकृति के रंगों, पुराने-नये जीवन मूल्यों आदि से लिपटा हुआ अंचल का जीवन अभिव्यक्ति के एक नए माध्यम की अपेक्षा करता है। अत: आंचलिक उपन्यासकार एक दिशा में बहने की अपेक्षा पूरे अंचल की चतुर्मुख यात्रा करता है। और उन उपादानों को यहाँ से, वहाँ से चुनता है जो मिलकर अंचल की समग्रता का निर्माण करते हैं।

उल्लेखनीय आंचलिक उपन्यासकार और उनके उपन्यासों को निम्नांकित किया गया है ---

नागार्जुन :

रतिनाथ की चाची	(1948)
बलचनामा	(1952)
बाबा बटेसर नाथ	(1954)
वरुण के बेटे	(1957)

फणीश्वरनाथ रेणु :

मैला आँचल	(1954)

उदयशंकर भट्ट :	सागर लहरे और मनुष्य	(1955)
रांगेय राघव :	कबतक पुकारू	(1955)
देवेन्द्र सत्यार्थी :	ब्रह्मपुत्र	(1956)
रामदरश मिश्र :	पानी के प्राचीर	(1961)
अज्ञेय :	अपने अपने अजनबी	(1970)

बलचनामा :-

नागार्जुन के सारे उपन्यास आंचलिक कहे जाते हैं और उनमें कहीं वैसा बिखराव नहीं है जैसा कि "मैला आँचल", "बूंद और समुद्र", "पानी के प्राचोर" आदि में है। कारण स्पष्ट है। नागार्जुन के उपन्यास अंचल विशेष के पात्रों और घटनाओं को लेते हैं लेकिन अंचल की समग्रता अंकित करना उनका उद्देश्य नहीं होता। उनके उपन्यास विशेषतया पिछड़ेवर्ग में से किसी नायक को चुन लेते है और उसके जीवन की कथा को सीधे आगे बढ़ाते हैं। "बाबा बटेसरनाथ" में उपन्यास एक पात्र की कहानी हो गया है। दुखमोचन में वैविध्य है किन्तु लगता है कि दुखमोचन को विविध अवस्थाओं से निकाल कर ले जाना उनका उद्देश्य है। "बलचनामा" भी वैसा ही है। मूलत: नागार्जुन के उपन्यासों की भूमि अंचल - विशेष है किन्तु आचंलिक उपन्यासों की-सी समग्रता, जटिलता, विविधता उनमें नहीं है। वे प्रेमचन्द की-सी ही शिल्प-परम्परा के उपन्यास है।

बलचनमां नागार्जुन जी का बहुचर्चित उपन्यास है। इसमें बलचनमां नामक निम्नवर्गीय किसान पुत्र अपनी यातना पूर्ण जीवन कथा कहता है। पिता के मरने के कारण बचपन में ही उसे जमीन्दारों के यहाँ नौकरी करनी पडती है और जमीन्दारों के अमानवीय अत्याचारों को झेलना पडता है। पूरे उपन्यास में किसान का दुख-दर्द

और संघर्ष व्याप्त है तथा मानवीय अधिकारों को जकड़नेवाली शोषक-जर्जर मान्यताओं, वर्ग व्यवस्थाओं और परम्पराओं पर कलात्मक प्रहार किया गया है । इस कहानी का कहीं-कहीं नीरस वर्णनात्मक विस्तार दिखाई पड़ता है ।

मैला आँचल :-

हिन्दी में पहली बार किसी अंचलविशेष के उपेक्षित जीवनी की समस्त छवि और कुरुपता, सीमा, विवशता और सम्भावना को इतनी मानवीय ममता और सूक्ष्मता से रूप दिया गया है । फणीश्वर नाथ रेणु ने इस उपन्यास में अंचलविशेष की कथा ही नहीं कही है बल्कि अपनी सशक्त व्यंग्य-शैली से कथा को इस प्रकार नियोजित किया है कि समस्त अंचल सजीव होने के साथ-साथ समस्त जीवन के सौन्दर्य-असौन्दर्य, सद्-असद् की ओर बड़ी ही सूक्ष्मता से संकेत करता है और इस प्रकार यह कथा अंचल के ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक परिवेश में तथ्य-आयोजन न रहकर जीवन्त मानव संवेदनों, मूल्यों संघर्षों और अन्त विरोध-ग्रस्त वर्ग-चेतनाओं की कहानी बन जाती है ।

कब तक पुकारूं :-

रांगेय राघव के इस उपन्यास में नटों के जीवन का चित्रण किया गया है। कथा का क्षेत्र ब्रज का एक भाग है। नटों के जीवन के संश्लिष्ट यथार्थ को उभारने के लिए लेखक ने परिवेश रूप में या तनाव तथा संघर्ष पैदा करने वाली प्रतिकथा के रूप में उस भू-भाग की अन्य जातियों के लोगों को भी लिया है। इसका नायक सुखराम नट है। इसका कथा-संघटन भी आंचलिक उपन्यासों का-सा जटिल है और दृष्टि यथार्थवादी। भाषा में जो स्थानीय भाषा का उभार दीखता है वह यथार्थ की अभिव्यक्ति के सन्दर्भ में सार्थक है।

4·2·5· व्यंग्यात्मक प्रवृत्ति :-

आधुनिक युग में मानव जीवन के अन्तर्विरोधों के स्पष्टी - करण के लिए व्यंग्यवादी प्रवृत्ति अधिक उपयुक्त समझी जाने लगी है। व्यंग्य के माध्यम से हम सामाजिक विषमताओं की सत्यता को स्पष्ट एवं मुखर रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं। "मानवीय चिन्तन और आचरण के दुराग्रहपूर्ण क्रिया रूप जिस सहजता से व्यंग्यों द्वारा परखे और विश्लेषित किये जा सकते हैं तथा कथनी और करनी, सिद्धान्तों और व्यवहारों, प्रतिष्ठित मूल्यों और युगीन वास्तविकताओं रूढ़ियो,

अन्धविश्वासों पर तीक्ष्ण आघातों से जिस नए संतुलन, सामाजिक अन्तर्विरोधों में उपजी जिस सहिष्णुता को नया आधार मिलता है, उसमें व्यंग्यवादी प्रवृत्ती की भूमिका महत्वपूर्ण है ।"[1]

समाज अथवा व्यक्ति पर किया गया व्यंग्य व्यक्ति को विषमताओं और अन्तर्विरोधों के प्रति जागरूक बनाता है । समाज परिवर्तनशील है । युग की परिस्थितियों के अनुकूल जो तथ्य या तत्व उचित नहीं बैठते उन पर व्यंग्य के माध्यम से प्रहार किया जाता है ।

व्यंग्यवादी स्वरूप का स्वतन्त्र स्वरूप स्वतन्त्र्योत्तर उपन्यासों में अधिक उभारा है । प्रेमचन्द युग के लेखकों ने व्यंग्य के साथ हास्य को मिला दिया था । इस युग में केवल व्यंग्य-प्रवृत्ति का स्वतन्त्र निरूपण आंशिक रूप में ही हुआ है । इसका कारण यह रहा है कि इन लेखकों ने व्यंग्य को हास्य से भिन्न नहीं माना है । " हास्य-व्यंग्य " के माध्यम से इन लेखकों ने विषय की दुरूहता को कम करना चाहा था ।

1· सुरेन्द्र उपाध्याय – शोध प्रबन्ध – कहानी साहित्य की मूल प्रवृत्तियों का वर्गीकरण एवं विश्लेषण तथा उन प्रवृत्तियों की प्रतिक्रियाओं का वैज्ञानिक अनुसंधान – पृ· 434·

वस्तुत: हास्य और व्यंग्य में पर्याप्त अन्तर है । हास्य के अन्तर्गत किसी व्यक्ति विशेष अथवा व्यवस्था की कमजोरी या विशिष्टता को लक्ष्य कर कटाक्ष नहीं करते हैं । उसकी विशिष्टता अथवा कमजोरी के प्रसंग पर मुस्कुरा भर लेते है, जब कि व्यग्य वाक्यों द्वारा अन्तर्विरोधों के कारण उस के परिवर्तित आचरण को लक्ष्य कर कटाक्ष करते हैं । अधिक स्पष्ट रूप में कहना चाहे तो करनी और कथनी के अन्तर को अधिक स्पष्ट करने के लिए व्यग्योक्तियों का प्रयोग करते है । हास्य-रचनाओं में किसी वस्तु की उपयोगिता अनुपयोगिता का प्रश्न गौण होता है जबकि व्यग्य प्रधान रचनाओं में वर्तमान वातावरण के अनुकूल उसकी उपयोगिता अनुपयोगिता को प्रमुखता दी जाती है ।

मूल्यविघटन से व्यंग्यात्मक चेतना का अधिक प्रसार हुआ है । इस व्यग्यवादी चेतना से प्रेरित उपन्यास कार व्यक्ति तथा समाज दोनों पर व्यग्य करता है । हिन्दी उपन्यासों में मुख्य कथा के सन्दर्भ में ही कहीं-कहीं समाज की रूढ़ परम्पराओं व्यग्य किया गया है । केवल व्यग्यवादी प्रवृत्ति पर लिखे गए उपन्यास नगण्य ही हैं। मध्यवर्ग के उदय ने व्यग्यवादी प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया है ।

स्वातन्त्र्योत्तर साहित्य में व्यंग्यवादी प्रवृत्ति दो रूपों में अधिक दिखलाई पड़ती है - व्यंग्य दृष्टि और व्यंग्य वाक्य के रूपों में । व्यंग्य दृष्टि से अभिप्राय है कि लेखक का दृष्टिकोण विभिन्न घटनाओं चरित्र, वातावरण, राजनीतिक तथा सामाजिक घटनाओं का चित्रण करते हुए प्रमुखत: व्यंग्यवादी रहता है । इस वर्ग के लेखक समाज व शासन के अन्तर्विरोधों एवं अव्यवस्थाओं की सत्यता एवं यथार्थ बोध को पैने व्यंग्य के माध्यम से स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं । जैसे श्रीलाल शुक्ल का " राग दरबारी " रांगेयराघव का " हुजूर " आदि ।

व्यंग्य वाक्य से अभिप्राय है कि कृति में कहिं-कहिं लेखक अपनी बात को पुष्ट एवं स्पष्ट करने के लिए व्यंग्योक्तियों का सहारा लेता है, व्यंग्योक्तियों का प्रयोग प्राय: प्रत्येक उपन्यासों में कहीं न कहीं अवश्य होता है, यह बात अलग है कि कहीं यह उक्तियाँ तीखी एवं पैनी होती है, तो कहीं इन उक्तियों का प्रयोग विषय की बोझिलता को कम करने के लिए हास्य के रूप में किया जाता है । प्रेमचन्द एवं प्रसाद की रचनाओं में प्राय: इसी प्रकार के व्यंग्य कथनों का प्रयोग हुआ है । प्रेमचन्द युग के उपन्यासकारों की रचनाओं में सम्पूर्ण व्यंग्य-दृष्टि का अभाव है तत्कालीन लेखकों की रचना में स्थिति जन्य व्यंग्य ही अधिक मिलता है । प्रेमचन्द के उपन्यासों में सामन्त एवं जमीन्दार वर्ग पर इस प्रकार के कटाक्ष

किये गये है जैसे " गोदान " उपन्यास के रायसाहब के चरित्र-चित्रण में कहीं-कहीं प्रसंगवश व्यंग्य किया गया है ।

निम्नलिखित उपन्यासों में व्यंग्यवादी प्रवृत्ति को परखा जा सकता है --

उपेन्द्रनाथ अश्क	:	गिरती दीवारें
राजेन्द्र यादव	:	सारा आकाश
रांगेयराघव	:	हुजूर
नागार्जुन	:	हीरक जयन्ती, रतिनाथ की चाची
रेणु	:	परती परिकथा, मैला आँचल
श्रीलाल शुक्ल	:	रागदरबारी
जैनेन्द्र	:	त्यागपत्र

गिरती दीवारें :-

उपेन्द्रनाथ अश्क के उपन्यासों में जहाँ शोषण की बात आई है वहाँ उनकी लेखनी व्यंग्यवादी हो उठी है । इस उपन्यास में चेतन के पिता शादीलाल के उत्तरदायित्वहीनता, अहंमान्यता तथा स्वेच्छाचारिता पर व्यंग्य करते हुए अश्क ने लिखा है -- " पंडित जी साधारणत: पढ़ाई के सिलसिले में पीटते । यदि वे अपने किसी

बेटे के हाथ में पुस्तक देख लेते तो पहले मामूली तौर पर बड़े स्नेह से हँसते-हँसते पुस्तक लेकर उसके दो चार पृष्ठ उलटते । फिर सहसा उसको परीक्षा लेने के लिये कोई अंग्रेजी, गणित, भूगोल अथवा इतिहास का प्रश्न पूछ बैठते ।"[1]

सारा आकाश :-

वैज्ञानिक उपलब्धियों ने धर्म की तर्क के आधार पर नई व्यवस्था की है । धर्म के रूढ़ रूप की आज के जीवन में उपयोगिता समाप्त हो गई है । जो समाज अथवा विशिष्ट वर्ग इन रूढ़ मान्यताओं से अब भी चिपका हुआ है उस पर व्यंग्य करते हुए राजेन्द्र यादव अपने प्रस्तुत उपन्यास में शिरीष के द्वारा कहते है -- "जहाँ तक उन्हें संग्रहालय या म्यूजियम में रखने का सवाल है, मैं मानता हूँ कि उनके लिए खूबसूरत कांच की अलमारियाँ होनी चाहिए, लेकिन अगर उन्हें आप आज के समाज के कानूनों के रूप में लादना चाहेंगे तो मैं कहूँगा कि उन्हें चूल्हे में रखकर चाय बनाइये और जोर से कहकहा लगाकर खुश होइए कि अपने कन्धों पर लदे और गर्दन में दांत गड़ाते भालू को उतार फेंका ।"[2]

---

1. उपेन्द्रनाथ अश्क, गिरती दीवारें - नीलाभ प्रकाशन - इलाहाबाद - 1947 - पृ. 63.
2. राजेन्द्र यादव, सारा आकाश - अक्षर प्रकाशन - दिल्ली - 1951 पृ. - 143.

हीरक जयंती :-

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देश की शासन व्यवस्था में तीव्र गति से परिवर्तन हुए । राजनीतिक क्षेत्र में मोहभंग की मानसिकता, सामाजिक विसंगतियों एवं नए-पुराने के संघर्ष ने साहित्य में व्यंग्य के लिये अनुकूल वातावरण उपस्थित किया । " हीरक जयंती " नामक प्रस्तुत उपन्यास में नागार्जुन ने अभि - नन्दन समारोह समिति के सदस्यों का व्यंग्यात्मक परिचय दिया है -- " राष्ट्रीय नेताओं की कतार में दो बार डाका कांड में ठाकुर जी की बन्दूक पकड़ी गई । गांजे के अवैध व्यापार का अन्यतम हीरो ।"[1] इसी प्रकार रामसागर राय एम॰पी॰ का परिचय देते हुए कहा गया है कि -- " सोशलिस्ट पार्टी, किसान सभा, फॉरवर्ड ब्लॉक से होते हुए वे 46-47 तक कांग्रेसी हो जाते हैं ।"

परती परिकथा :-

रेणु जी ने इस उपन्यास में ग्रामवासियों के अनभिज्ञता क्षुद्रता और बुद्धिमता तथा संकुचित दृष्टिकोण पर व्यंग्य किया है । देवी-देवताओं, भूत-प्रेतों, आदि से सम्बन्धित अन्धविश्वासों पर

1· नागार्जुन - हीरक जयन्ती - आत्माराम एण्ड सन्स -- 1962 - पृ॰ 27·

रेणु जी ने व्यंग्य कर उनको अनुचित सिद्ध किया है । इसी प्रकार देवी-देवताओं के भक्तों पर सवार होने पर पैन व्यंग्य किया है -- " निरसु पर परमदेव सवार हुआ । हाथ-भर जीभ बाहर निकालकर हाँफता है, दौड़ता है और किलकिलाता है -- ई-ई-ई-ल-ल-ल- ।"[1] अन्त में पता चलता है कि लुत्तों ने निरसु को ऐसा करने के लिए सिखाया था ।

राग - दरबारी :-

आज की प्रशासनिक व्यवस्था उत्तरदायित्व के अभाव में बिखर गई है । इस अव्यवस्था को दूर करने के लिए कितने ही प्रयास क्यों न किये जाये फिर भी इसका स्वरूप नहीं बदलता । इस उपन्यास में लेखक श्रीलाल शुक्ल ने देश की हुकूमत को ट्रक के कलपुर्जों से जोड़कर उस पर व्यंग्य किये है -- " ड्राईवर साहब तुम्हारा गियर बिल्कुल अपने देश की हुकूमत जैसा है उसे चाहे कितनी बार टॉप गियर में डालो, दो गज चलते ही फिसल जाती है और लौटकर अपने खांचे में आ जाती है ।"[2]

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - परती परिकथा - राजकमल प्रकाशन - दिल्ली - 1966 - पृ. 112.
2. श्रीलाल शुक्ल - राग दरबारी - राजकमल प्रकाशन - दिल्ली - 1968 - पृ. 8.

4.2.6. ऐतिहासिक उपन्यास :-

साहित्य सदैव अपने युग और समाज से रस ग्रहण करता है । कथावस्तु पुरानी हो या नयी, जीवन्त साहित्य में उसका संयोजन नवीन दृष्टि से किया जाता है । वह दृष्टि आधुनिक युग बोध से निर्मित होती है । आधुनिक युगबोध के बिना प्राचीन और नवीन सामग्रियाँ किसी व्यापक या गहरे सत्य के सूत्र से समन्वित नहीं हो पातीं । आधुनिक बोध वाला साहित्यकार इतिहास की सामग्रियों को नये सन्दर्भों में स्वीकार करता है । ये नये सन्दर्भ इतिहास की मृत सामग्री को नया स्वर प्रदान कर उन्हें वर्तमान का जीवन देते हैं, उन्हें इतिहास के गह्वर से निकालकर गतिमान जीवन के मैदानों में ला खड़ा करते हैं ।

ऐतिहासिक उपन्यासकार हो या इतिहास की सामग्रियों पर आधारित कोई और रचना करने वाला साहित्यकार, सभी को यह सत्य ग्रहण करना ही पड़ता है कि इतिहास वर्तमान के लिए ही है । साहित्यकार सर्जक है, जीवन का सर्जन करना ही उसका लक्ष्य होता है । वह इतिहासकार की भाँति तमाम बीती बातों को उनकी उनके स्थूल रंग-रेखाओं में पुन: प्रस्तुत नहीं करता । वह सर्जक के गहन दायित्व को समझकर उन्हें एक गहरे मानवीय सत्य से जोड़ता है । अत: जो लोग यह कहते हैं कि ऐतिहासिक

उपन्यासों का आदर्श स्वरूप इतिहास को उसकी सारी सच्चाइयों के साथ प्रस्तुत करने में हैं, वे लोग सत्य को ऐतिहासिक घटनाओं, पात्रों तथा अन्यान्य स्थूल आँकड़ों से ही जोड़ते हैं। उपन्यास - कार चाहे इतिहास की बहुत-सी घटनाओं और पात्रों को ले या कुछ ही पात्रों या घटनाओं को या केवल वातावरण को, यदि वह कलाकार है तो वह इन सबका नियोजन इस ढंग से करेगा कि वर्तमान जीवन के प्रश्न और मानव-मूल्य मुखर हो जाएँ। या यों कहें कि वह इतिहास के उन्हीं अंशों को चुनता है जो काल की मार खाकर भी जीवित बच गए रहते हैं और जो व्यापक सत्यों से दीप्त होने के नाते वर्तमान जीवन सत्यों में जुड़ जाते हैं। मानव-मूल्यों और जीवन-छवियों की ज्योति उजागर करने के लिए कलाकार इतिहास या वर्तमान अन्धकार और प्रकाश, आस्था और अनास्था पाप और पुण्य, हीनता और महत्ता की अन्तर्ग्रथित रेखाओं से निर्मित समग्र परिवेश को उभारता है। इतिहास के अन्धकार काल में यदि कोई ऐतिहासिक पात्र मानव-मूल्यों की ज्योति जलाने में समर्थ नहीं दीखता तो उपन्यासकार काल्पनिक पात्रों की सृष्टि करता है।

इस प्रकार ऐतिहासिक उपन्यासों में लेखक ऐतिहासिक परिवेश को उसकी सच्चाई में मूर्तिमान तो करता ही है, साथ-ही-साथ उस परिवेश के भीतर से वह ऐसे प्रश्न, ऐसे मूल्य, ऐसे सौन्दर्य उभारता है जो अधिक व्यापक और गहन होने के नाते वर्तमान जीवन को भी अपनी परिधि में समेट लेते हैं।

जयशंकर प्रसाद, वृन्दावनलाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, राहुल सांस्कृत्यायन, चतुरसेन शास्त्री, यशपाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, रांगेयराघव, शिवप्रसाद मिश्र, रुद्र, अमृतलाल नागर आदि उपन्यासकार प्रधान रूप से इस दिशा में योग देते हुए ज्ञात होते हैं ।

जयशंकर प्रसाद	-	इरावती
वृन्दावनलाल वर्मा	-	गढ़कुण्डार, विराटा की पद्मिनी, कचनार, लक्ष्मीबाई, मृगनयनी, माधव जी सिंधिया, भुवन विक्रम
भगवतीचरण वर्मा	-	चित्रलेखा
राहुल सांस्कृत्यायन	-	सिंह सेना पति, मधुर स्वप्न, वयं रक्षाम, सोमनाथ
यशपाल	-	दिव्या
हजारी प्रसाद द्विवेदी	-	बाणभट्ट की आत्मकथा, चारुचन्द्रलेख, पुनर्नवा
रांगेयराघव	-	मुर्दों का टीला
शिवप्रसाद मिश्र	-	बहती गंगा
अमृतलाल नागर	-	शतरंज के मोहरे, मानस का हंस

इरावती :-

प्रसाद जी का अधूरा ऐतिहासिक उपन्यास है । यह उस परम्परा का ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें इतिहास के एक खण्ड को उसकी समस्त संगति विसंगति में मूर्तिमान कर दिया जाता है । प्रस्तुत उपन्यास में जीवन-रस को सोखनेवाले बौद्ध धर्म की कठोर, ठण्डी व्यवस्था, क्रम को निगलने वाली उसकी खोखली अहिंसा-नीति तथा विलासी कमजोर राजा के राज्य में उत्पन्न होनेवाली अव्यवस्था, असुरक्षा के भाव, षड्यंत्र आदि का जीवन्त चित्रण हुआ है । लेखक समकालीन जीवन चेतना की अभिव्यक्ति के लिए प्रयत्नशील नहीं है किन्तु पूरे उपन्यास में उनकी मानवीय जीवन-दृष्टि व्याप्त है । समाज बन्धनों से जीवन-रस को मुक्त करना उसका उद्देश्य प्रतीत होता है ।

गढ़कुण्डार :-

वर्माजी ने अन्य उपन्यासकारों की तरह शौकिया तौर पर एकाध ऐतिहासिक उपन्यास लिखकर छुट्टी नहीं पाली वरन् ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना ही इनका प्रधान साधना-क्षेत्र है । वर्माजी के उपन्यासों की ऐतिहासिक सामग्री प्राय: मुस्लिम काल की है जिसे उन्होंने स्वयं के अध्ययन, जनश्रुतियों और परम्पराओं द्वारा ग्रहण किया है । इन्होंने अपनी उपन्यासों की कथा बुन्देल खण्ड की पहाड़ियों में निवास करने वाली जनता में से चुनी है ।

प्रस्तुत उपन्यास गढ़कुण्डार [1929] में मुख्य कथा खंगारों का नाश एवं बुन्देलों का कुण्डार पर आधिपत्य स्थापना ही है । परन्तु इस कथा के साथ-साथ अग्निदत्त और मानवती एवं दिवाकर और तारा का प्रेम प्रसंग भी चलता है । साथ-साथ अन्य छोटी-छोटी उपकथाएँ उठ-उठ कर विलीन होती चलती है । अंत में खंगार राजकुमार नागदत्त और सोहनपाल की लड़की हेमवती के विवाह-प्रस्ताव के छल द्वारा खंगारों को शराब पिलाकर उनका वध किया जाता है तथा कुण्डार पर बुन्देलों का राज्य स्थापित होता है ।

<u>चित्रलेखा [1934]</u> :-

भगवतीचरण वर्मा कृत प्रस्तुत उपन्यास का कथावस्तु ऐतिहासिक नहीं, वरना वह तो पुण्य और पाप की एक शाश्वत समस्या को लेकर चली है । इसका निर्माण ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को लेकर हुआ है । उपन्यास में सामन्ती-भोग-विलास, तपस्वियों का आधिक्य, नर्तकियों का समाज में स्थान, उत्सवों में पुरुष और महिला वर्ग का अलगाव आदि बातें गुप्तकाल के अनुरूप ही है । चन्द्रगुप्त के दरबार में चाणक्य और कुमारगिरि का जो विवाद हुआ वह किसी काल में किसी के दरबार में हो सकता था । अतः इस उपन्यास को हम सच्चा ऐतिहासिक उपन्यास नहीं कह सकते ।

सिंहसेनापति (1947) :-

राहुल सांस्कृत्यायन के चार ऐतिहासिक उपन्यासों में प्रस्तुत उपन्यास अधिक महत्व का है । इसमें आये हुए नाम बुद्ध, महावीर, बिम्बसार, अजातशत्रु ऐतिहासिक हैं । सिंह का नाम " अंगुत्तर निकाय " में मिलता है । उसमें सिंह का वैशाली का सेनापति होना वर्णित है । उसका पहले जैन धर्म फिर बौद्ध धर्म में दीक्षित होना भी प्रमाणित है । " सिंह सेनापति " की कथावस्तु ठोस नहीं है । सच पूछा जाय तो मुख्य कथा इसमें बहुत अल्प है और उसी थोड़ी कथा को लेखक ने विश्राम करा-करा कर बहुत देर में मंजिल तक पहुँचाया है । उद्देश्य विशेष की सिद्धि के लिये उसमें बहुत-सी ऐसी घटनाओं का समावेश है जो एकदम अनावश्यक और अप्रासंगिक हैं । अत: घटनाओं की सम्बद्धता में भी कमी आ गयी है । कथानक में कौतूहल का भी एकदम अभाव है । मनो - वैज्ञानिकता भी नहीं के बराबर है, विरोधी घटनाएँ भी बहुत कम आती हैं तथा लेखक के पात्र, जिनके प्रति उनकी सहानुभूति है, हार खाना जानते ही नहीं ।

वैशाली की नगर वधू (1949) :-

चतुरसेन शास्त्री जी इतिहास को अपने ढंग से स्वीकारते हैं, अर्थात् इतिहास के सत्यों के प्रति इन्हें बड़ी निष्ठा नहीं है। वे इतिहास के विशिष्ट सत्य के स्थान पर चिर सत्य को चित्रित करते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में बुद्धकालीन भारत की उस गणतंत्र व्यवस्था का चित्र है जो समृद्ध थी किन्तु विलासिता और कुछ अमानवीय प्रथाओं के कारण ह्रासोन्मुख हो रही थी। इस उपन्यास में अम्बपाली के माध्यम से नारी की महिमा प्रतिष्ठित की गई है। उस समय की नारी का कितना बड़ा अपमान था कि नगर की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी को गणिका का जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य किया जाता था। वह गण राज्य के समस्त लोगों की सम्पत्ति मानी जाती थी। नारी के रूप में अम्बपाली की महिमा की स्थापना ही इस उपन्यास की मूलवस्तु है, मगर इसके साथ-ही-साथ लेखक ने अनेक राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियों के चित्र और प्रसंग प्रस्तुत किये हैं जिससे उसका वातावरण सजीव हो उठा है।

दिव्या ﴾1945﴿ :-

" दिव्या " इतिहास नहीं, ऐतिहासिक कल्पना-मात्र है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर व्यक्त और समाज की प्रवृत्ति और गति का चित्र है। इस बात को स्वयं यशपाल ही स्वीकृत की है। इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् डा॰भगवतशरण उपाध्याय ने " हंस " के प्रगति अंक में प्रकाशित अपने निबन्ध में इस उपन्यास की अनेक ऐति-हासिक भूलों की ओर निर्देश किया है। यह स्पष्ट है कि यशपाल व्यक्ति और समाज को एक विशेष दृष्टिकोण ﴾मार्क्सवादी दृष्टिकोण﴿ से देखते हैं। मनुष्य और समाज को परिस्थिति सापेक्ष गतिशीलता और प्रवृत्तियाँ उनकी दृष्टि में होती हैं। लेखक ने व्यक्ति और समाज के ढाँचे, वेशविन्यास, आकर-प्रकार का बड़ा जीवन्त चित्र खींचा है किन्तु उसका मूल उद्देश्य है सामाजिक सम्बन्धों, मूल्यों आदि की विसंगतियों और व्यक्ति की यातना, संघर्ष तथा गति का जीवन रूप प्रस्तुत करना।

बाणभट्ट की आत्मकथा ﴾1946﴿ :-

हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने यह उपन्यास आत्मकथा-पद्धति पर लिखा है। इसकी कथावस्तु सम्राट हर्षवर्दन के काल से ली गई है। इसके कुछ ही पात्र ऐतिहासिक है। स्थान तो सभी ऐतिहासिक हैं किन्तु कार्य और घटनाएँ काल्पनिक हैं। घटनाएँ

काल्पनिक होती हुई भी उस युग और समाज के अनुरूप है । लेखक ने तत्कालीन ग्रन्थों के अध्ययन के आधार पर ही किसी स्थान, घटना या त्योहार का चित्र खींचा है । ऐतिहासिक पात्रों के जीवन की घटनाएँ इतिहास में कहीं वर्णित नहीं है किन्तु लेखक ने उन पात्रों अनुरूप उनसे सम्बन्धित घटनाओं की सृष्टि कर ली है ।

" बाण " के विषय में यह प्रसिद्ध है कि वह आवारा था, लड़कियाँ भगाया करता था । बाद में बाण ने अपना सुधार किया और विश्वविख्यात पण्डित और कवि हुआ तथा हर्ष ने उसका समुचित आदर किया । इतनी बात तो तत्कालीन ग्रन्थों तथा स्वयं बाण के ग्रन्थों से प्रमाणित होती है, परन्तु द्विवेदीजी ने इन घटनाओं की सत्यता की रक्षा करते हुए भी उनको ऐसा मोड़ा है और उन पर इस प्रकार कल्पना का प्रासाद खड़ा किया है कि सत्य और सुन्दर का सम्यक् समन्वय हो गया है ।

मुर्दों का टीला (1948) :-

प्रस्तुत उपन्यास प्रगतिशील लेखक रांगेय राघव का ऐतिहासिक उपन्यास है । इसमें मोहन जोदड़ों की संस्कृति और सभ्यता को उपन्यास का आधार बनाया गया है । श्रेष्ठ ईरान आदि से दास-दासियाँ क्रय करते थे । दास-दासियों के साथ पशुओं का सा व्यवहार

करते थे । लेखक ने इन विलासी व्यापारियों की घृणित वासना और अत्याचार का नंगा रूप अनावृत किया है । कथानक सुदूर अतीत का है, अत: लेखक की कल्पना को अभिप्रेत रूप से विहार करने का अवकाश मिला है ।

रांगेय राघव ने अपनी कल्पना से तत्कालीन सभ्यता और सामाजिक सम्बन्धों के आधार पर श्रेष्ठि मणिबन्ध, दासी नीलूफर, आमेन-रा, विश्वजित, विलिमित्तूर उसकी प्रेयसी वीणा, हेका और उसके प्रेमी अपाप, राजकुमारी चन्द्रा का अद्भुत रूप से चित्रित किया है । उस काल के सभी सामाजिक सम्बन्ध मुखर हो उठे हैं । जनता इस घृणित अत्याचार के विरुद्ध युद्ध करती है जिसके नेता विलिमित्तूर और विश्वजित है । शोषक संस्कृति इस भयानक युद्ध में अट्टहास करती है और अन्तिम दम तक उसका प्रतीक मणिबन्ध वीणा को आलिंगनपाश में बाँधने के लिए दौड़ता है । अन्त में अत्याचारी मणिबन्ध अकेला रह जाता है ।

<u>शतरंज के मोहरे (1959)</u> :-

अमृतलाल नागर के प्रस्तुत उपन्यास लखनऊ के शासन को केन्द्र में रखकर उन्नीसवीं शताब्दी के भारतीय जीवन में लक्षित होने-वाली उथल-पुथल को चित्रित करता है । लेखक की यथार्थवादी दृष्टि ने इस काल के कमजोर और विवश बादशाहों की मानवीय यातना, अन्तर्द्वन्द्व और असफल आक्रोश का तथा उनके इर्द-गिर्द के भयानक

षड्यन्त्र, फरेब-भरे प्रेम और अमानवीय कृत्यों से कसकसाते परिवेश का बड़ा ही जीवन्त चित्र प्रस्तुत किया है ।

गजीउद्दीन हैदर लखनऊ के बादशाह थे । उनकी बेगम बड़ी धार्मिक थीं, अपने पति से उनकी नहीं पटती थीं । बादशाह बेगम ने किसी दासी का पुत्र नसीरुद्दीन को बड़े स्नेह से पाल-पोस कर बड़ा किया तथा अपनी ओर मिला लिया था । बादशाह बेगम से बहुत क्रुद्ध और दु:खी था । राजनीतिक दाँव-पेंच की दृष्टि से धीरे-धीरे उसने नसीरुद्दीन को अपनी ओर मिला लिया और एक दिन ऐसा आया जब बादशाह बेगम और नसीरुद्दीन में कट्टर शत्रुता पैदा हो गयी । गजीउद्दीन हैदर की मृत्यु के बाद नसीरुद्दीन बादशाह बना और उसमें तथा बादशाह बेगम में शक्तिपरीक्षण का क्रम चलता रहा । रानियों के स्थान पर दासियों की प्रभुता स्थापित हुई । एक के बाद एक दासियाँ आती गयीं और कमजोर नसीरुद्दीन को अपने चंगुल में फाँसकर उस पर शासन करती गयीं । उनके षड्यंत्र, बेवफाई और स्वार्थ का पता चलने पर नसीरुद्दीन उन्हें उठाकर फेंकता गया । बादशाह बेगम और नसीरुद्दीन के मन्त्रियों, सलाह -कारों के बीच दुर-युद्ध चलता रहा और षड्यन्त्र व्यूह बनता-बिगड़ता रहा । शतरंज के मोहरों की तरह आदमी अपना स्थान बदलते रहे । स्वयं बादशाह दूसरों के हाथ में मोहरा बनकर जीवन यापन करता रहा और इस सारे द्वन्द्व के बीच अंग्रेजी राज्य का हस्तक्षेप गतिमान रहा ।

4·3· कथ्य एवं संवेदना का विकास :-

प्रस्तुत अध्याय के इस उप शीर्षक के अन्तर्गत आरम्भ काल से लेकर विकास काल तक के उपन्यासों में किन-किन समस्याओं का चित्रण किया गया है और किस तरह इतिहास को एक नई दृष्टि से देखा गया है, आदि अंशों पर विचार किया गया है । कुछ उपन्यासकार अपने उपन्यासों में चर्चित समस्याओं का समाधान दिये है जैसे प्रेमचन्द की सेवासदन और कुछ उपन्यासकार समाधान नही दिए जैसे जैनेन्द्र की सुनीता आदि ।

उपन्यासों में चित्रित मुख्य समस्याओं को इस प्रकार रखा जा सकता है --

4·3·1· धर्माडम्बर :-

प्रेमचन्द युग के उपन्यासों में धार्मिक ढोंग, बह्याडम्बर तथा जाति प्रथा की कटुता का भी खूब चित्रण हुआ है । तितली के इन्द्रनाथ कहते हैं - "मैं तो अपने धर्म और संस्कृति से भीतर ही भीतर निराश हूं । मैं सोचता हूं कि मेरा सामाजिक बन्धन इतना विश्रृंखल है कि उसमें मनुष्य केवल ढोंगी बन सकता है ।" ¹

1· हिन्दी उपन्यास के सौ वर्ष - डॉ·रामदरश मिश्र — गिरवर प्रकाशन, महेसाना [उ·गुजरात] - 1984 - पृ·48·

रंगभूमि की धार्मिक कट्टरता देखिए — " तुम बपतिस्मा क्यों नहीं लेती हो सरला ? इस अस हाय लोक में तुम्हारे अपराधों को कौन उभर लेगा ? तुम्हारा कौन उद्धार करेगा ।"[1] धार्मिक अंधविश्वास का सब से कठोर रूप " कंकाल " में देखने को मिलता है जब दीर्घकाल से माँ-बाप से बिछुड़ी तारा ट्रेन में अपने पिता को देखती है । वह पिता के पैर पकड कर रोने लगती है । तारा कहती है — " बाबूजी मेरा क्या अपराध ? मैं तो आप लोगों को खोज रही थी ।"[2] लेकिन उसका यह करूण कथन पिता को प्रभावित नहीं कर पाता । वे कहते हैं -- " कलंकिनी ! दुष्टा मुझे जल पिला दिया, प्रायश्चित करना पड़ेगा ।"[3] धार्मिक अंधविश्वास के कारण ही पिता और पुत्री में घृणा की दीवार खड़ी हो जाती है । इसी धार्मिक अंधविश्वास के कारण प्रेमचन्द के गोदान की धनिया होरी की मृत्यु के बाद भी बारह आने पैसे पंडित दातादीन को देकर होरी का गोदान कराती है और पछाड़ खाकर गिर पड़ती है । "गोदान"के दातादीन और मातादीन बुरे कर्मों को करने के बावजूद भी पंडित कहलाते है, पूजा-पाठ, दान-दक्षिण के अधिकारी हैं, क्यों कि ब्राह्मण जाति के हैं ।

1· हिन्दी उपन्यास के सौ वर्ष - डा·रामदरश मिश्र - गिरवर प्रकाशन, महेसाना {उ·गुजरात} - 1984 - पृ· 48·

2· - वही -

3· - वही -

प्रेमचन्दोत्तर काल की सामाजिक स्थिति वह न थी, जो प्रेमचन्द युग में थी । प्रेमचन्द युग की अपेक्षा प्रेमचन्दोत्तर युग का व्यक्ति अत्यधिक चेतना एवं विद्रोही बन चुका था । वह धर्माडंबर एवं अन्य मान्यताओं को स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत न था । नारी भी इस दिशा में पुरुष से पीछे न रही । वह पति के दासता से मुक्त होकर समाज में अपने स्वतन्त्र अस्तित्व की आकांक्षिणी थी । पति अब उसके लिये भगवान न था, क्यों कि वह समानाधिकार चाहती थी, किन्तु इसे जैनेन्द्र जी ने " कल्याणी " उपन्यास में एक नितान्त भूमि पर चित्रित करने का प्रयास किया है ।

कल्याणी ऐसी नारी है, जो इंगलैंड जाकर डाक्टरी की शिक्षा प्राप्त कर चुकी है तथा डाक्टरी की प्रैक्टिस करती है । लेकिन फिर भी उसके सम्मुख प्रश्न उठता है कि वह गृहणी बन कर रहे अथवा आर्थिक क्षेत्र में घर से बाहर रहे । उसका पति तो शिक्षित न होने पर भी पत्नी के सामाजिक स्तर के कारण डाक्टर असरानी के नाम से जाना जाता है, चाहता है कि कल्याणी प्राक्टिस करे तथा परिवार के लिए धन अर्जित करे । कल्याणी तो स्वतन्त्र रूप से निर्णय लेना चाहती है कि वह गृहणी बनकर रहे या डाक्टर बनकर ।

डा• असरानी भारतीय संस्कृति के संक्रान्तिकालीन मनःस्थिति की उपज है । इसलिए वे कल्याणी को एक ओर डाक्टरी पेशा करने के लिए कहते है तथा दूसरी ओर कठोर पातिव्रत -धर्म के निर्वाह की आशा करते हैं । पत्नी उनकी दृष्टि में उपभोग्य

निर्जीव वस्तु के समान है। कल्याणी एक दिन घर से गायब है। डा॰असरानी को उसके चरित्र पर संदेह होता है। वह समझता है कि डा॰भटनागर ने उसे छुपा रखा है। वह उससे जाकर कहता है -- "मेरी स्त्री को तुम उड़ा कर ले आये हो। लाओ, निकाल कर दो।"[1] लेखक ने इस सन्दर्भ में पुरुष वर्ग की मन:स्थिति पर आघात किया है। अधुनातन परिवेश में रहकर भी अपने को बदल नहीं सका।

यशपाल जी साम्यवादी लेखक हैं। वे सर्वहारा वर्ग की क्रान्ति में विश्वास करते हैं। उनके उपन्यासों के नारीपात्र जहाँ एक ओर समाज की रूढ़ीवादी परम्पराओं के प्रति विद्रोह करते हैं, वहीं वे साम्यवादी पार्टी के निमित्त भी कार्य करते हैं। वे पूँजीवादी शोषण तथा साम्राज्यवादी शासन का अन्त करना चाहते हैं।

"देश-द्रोही" उपन्यास में खन्ना के माध्यम से उन्होंने स्वतंत्र भारतीय नारी के मुक्ति पाने का समाधान प्रस्तुत किया है। खन्ना चन्दा से कहता है -- "जब तक उसे जीवन का साधन जुटने का स्वतन्त्र अवसर और अधिकार नहीं, उसका प्रेम और आचार सब पुरुष का खिलौना हैं। तुमने आपको बलिदान कर सब सहा, अब उसके प्रति विद्रोह भी करो, तो

---

1. जैनेन्द्र कुमार - कल्याणी - पूर्वोदय प्रकाशन - दिल्ली - 1977 - पृ॰ 29॰

क्या कर सकती हो, जब तक जीवन के संघर्ष में अपने पैरों खड़े होने का साधन तुम्हारे पास न हो ।"[1] यशपाल जी प्रस्तुत उपन्यास में नारी को काम सम्बन्धी नैतिक मान्यताओं को भी छूट देना चाहते हैं। वे नारी की पराधीनता एवं दासता को ही उसके अस्थिर चरित्र का कारण स्वीकार करते हैं ।

इलाचन्द जोशी का नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण स्वेच्छाचारी वर्ग तथा पूंजीपति वर्ग दोनों के शोषण के विरुद्ध विद्रोहाग्नि लिए हुए विकास पता है । "प्रेत और छाया" उपन्यास की मंजरी विश्वासघाती पात्रों से पीड़ित एवं त्रस्त होकर अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व का निर्माण करती है । वह जीवन के अनेक अवरोधों को पार करती हुई मेडिकल डाक्टर बनकर अस्पताल का संचालन करती है । उपन्यास के अन्त में वह विश्वासघाती प्रेमी पारसनाथ से कहती है -- "इसके अलावा तुम उसी सनातन पुरूष समाज के नवीन प्रतिनिधि हो, जिसने युगों से नारी को छल से ठगकर, बल से दबाकर , विनय से बहकाकर और करूण से गलाकर उसे हाड़-मांस की बनी निर्जीव पुतली का रूप देने में कोई बात उठा नहीं रखी है । पर याद रखो विश्व-व्यापी क्रान्ति के इस युग में आततायी और कामाचारी पुरूष जाति की सत्ता

1· यशपाल - देश-द्रोही - विप्लव कार्यालय - लखनऊ
1943 - पृ· 293·

अब निश्चित रूप से मूलत: बहने को है और युगों से दलित नारी जाति आज तक अपनी छायात्मकता के भीतर भी शक्ति का जो महाबीज सुरक्षित रखे हुए थी, उसके विस्फोट को दबाने की समर्थता अब बाह्य में भी नहीं रह गई है।"[1] इलाचन्द जोशी अपने उपन्यासों में नारी का ऐसा चरित्र चित्रित करते हैं, जो धर्माडंबर तथा अन्ध-मान्यताओं के विरुद्ध विद्रोह करता है।

4·3·2· विधवा समस्या :-

प्रेमचन्दयुगीन कथाकारों ने नारी की असहाय अवस्था को चित्रित करने के लिए उनकी मध्यवर्गीय पृष्ठभूमि में रखकर देखने की कोशिश की। क्यों कि नारी की असहायता समाज के सभी वर्गों में कमावेश कर देखी जा सकती हैं लेकिन मध्यवर्ग में इसका रूप सबसे भयंकर है।

विधवाओं की हीन दशा पर लोलुप पुरुष किस प्रकार घात लगाये रहते हैं इसे प्रेमचन्द युगीन कथाकारों ने खूब चित्रित किया है। "प्रतिज्ञा" में प्रेमचन्द ने दिखाया हैं कि कमला प्रसाद पूर्ण की असहाय अवस्था से लाभ उठाने को तत्पर हैं।

1· इलाचन्द जोशी - प्रेत और छाया - भारती भण्डार - इलाहाबाद - 1947 - पृ· 418·

ठीक यही दशा " रंगभूमि " के ज्ञान शंकर की है । वे अपनी विधवा साली के धन से ही संतुष्ट नहीं, करते, वरन् उसके शरीर को भी अपने वश में करना चाहते हैं । इसके लिए एक से एक लटके उनके पास हैं । " गोदान " में भोला की विधवा पुत्री झुनिया जब दूध बेचने जाती है तो पण्डित जी परिस्थिति का लाभ उठाना चाहते हैं ।

राजा राधिका प्रसाद सिंह के उपन्यास " राम रहीम " में भी पण्डित गिरधारी मिश्र है, जो बेल के पुरोहित है लेकिन उसकी असहाय अवस्था देखकर उसके पीछे पड जाते हैं । विधवाएँ स्वभाव से ही धर्म भीरू होती है, यह बात पण्डित जी जैसे लोगों को मालूम है । इसलिए दीन विधवाओं की धर्म-भावना को उकसा कर उन पर काबू पाने की बात ये सोचते हैं । वे बेला से कहते हैं-- " बेला तुम्हारे दर्शन में जब इतना आनन्द है तो तुम्हारा स्पर्श कितना पुलकप्रद होगा । मुझे अपना अंग स्पर्श का दान करो । मेरी यही विनीत याचना है । मैं ब्राह्मण हूँ । मुझे दान लेने का हक है । तुम शिष्य हो दीक्षा देना ।"

प्रसाद जी के " कंकाल " में एक विधवा नारी के जीवन की दुर्दशा का चित्र खींचा गया है । रायबरेली की एक विधवा ब्राह्मण-वधु है । उसके पति के नाम की कुछ भूमि है । उस पर अधिकार जमाने के लिए उसका देवर कुचक्र रचता है और

उस पर दुराचार का लांछन लगाकर हरिद्वार जाकर उसे छोड़ आता है। विधवा नारियों पर इस प्रकार के अत्याचार होते रहते हैं। "तितली" में नारी मात्र के लिए, चाहे वह सधवा हो या विधवा, स्त्री धन की आवश्यकता बतलायी गई है। मुकुन्दलाल इन्द्रदेव से कहते हैं — "मेरा अब यही मत हो गया है कि स्त्री के लिए सुरक्षित धन की आवश्यकता होनी चाहिए।"

"देश-द्रोही" उपन्यास में यशपाल जी ने राजबीबी के माध्यम से विधवा समस्या पर एक नये ढंग से प्रकाश डाला है। राजबीबी के पति डा॰खन्ना को लुटेरे सैनिक कैम्प से भगा ले जाते हैं, किन्तु घर वालों को सूचना मिलती है कि उनकी मृत्यु हो गयी। राजबीबी यह समाचार सुनते ही मृतप्राय हो जाती है, किन्तु वही राजबीबी एक दिन बद्री बाबू से ब्याह कर लेती है। डा॰खन्ना वापस लौट आता है। वह पत्नी के पुनर्विवाह से दुःखी अवश्य होता है, लेकिन उसके जीवन में कोई अवरोध नहीं उपस्थित करता। कुछ समयोपरान्त चन्द उस रुग्ण खन्ना को लेकर संयोगवश राजबीबी के घर पहुँचते हैं। जिस पति के प्रति राज एक दिन पूर्ण समर्पित थी, जिसकी मृत्यु की सूचना पाकर वह शोक से मृतप्राय हो गयी थी, आज उस पति को निरीह एवं बीमार की स्थिति में एक रात्रि को शरण देने में भी अपने को असमर्थ पाती है।"[1]

1· यशपाल - देश-द्रोही - विप्लव कार्यालय - लखनऊ
1943 - पृ· 394·

इसी प्रकार लेखक यशपाल इस निष्कर्ष पर पहुचता है कि पतिव्रत-धर्म तथा प्रेम भावना केवल परिस्थिति सापेक्ष है, ये निरपक्ष सत्य नहो । खन्ना के प्रति राजबोबी का समर्पण किसो दिन वास्तविक तथा सत्य था, लेकिन आज वह खन्ना को ठुकराने के लिये बाध्य है । यह भी वास्तविक सत्य है । ... यकित समाज तथा परिस्थितियाँ परिवर्तन शील है, अत: सामाजिक मूल्य भी परिवर्तनशील है । व्यक्ति दृष्टिकोण तथा वैयक्तिक मूल्य सभी परिवर्तन शील है । विधवा नारो भी एक जीवित प्राणी है, अत: यह कैसे सम्भव है कि मृतपति के प्रति उसका प्रेम-भाव स्थिर तथा अचल रहे । अत: विधवा के लिये पतिव्रत धर्म एक खोखला सामाजिक एवं नैतिक मूल्य है ।

4.3.3. अछूतों की समस्या :-

अछूतों की समस्या भी धर्माडंबर तथा अन्ध-मान्यताओं की ही देन है, इसका परिणाम यह हुआ है कि अनेक अछूत जो कि हिन्दू हो थे, ईसाई बन गये या उन्होंने अन्यधर्म स्वोकार कर लिये, जिसको मूल जनेऊधारो सवर्ण जातियों को कट्टरता एवं योगापंथी हो कही जा सकतो है । प्रेमचन्द युग के उपन्यासकारों ने अछूतों को समस्या को अत्यधिक महत्व दिया था, किन्तु इस युग में इस समस्या पर कम विचार किया गया क्यों कि यह समस्या प्राय: सुलझ-सो गयी थी । सरकार ने भी इस दिशा में पर्याप्त ध्यान

दिया । इस युग के उपन्यासकारों में अज्ञेय जी ने " शेखर एक जीवनी " में इस समस्या पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है ।

विद्रोही शेखर ब्राह्मण छात्रों का छात्रावास त्याग अछूतों के छात्रावास में रहने लगता है । वह सदाशिव, राघवन आदि अछूत छात्रों की सहायता से अछूतोद्धार समिति का निर्माण करता है तथा अछूत बालकों के लिये स्कूल खोलकर स्वयं पढ़ाता है ।[1] इसके अतिरिक्त वह समाज, ईश्वर, धर्म तथा नैतिक मूल्यों की अवहेलना करता है और बुद्धि को सर्वोपरि सिद्ध करता है ।[2] शेखर का यह विद्रोह न मात्र ईश्वर के प्रति है, वरन् समाज, धर्म तथा आदर्शों के प्रति भी है । उसकी विचार-दृष्टि में सारी सृष्टि की गति का मूल ईश्वर नहीं, प्रकृति नहीं, मानव नहीं, वरन् मानव की जिज्ञास-वृत्ति है ।[3]

इस प्रकार हम देखते है कि प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में नायकों का चरित्र धर्म तथा अन्धमान्यताओं के विद्रोही के रूप में चित्रित किया गया है ।

---

1. श्री अज्ञेय - शेखर एक जीवनी - सरस्वती प्रेस - इलाहाबाद - 1966 - पृ॰ 217॰
2. - वही - पृ॰ 95॰
3. - वही - पृ॰ 87॰

4·3·4· वेश्या-वृत्ति :-

वेश्यावृत्ति की समस्या को लेकर अनेक उपन्यासों का सृजन किया गया, किन्तु अधिकांश उपन्यास कार इस समस्या का समाधान प्रस्तुत करने में असफल ही रहे । उन्होंने या तो वेश्याओं की जीवन-चर्चा को अपने उपन्यासों का उपजीव्य बनाया या उनका यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत किया है, किन्तु किसी उपन्यासकार ने यह नहीं निर्देश किया कि वेश्या-वृत्ति जो समाज के कोढ़ के रूप में हमारे समक्ष विद्यमान हैं उसका निराकार कैसे किया जाय ? वेश्याओं के संपर्क अनेक उपन्यास लिखे गये जिनमें प्रमुख उपन्यासो का नीचे चर्चा किया गया ।

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास "सेवा-सदन" में इस तथ्य की कल्पना की थी कि इन वेश्याओं को दालमन्डी से निकाल कर कहीं अलग बसा दिया जाय और इसी आधार पर उन्होंने इस स्थान का नामकरण " सेवा सदन " किया था । उन्होंने यह भी निर्देश किया था कि वे वहाँ पर चर्खा कातेंगी तथा अन्य कार्य करेंगी, जिससे उनकी जीविका चल सकेगी, किन्तु यह प्रेमचन्द का एक आदर्शवादी दृष्टिकोण था, जो कभी सफल न हो सका ।

" प्रेत और छाया " उपन्यास में वेश्या पात्रों का चरित्र-चित्रण स्वाभाविक गति से नहीं होता । ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक समाज द्वारा उच्छिष्ट, इन सभी नारी पात्रों को एक

निर्दिष्ट बिन्दु तक पहुंचाने के लिए तत्पर है । इस दृष्टि से इलाचन्द्र जोशी का वेश्याओं के प्रति सहानुभूति परक दृष्टिकोण प्रशंसनीय है ।

"घरौंदे" उपन्यास की नायिका नादानी का अत्यन्त उग्र रूप में चित्रण किया गया है । वह समाज-सुधारक कामेश्वर पर तीव्र व्यंग्य करती है । वह कहती है --
"रन्डी किसी की रिश्तेदार नही होती । यह तुम्हारी लडकी नही होगी । वह सिर्फ माँ को जान सकेगी । पन्द्रह साल की ही बात है । आना फिर । तुम्हारी लडकी भी जवान हो जायेगी ।"[1]

किन्तु सबसे बडा अहम प्रश्न यह है कि इन उपन्यासों में वेश्या-वृत्ति के निराकरण का कोई समाधान प्रस्तुत नही किया गया ।

---

1. रंगेय राघव - घरौंदे - सरस्वती प्रेस - बनारस
   1946 - पृ० 298.

4·3·5· पूजीवादी आर्थिक विषमता से उत्पन्न समस्यायें तथा उनकी प्रतिक्रिया :-

प्रेमचन्दोत्तरकाल में किसान तथा मजदूर अपने अधिकारों के प्रति अत्यधिक जागरूक एवं सजग थे। जो किसान जमीन्दारों के समक्ष एक शब्द भी बोलने का साहस नहीं करता था, वह अब निर्भीकता से उसकी बातों का उत्तर देता था। सेठ साहूकारों से भी अब वह भयाक्रान्त न था। उसके मन में प्रतिहिंसा की भावना जन्म ले चुकी थी। वह इन पूजीपतियों तथा शोषकों से अपने शोषण का प्रतिकार चाहता था। फलत: उसके मन में इनके विरुद्ध प्रतिक्रिया का जन्म हुआ, जिसका चित्रण प्रेमचन्दोत्तर कालीन उपन्यासों में देखा जा सकता है।

पूँजीपति वर्ग का उदय प्रथम महायुद्ध के पश्चात हुआ, किन्तु द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त वह अत्यन्त शक्तिशाली हो गया। पूजीपति आधुनिक सामाजिक दृष्टिकोण तथा जन-तन्त्रीय विचारों के समर्थक है, लेकिन वे न केवल आर्थिक साधनों पर एकाधिकार प्राप्त करना चाहते है, वरना समाज पर भी नियंत्रण रखना चाहते हैं। दूसरी ओर श्रमिक वर्ग ब्रिटिश सरकार की आर्थिक व्यवस्था की उपज है। अंग्रेजों के शासन-काल में देश के पुराने उद्योग धंधे प्राय: नष्ट हो गये। कारीगरों के लिये अन्य कोई साधन न रहा। इस प्रकार वे धीरे धीरे पूँजीपतियों के आधीन हो गये।

शिक्षा के अभाव के कारण एक लम्बे अरसे तक इस वर्ग का पूंजीपति वर्ग शोषण करता रहा । सन् 1920-29 में यह वर्ग अपने हितों की रक्षा के लिए संगठित हुआ । उसने यह अनुभव किया कि पूंजीपति उसका शोषण करता है । यहीं से इस वर्ग के प्रति उस के मन में प्रतिक्रिया का अभ्युदय हुआ । इसके अतिरिक्त उस पर मार्क्सवादी विचार-धारा का भी प्रभाव पड़ने लगा था । अब वह अपने अधिकारों के प्रति अत्यन्त सजग एवं जागरूक हो उठा था । परिणामत: उसके मन में इसके प्रति प्रतिक्रिया हुई और उसने विद्रोह करना प्रारम्भ किया, जिसका चित्रण प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में उपलब्ध होता है ।

यशपाल जी का प्रथम उपन्यास "दादा कामरेड" है, जिसमें प्रगतिवादी जीवन-दर्शन के प्रति उनमें विश्वास प्रकट हुआ है । हरीश इस उपन्यास का एक प्रमुख पात्र है । वह प्रगति-शील विचारों में आस्था रखता है । रफीक उसकी पार्टी का एक सदस्य है । जिस समय लाहौर में कपड़ा मिल-मालिकों का अत्याचार असहाय हो उठता है । उस समय हरीश-रफीक, राबर्ट तथा शैल आदि के नेतृत्व में हड़ताल-सम्बन्धी विचार-विमर्श होता है । रफीक का मन्तव्य है कि -- "राजनीतिक प्रश्नों पर उन्हें (मजदूरों को) संगठित और सचेत करना सम्भव नहीं । जो सम-स्याएँ उनके जीवन में उनके सामने मौजूद हैं, उनमें हल करने की कोशिश से ही उनमें शक्ति और चेतना आयेगी । कांग्रेस जिस श्रेणी के लोगों की बनी है, वे लोग साधारणत: न तो मजदूर हैं और न उनके साथ

सहानुभूति ही रखते हैं । कांग्रेस पर जिस श्रेणी का कब्जा है, उनके और मजदूरों के हितों में विरोध है । कांग्रेस चलती है, महात्मा गाँधी की नीति पर । उस नीति का आधार है कि भगवान की इच्छा से मालिक मालिक बने हैं और मजदूर-मजदूर । .... हम मालिक को मालिक नहीं रखना चाहते तो फिर कांग्रेस की मालिक श्रेणी हमें कैसे सहन कर सकती है, कैसे हमें सबल बनाने दे सकती है ? इसके पश्चात् राबर्ट के तर्क को काटता हुआ, वह आगे कहता है कि "मजदूरों, अपनी शक्ति का ज्ञान केवल हड़ताल के रूप में ही हो सकता है । .... तुम चाहते हो पहले राज - नीतिक चेतना, बाद में आर्थिक माँग । यह हो कैसे सकता है, जिस के हाथ में आर्थिक साधन है वही राजनैतिक शक्ति का मालिक होगा । .... पहले मजदूरों को, सब पेशे के मजदूरों को आर्थिक प्रश्नों पर संगठित करना फिर उनके संयुक्त मोर्चे के हाथ में राज - नैतिक शक्ति देना यही हमारी लाइन है ।"[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि मजदूर वर्ग अपने अधिकारों के प्रति कितना सजग है । मजदूर पानी पी-पीकर दिन काट रहे हैं । फिर भी वे रफीक और हरीश के नेतृत्व में हड़ताल नहीं समाप्त करते । मालिक की लड़की शैल अपने पिता के विचारों से वितृष्णा हो जाती है । अन्त में मजदूरों की विजय होती है और हड़ताल समाप्त हो जाती है ।

---

1. यशपाल - दादा कामरेड - विप्लव प्रकाशन, लखनऊ - 1941 - पृ. 175.

" गंगा मैया " उपन्यास में भैरवप्रसाद गुप्त ने किसानों तथा जमीन्दारों के पारस्परिक संघर्ष का निरूपण किया है । डा॰प्रभात चन्द्र शर्मा ने इस उपन्यास के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है -- " अज्ञान-ग्रस्त गाँवों का पारस्परिक वैमनस्य, बिरादरी वालों की अड़ेवाजी एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी का संघर्ष, दरोगा, पुलिस और चौकीदार आदि के हथकण्डे और रिश्वतखोरी तथा निम्नवर्गीय नैतिक-नियम की सहज-स्वाभाविकता एवं उच्च वर्गीय नीति-नियमों से परिपालित मध्य-वर्गीय रीति-रिवाजों के खोखलेपन का स्वरूप भली-भाँति " गंगा मैया " में चित्रित हो पाया है ।"[1]

गंगा की कुंवारी धरती पर जमीन्दारों का आधिपत्य है । मटरू सिंह इस बात को सहन नहीं कर पाता । वह इस धरती पर किसानों के आधिपत्य का आकांक्षी है । वह सोचता है कि गंगा मैया उसकी और उसके जैसे अनेक किसानों की जीवन प्राण है । मटरू जेल के अस्पताल में गोपी से कहता है -- " गंगा मैया की धरती पर भी उन्होंने [जमीन्दारों ने] अनाचार करना शुरू कर दिया । अन्याय न देखा भैया, मर्द होकर माँ की छाती पर मूंग दलते देखूं, यह कैसे होता ? गंगा मैया को

1· डा॰ प्रभातचन्द्र शर्मा - प्रगतिवाद और हिन्दी उपन्यास - साहित्य सदन - देहरादून - 1967 - पृ॰ 396·

छाती पर मेड़े न खिंचें । वह सब का बराबर का अधिकार है । जमीन्दार उसे हड़पकर, वहा अपनी जमीन्दारी कायम करा के लगान वसूल करना चाहते हैं, यही मुझे पसन्द नहीं । गंगा मैया भी क्या किसी जमीन्दारी में है गोपी ? "।

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में जमीन्दारों की पूंजीवादी मनोवृत्ति का यथार्थ चित्रण लेखक ने प्रस्तुत किया है ।

---

1. भैरव प्रसाद गुप्त - गंगा मैया - राजकमल प्रकाशन - दिल्ली - 1953 - पृ॰ 51 - 53.

4.4. निष्कर्ष :-

19 वीं शताब्दी के आरम्भ में विभिन्न धार्मिक एवं राजनीतिक कारणों से समाज में हो रहे विभिन्न परिवर्तनों एवं जड व आस्थाहीन सामाजिक, धार्मिक परम्परा का विरोध होने से नई परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई । इन परिस्थितियों का प्रभाव हिन्दी उपन्यास पर पड़ा । इन नूतन, जटिल सामाजिक परिस्थितियों को चित्रित करने के लिए उपन्यास की विभिन्न प्रवृत्तियों का उदय हुआ । वे हैं सामाजिक यथार्थवादी, व्यक्तिवादी, मनोविश्लेषणवादी, आंचलिक, व्यंग्यात्मक, ऐतिहासिक आदि उपन्यास । उपन्यास का झुकाव पहले से भी यथार्थ के ओर रहा । इस युग के उपन्यासकारों ने समकालीन समस्याओं जैसे धर्माडम्बर, विधवा समस्या, अछूतों की समस्या, वेश्यावृत्ति समस्या, पूंजीवादी आर्थिक विषमता से उत्पन्न समस्याओं तथा उनकी प्रतिक्रिया आदि का अपने उपन्यासों में चित्रण किया । कुछ ने इन समस्याओं का समाधान भी प्रस्तुत किया ।

-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-

पंचम अध्याय

तेलुगु उपन्यास का विकास : समाजशास्त्रीय विवेचन

-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-

तेलुगु उपन्यास का विकास : समाजशास्त्रीय विवेचन

तेलुगु साहित्य के विकास का आरम्भ उन्नीसवीं शती की तीसरी शताब्दी में हुआ । यह समय भारतदेश के इतिहास, समाज और साहित्य में भी अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं परिवर्तनशील रहा है । इस युग की समस्त प्रवृत्तियाँ व परिस्थितियों जैसे राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक आदि का प्रभाव तेलुगु साहित्य पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है ।

5·1· परिस्थितियाँ एवं परिवर्तन की प्रक्रिया :-

भारतीय जनता द्वारा मांटेग्यू-चेम्सफ़ोर्ड के प्रस्तावों की भर्त्सना तथा सन् 1914-18 के प्रथम महायुद्ध ने लेखकों को अत्यन्त प्रभावित किया था । 1919 के जालियनवाला बाग के हत्याकांड तथा चौराचौरी तथा चम्पारन के सत्याग्रह ने जनता को उत्तेजित

तथा प्रभावित किया था । भारतीय स्वतंत्रता के आन्दोलन के राष्ट्रपिता गाँधी द्वारा नेतृत्व ग्रहण करते ही राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों में अप्रत्याशित परिवर्तन आया । उन्होंने अपने निर्माण कार्यक्रम द्वारा तथा सत्य और अहिंसा नामक अस्त्रों द्वारा तथा स्वतंन्त्रता के पांचजन्य से विदेशियों को ललकारा । उनके कारण राष्ट्रीय आन्दोलन देश के कोने कोने में पहुँचा और देशवासियों को उत्तेजित कर उन्हें स्वतन्त्रता की ओर उन्मुख बनाया ।

महात्मा गाँधी ने हिन्दू समाज के सवर्ण-अवर्णादि भेद तथा हिन्दू-मुस्लिम, सिख, पारसी, ईसाई आदि भेदों को मिटा कर समस्त भारतीय जनता को एक सूत्र में पिरोकर, असहयोग आन्दोलन का मार्ग दिखा कर विदेशी शासकों को भारतीय जनता की माँग पर विचार करने के लिए विवश किया । महात्मा-गाँधी की वाणी देश भर में प्रतिध्वनित हुई और देश की जनता स्वतंत्रता के समरांगण में कूद, देश को परतन्त्रता की बेड़ियों से मुक्त करने के लिए अपना सर्वस्व निछावर करने लगी ।

आन्ध्र जनता ने भी उस राष्ट्रीय नेता के पदचिह्नों पर चलकर, असहयोग आन्दोलन के द्वारा स्वतंत्रता समर में अग्रणी बन अपने धैर्य-साहस तथा शक्ति-सामर्थ्य को प्रदर्शित किया । उस समय आन्ध्र समाज में कई परिवर्तन आये । सामाजिक परि -

स्थितियाँ बदल गयीं । उस समय आन्ध्र की सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों तथा आन्दोलनों का चित्रण करते हुए प्रमुख देश भक्त तथा नेता श्री उन्नव लक्ष्मीनारायण पन्तुलु ने " मालपल्ली " नामक सामाजिक उपन्यास की रचना की है । यह आन्ध्र के उपन्यास-साहित्य की सर्वश्रेष्ठ रचना है । यह उपन्यास महात्मा गाँधी के राजनीतिक सिद्धान्तों तथा पवित्र विचारों की विजय पताका है । श्री लक्ष्मीनारायण ने उसे युग के ग्रामीण जीवन का तथा उस जीवन के उतार-चढ़ाव, ईर्ष्या-द्वेष, हरिजन तथा उनकी समस्याओं, उनके उद्धार के लिये किये गये समाज सुधारकों के प्रयत्न आदि का प्रतिभायुक्त तथा सरस चित्रण किया है । यह उपन्यास सचमुच अपने ढंग का अकेला है । " संघ विजयमु " इसका दूसरा नाम है । रामदास का आश्रय " माल - पल्ली " इसका दूसरा नाम है । रामदास का आश्रम " मालपल्ली " ﴾ अछूतों की बस्ती ﴿ धार्मिक संघर्ष का स्थान है । संगदास द्वारा निर्मित " श्रीराम का मन्दिर " धर्म का निलय है । नवजीवन के निर्माण का विधान और ग्रामीण जीवन के विकास का " मालपल्ली " समग्र चित्र प्रस्तुत करता है । मालपल्ली का मंगला पुरमु मानव धर्म के मंगल का आवास है । इस उपन्यास में कर्मयोग भक्तियोगारूढ हो अत्युत्तम मानव धर्म का विधायक बना है । रामदास, महालक्ष्मम्मा, रामानायुडु, संगदासु, ज्योति आदि मानव धर्म का निर्वाह करने वाले आदर्श चरित्र हैं ।

" मालपल्ली " में सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक परिवर्तनों का समयोचित तथा सरस वर्णन किया गया है । इस में उस युग के आन्ध्र के जनजीवन का, जो राष्ट्रीय आन्दोलन के कारण जागृत हुआ था, समग्र चित्रण है । अतः यह उस युग का जीता-जागता दर्पण ही कहा जा सकता है ।

इस युग के तेलुगु उपन्यास क्षेत्र में श्री विश्वनाथ सत्यनारायण, अडवि बापिराजु, गुडिपाटि वेंकटचलम् आदि उल्लेखनीय हैं । ये तीन लेखकों ने तीन विभिन्न प्रवृत्तियों के प्रतिनिधि हैं । उन्होंने अपने अपने युग के विविध प्रभावों को ग्रहण कर अपने विशिष्ट दृष्टिकोण से कई उपन्यास प्रस्तुत किये हैं । समकालीन राष्ट्रीय आन्दोलन, सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों से वे पूर्ण प्रभावित हुए थे । श्री विश्वनाथ सत्यनारायण ने पाश्चात्य सम्पर्क के प्रभाव से भारतीय संस्कृति के गौरव को भुलादेने वाले भारतीयों के समक्ष भारतीय संस्कृति तथा धर्म की महानता को सोदाहरण और तर्क युक्त रूप में प्रस्तुत किया । आर्ष परम्पराओं की महत्तर विशिष्टता, पवित्रता, शक्ति-सामर्थ्य आदि को सहस्था समर्थन करने के लिए ही श्री विश्वनाथ सत्यनारायण ने उपन्यासों की रचना की है । उनके प्रत्येक उपन्यास में भारतीय संस्कृति तथा धर्म की महानता का मंडन और पाश्चात्य संस्कृति सभ्यता तथा धर्म का खंडन है । समग्र दृष्टि - विधान को समझ-बूझ कर, उन्होंने अपने विशिष्ट दृष्टिकोण से

उपन्यास-रचना प्रारम्भ की थी । उनकी विचार-शक्ति परम्परा-परक तो है, पर है सर्वथा मौलिक । तदनुसार " एकवीरा " से लेकर " पुनर्जन्म " तक उन्होंने हमारी धार्मिक व्यवस्था तथा सनातन धर्म का प्रबल समर्थन किया है । प्रत्येक उपन्यास में किसी एक दृष्टिकोण से भारतीयता की विशिष्टता का समर्थन किया है । " वेयिपडगलु " (सहस्त्र फण) में भारतीय धर्म की सहस्र मुखों से, सहस्र दृष्टियों से व्याख्या की है । इसलिए यह रचना " विश्वकोश " मानी जाती है । तीन पीढ़ियों का चित्रण करने वाला यह उपन्यास आन्ध्र-जन-जीवन का अनुपम दर्पण है तथा विगत तीन शक्तियों के इतिहास की श्रेष्ठ व्याख्या है ।

श्री अडवि बापिराजु पूर्णतया आदर्शवादी थे । उनकी दृष्टि कलात्मक, सौन्दर्यात्मक तथा सर्जनात्मक रही है । उनके उपन्यासों में राष्ट्रीय आन्दोलन तथा आन्ध्रत्व का प्रभाव दिखाई पड़ता है । उन्होंने आन्ध्र के इतिहास का, प्रसिद्ध कला केन्द्रों का इस तन्मयता से वर्णन किया है कि पाठक मुग्ध हो जाता है । प्राचीन गौरव गरिमा का अत्यन्त रमणीय और प्रभावशाली वर्णन करके उन्होंने जनता के हृदय में आन्ध्रत्व के प्रति अभिमान को जागृत किया है ।

श्री गुडिपाटि वेंकटाचलम् के आगमन से तेलुगु उपन्यास के क्षेत्र में एक झंझावात उठ खड़ा हुआ । इन्होंने सामाजिक रीति-नीति, अन्धविश्वास, गुलामी, यौनदासता, परतन्त्रता, नारी की स्वेच्छाहीनता इत्यादि का बड़ी निर्भीकता के साथ भण्डा-फोड़ करते हुए कलम चलायी तथा उन्मुक्त प्रणय का प्रचार किया । प्रधान रूप से उन्होंने वैवाहिक-व्यवस्था पर आक्रमण किया और स्त्री-पुरूष की स्वेच्छा प्रवृत्ति तथा प्रेमतत्व का समर्थन करते हुए अनेकों रचनाएं की । पतित तथा अनाथ स्त्रियों की दुर्दशा देख कर उनका हृदय पिघल गया था और इसीलिए उन्होंने उन स्त्रियों की मानसिक व्यथा का दिल खोल कर वर्णन किया ।

सन् 1940 के बाद आन्ध्र के उपन्यास पर एक नया प्रभाव पड़ा । नमक सत्याग्रह, द्वितीय महायुद्ध, " भारत छोडो " आन्दोलन, एम॰एन॰राय के तात्त्विक सिद्धान्त और मानववाद ने इस पीढ़ी के लेखकों को अत्यधिक प्रभावित किया । मनोविज्ञान के सिद्धान्त तथा अति यथार्थवाद को आधार बनाकर यूरोप और अमेरिका में लिखे गये प्रसिद्ध उपन्यासों का भी प्रभाव तत्कालीन उपन्यासों पर परिलक्षित होता है ।

इन परिस्थितियों के प्रभाव के कारण गोपीचन्द, जी•वी•कृष्णाराव, बुच्चिबाबु, रायकोण्ड विश्वनाथ शास्त्री, कोडवटिगण्टि कुटुम्बराव, उप्पल लक्ष्मीनारायण आदि लेखकों ने समाज तथा व्यक्तियों को नये दृष्टिकोण से देख कर, उनका परिशीलन कर, उनकी विभिन्न मानसिक प्रवृत्तियों का यथासाध्य चित्रण करते हुए उपन्यास लिखे हैं।

इसी समय में गोपीचन्द के हेतुवाद पर आधारित कुछ उपन्यास निकले हैं। इनके अनुसार मानव-जीवन की विजय का आधार उसका मनस्तत्व ही है। इनकी " असमर्थ की जीवन यात्रा " एक सफल उपन्यास है। इस उपन्यास ने आन्ध्र के उपन्यास-क्षेत्र में विशिष्ट परिवर्तन उपस्थित किया है।

श्री जी•वी•कृष्णाराव के उपन्यास " कीलु - बोम्मलु " (कठपुतलियाँ) में आन्ध्र के गाँवों के राजनीतिक पक्ष और उसके कारण होने वाले संघर्ष तथा उस संघर्ष के शिकार व्यक्ति एवं उनकी विचित्र मानसिक परिस्थिति आदि का प्रभावशाली चित्रण किया गया है।

श्री बुच्चिबाबु के " चिवरकु मिगिलेदि " (अन्त में क्या बचा) का तेलुगु उपन्यास क्षेत्र में विशिष्ट स्थान है। कई आलोचकों का मत है कि इस पर कई पश्चिमी उपन्यासों का

प्रभाव है । लेकिन बुच्चिबाबु ने इतिवृत्त का जिस प्रकार निर्वाह किया है, वह अत्यन्त प्रशंसनीय है । इस उपन्यास के पात्रों का चित्रण अत्यन्त मनोवैज्ञानिक ढंग से हुआ है । फ्रायड के सिद्धान्तों का इस उपन्यास पर स्पष्ट प्रभाव है । किन्तु यह सब होते हुए भी कथा का अन्त भारतीय वेदान्त के अनुकूल ही हुआ है ।

श्री राचकोण्डा विश्वनाथ शास्त्री के उपन्यास " अल्पजीवी " मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है । इस पर फ्रायड के सिद्धान्तों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है । श्री शास्त्री ने मानव की मानसिक प्रवृत्तियों की सूक्ष्मताओं का विशिष्ट शैली में चित्रण किया है ।

श्री कोड्वटिगण्टि कुटुम्बराव का " चदुवु " (पढ़ाई) उपन्यास जीवन के वास्तविक कार्यक्षेत्र में काम न आने वाली आजकल की शिक्षा-पद्धति पर कटु व्यंग्य करता है ।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद देश की राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों में परिवर्तन आया है । अब जनता को राजनीतिक रूप में जागृत करने की अथवा विदेशी शासन के प्रति स्वतन्त्रता के लिए विद्रोह करने के लिए उभाड़ने की आवश्यकता नहीं रह गयी थी । किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जिस

रामराज्य की कल्पना की गयी थी, वह आज तक भी कल्पना का विषय बना हुआ है । इससे प्रजा तथा लेखकों में एक प्रकार की निराशा उत्पन्न हुई है और निराशा तथा असन्तोष की ये ही भावनाएँ, स्वतन्त्रता के बाद की रचनाओं में प्रतिबिम्बत हुई हैं।

स्वतन्त्रता के बाद कांग्रेस के प्रतिद्वन्द्वी के रूप में देश में अनेक पार्टियाँ जड़ जमाने लगीं । इन पार्टियों में साम्यवाद, समाजवाद, जनसंघ, कृषिकार, लोक पार्टी, स्वतन्त्र पार्टी आदि मुख्य हैं । उन पार्टियों के सिद्धान्त तथा कार्यक्रम आदि का समर्थन करने के उद्देश्य से कुछ लेखकों ने उपन्यासों की रचना की है ।

साम्यवाद के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुए तथा किसान और मजदूरों के दैनिक जीवन की समस्याओं का अति - वास्तविक चित्रण करते हुए श्री महीधर राममोहनराव " ने रथचक्रालु " ﴾ रथ के चक्र ﴿, " ओनामालु " ﴾ ॐ नमः ﴿ आदि उपन्यासों की रचना की है ।

सन् 1947-48 तक तेलंगाना प्रान्त में नवाबी शासन, जमीन्दारी विधान तथा रजाकारों के विरोध में जनता के संघर्ष तथा आन्दोलन का चित्रण करते हुए श्री वट्टिकोट अल्वारु स्वामी ने " प्रजल मनिषि " ﴾ जनता का आदमी ﴿ नायक उपन्यास की

रचना की थी । इन्होंने सचमुच जनता के मनुष्य थे । प्रजा जीवन की वेदनाओं ने उन्हें आन्दोलित तथा विचलित कर दिया । इसका परिणाम स्वरूप " प्रजल मनिषि " है । श्री कवि राज मूर्ति के " मैं गरीब हूँ " में भी साम्यवादी सिद्धान्त, समाजवादी आन्दोलन, रजाकारों के अत्याचारों का जीता-जागता चित्रण किया गया है ।

सन् 1950 से 1960 तक के इस दशाब्दी में उपन्यास - साहित्य की बाढ़-सी आ गई है । अनेकों पत्र-पत्रिकाएँ तथा प्रकाशन संस्थाएँ इसका मूल कारण हैं । इन असंख्य उपन्यासों में औद्योगिक विकास, मजदूर-किसानों की समस्याएँ, पंचवर्षीय-योजनाएँ, परिवार-नियोजन, पंचायती राज आदि अनेक नूतन विषयों से प्रभावित इतिवृत्तों के साथ प्रेम, विवाह, संयुक्त परिवार आदि पर आधारित कथानकों का ग्रहण हुआ है । प्रधान रूप से ये उपन्यास आर्थिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों के असन्तोष को व्यक्त करते हैं । स्वतन्त्रता प्राप्ती के बाद मध्य-वर्ग के प्राणियों की दशा दयनीय होती जा रही है । मध्यवर्ग की दैनिक समस्याओं को इतिवृत्त बनाकर कई उपन्यास लिखे गये हैं ।

इस दशक के उपन्यासकारों में "पिनिसेटि्ट" और " शारदा " उल्लेखनीय हैं । पिनिसेटि्ट ने अपने उपन्यास " दत्तत " (गोद जाना) में अमीर और गरीब परिवारों के असमानताओं का स्वाभाविक ढंग से चित्रित किया है । शारदा का

असली नाम नटराजन है । इनके उपन्यास " मंचि-चेड्डु " ‡ अच्छा-बुरा ‡, " अपस्वराल्लु " ‡ अपस्वर ‡, " येदिसत्यम " ‡ कौन सा सत्य ‡ आदि में इन्होंने बताया है कि किस तरह एक ईमानदार मनुष्य धीरे-धीरे पतित और भ्रष्ट होकर अपने जीवन बिताता है । इस समय के सामाजिक उपन्यास अधिक तर वर्ग-संघर्ष से समाज में उत्पन्न होने वाले समस्याओं से संबन्धित है । इन उपन्यासों के साथ-साथ पारिवारिक कथाओं से सम्बन्धित पोट्टुकूचि सांबशिव राव जी के " उदय किरणालु " कोम्मूरि वेणुगोपालराव जी के " पेन्कुटिल्लु " ‡ खपरैल ‡, पुराणम सूर्यप्रकाशराव जी के " जीवन गंगा ", " मारे मनुष्युलु " ‡ बदलते हुए मनुष्य ‡ आदि उपन्यासों में भी मध्यवर्गीय जीवन का सहज चित्रण मिलता है ।

5•2• उपन्यासों की प्रवृत्तियाँ :-

19 वीं शताब्दी के आरम्भ में भारत की राजनैतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों में अनेक परिवर्तन हुए । पाश्चात्य साहित्य और संस्कृतियों का प्रभाव, मुद्रणयंत्रों की व्याप्ति आदि के कारण शिक्षा पद्धतियों में और जनता के विचारों में बडा परि - वर्तन हुआ । तब तक काव्य रचना में डूबे हुए लेखकों की दृष्टि वास्तविकता की ओर घूमने लगी । फलत: तेलुगु लेखकों ने पाश्चात्य साहित्यिक प्रक्रियाओं को अपनाने लगे । इस प्रकार तेलुगु में आधुनिक साहित्यिक प्रक्रिया " उपन्यास " का आविर्भाव हुआ ।

तेलुगु उपन्यास साहित्य के विख्यात उपन्यासकारों जैसे नरहरि गोपाल कृष्णम्मा सेट्टि, वीरेशलिंगम पन्तुलु, कवीभट्ट ब्रह्मय्या शास्त्री, बोड्डपाटि वेंकट कुटुम्बराव, मोदीन नागभूषण शर्मा, पुल्लभोट्ल वेंकटेश्वर्लु, यंड्मूरि सत्यनारायण राव, आर. यस. सुदर्शनम आदि के परिभाषाओं को परखने के बाद यह कह सकते है कि उपन्यास मनुष्य की यथार्थ जीवन को कलात्मक ढंग से चित्रित करने वाली और समाज में व्यक्ति की आचार-विचारों को सहज ढंग से वर्णन करनेवाली एक साहित्यिक साधन कह सकते है ।[1]

आचार्य जी॰नागय्या जी ने समग्र तेलुगु उपन्यास साहित्य को पांच युगों में वर्गीकृत किया ।

1. प्रारम्भ युग (1872 ई से 1900 तक)
2. अनुवाद युग (1900 ई से 1920 तक)
3. विकास युग (1920 ई से 1942 तक)
4. मनोवैज्ञानिक युग (1942 ई से 1960 तक)
5. समकालीन युग (1960 ई से आजतक)

---

1. तेलुगु साहित्य समीक्षा, आचार्य जी॰नागय्या - नव्यपरिशोधक प्रचुरणलु - तिरुपति - द्वि॰ सं॰ - 1985 - पृ॰ 809.

तेलुगु उपन्यास साहित्य के आरम्भ युग को वीरेशलिंगम के युग कह सकते है । इस युग के उपन्यासों के कथोपकथन, निर्माण शिल्प आदि पर आंग्ल साहित्य का प्रभाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में दिखाई देता है । आरम्भिक दशा में उपन्यास समाज सुधार, राजनैतिक आन्दोलन, जाति के जीवन विधान आदि के चित्रण में उपयोगी रही ।

अनुवाद युग में पश्चात्य संस्कृति से प्रभावित तेलुगु लेखकों ने उस साहित्य को अनूदित किये । बाद में जातीय आन्दोलन विषयक बंगला उपन्यासों विशेषकर बंकिमचन्द्र चटर्जी जी आदि के अधिकतर अनूदित हुए ।

विकासयुग में जातीय आन्दोलन ने तीव्र रूप धारण किया । जाति के जीवन विधानों में परिवर्तन हुआ । फलत: उपन्यासों में राजनैतिक परिस्थितियों का चित्रण होने लगा । इसी युग में उन्नव लक्ष्मी नारायण, चलम, विश्वनाथ सत्यनारायण, अडीव बापिराजु, मोक्कपाटि नरसिंह शास्त्रि, मामिडिपूडि नरसिंह राव, श्रीपाद सुब्रमण्यशास्त्री आदि महान लेखकों के सामाजिक, व्यक्तिवादी, राजनैतिक, ऐतिहासिक, व्यंग्यात्मक उपन्यास प्रकाशित हुए ।

मनोवैज्ञानिक ढंग के उपन्यासों में मनुष्य के व्यक्तिगत भावों, मानसिक संघर्षणों आदि का सहज चित्रण हुआ । मनोविज्ञान विधानों पर आधारित पात्र चित्रण को प्रमुख स्थान देने वाले उपन्यासकारों में बुच्चिबाबु, गोपीचन्द, जी•वी•कृष्णाराव, रायकोण्ड विश्वनाथ शास्त्री आदि उल्लेखनी है ।

1950 के बाद मध्यवर्गीय स्त्री-पुरुषों के रुचि के अनुसार अनेक उपन्यास प्रकाशित हुए । इस दशक के सामाजिक उपन्यासों में वर्ग भेद के कारण उत्पन्न हुए सामाजिक समस्याओं का चित्रण हुआ । इस दशक के उपन्यासकारों में पिनिसेटि्ट, शारदा आदि उल्लेखनीय है । इस दशक के राजनैतिक उपन्यासों में आलवार स्वामी के " प्रजल मनिषि ", " गंगु " आदि उल्लेखनीय है । इन उपन्यासों में तेलंगाणा प्रान्त के राजनैतिक परिस्थितियाँ, प्रजा जीवन, भाषा की आँचलिकता आदि का आखों-देखा वर्णन प्रस्तुत किया गया ।

उक्त चार युगों के उपन्यास साहित्य को परखने के बाद उपन्यासों की प्रवृत्तिपरक अध्ययन की सुविधा के लिए उनका निम्नलिखित उपशीर्षकों में वर्गीकरण किया गया ।

5•2•1• सामाजिक उपन्यास :-

अभिव्यक्ति को कई नयी विधाओं के समान-चाहे गद्य में हो अथवा पद्य में - सामाजिक उपन्यास की रचना में भी कन्दुकूरि वीरेशलिंगम् पन्तुलु को ही वास्तव में मार्गदर्शक माना जाता है । तेलुगु का प्रथम उपन्यास और सामाजिक उपन्यासों में भी प्रथम माने जाने वाली " राजशेखर चरित्रमु " (सन् 1880 में प्रकाशित) इन्ही की कृति है । यह उपन्यास " गोल्डस्मिथ " के " विकार आफ वेकफील्ड " से प्रेरित रहे जाने पर भी किसी प्रकार कम महत्वपूर्ण नही है । इतिवृत्त के विस्तृत ढाँचे तथा नैतिक आकर्षण में शायद " विकार आफ वेकफील्ड " से " राजशेखर चरित्रमु " की कुछ समानता हो सकती है, किन्तु अपने विषय तथा शैली, चरित्र-चित्रण और सामाजिक पृष्ठभूमि आदि कई दृष्टियों से वह आन्ध्र की अपनी वस्तु बन गया है । इस उपन्यास में उस समय के आन्ध्र देश का समग्र रूप दिखाई देता है । सामाजिक जीवन भी सहज ढंग से चित्रित किया गया । उस समय समाज में प्रचलित दुराचार, अंधविश्वास आदि का भी चित्रण किया गया । इसका नायक राजशेखर, आन्ध्र देश के गोदावरी जिले के धवलेश्वरम् नामक गाँव के उच्च मध्यवर्ग के ब्रह्मण परिवार का सदस्य है । पुरोहित, पूजारी, वैद्य, याचक आदि लोग उनका तारीफ करके पैसे ऐंठते रहते है । स्वर्णविद्या सिखाने के आड से एक बैरागी उनके घर में कुछ दिन

रहता है । बाद में घर का पूरा सोना, चान्दी चुराकर भाग जाता है । राजशेखर निर्धन होता है । दरिद्र को भोगने के कारण जो अनुभव कमाता है उससे उनके ज्ञान चक्षु खुल जाते है ।

कन्दुकूरि वीरेशलिंगम पन्तुलु जी के बाद उनका शिष्य श्री चिलकमूर्ति लक्ष्मीनरसिंहम् पन्तुलु का नाम लिया जा सकता है । इन्होंने कई सामाजिक उपन्यास " रामचन्द्र विजयमु " एक निम्न मध्य वर्गीय संस्कृत परिवार के एक अभाग्य युवक रामचन्द्र की कारुणिक जीवन गाथा है । यह नैतिकता प्रधान उपन्यास है । उपदेशात्मकता, वर्णनात्मकता इसकी शैली के मूल तत्व है ।

तेलुगु उपन्यास साहित्य के इस प्रथम चरण के उक्त दोनों उपन्यासकार कंदुकूरि वीरेशलिंगम और चिलकमूर्ति लक्ष्मीनरसिंहम् के साथ-साथ विकास युग तक के विख्यात सामाजिक उपन्यासकार और उनके उपन्यास निम्नांकित है --

कंदुकूरि वीरेशलिंगम् पन्तुलु	-	राजशेखर चरित्रमु
चिलकमूर्ति लक्ष्मीनरसिंहम् पन्तुलु	-	रामचन्द्र विजयमु
उन्नव लक्ष्मीनारायण	-	मालपल्ली
अडवि बापिराजु	-	कोनेगि, नारायणराव
विश्वनाथ सत्यनारायण	-	वेयिपडगलु
कोडवटिगण्टि कुटुम्बराव	-	चदुवु
जी·वी·कृष्णाराव	-	कीलुबोम्मलु
बुच्चिबाबु	-	चिवरकु मिगिलेदि

मालपल्लि ॥ हरिजनों की बस्ती ॥ :-

उन्नव लक्ष्मीनारायण की " मालपल्लि " 1921 ई॰ में प्रकाशित हुआ । इसने निश्चय ही तेलुगु के उपन्यास क्षेत्र में एक नया सोपान बनाया दिया है । यह आन्ध्र के ग्रामीण जीवन के विकास-क्रम को काव्योचित रूप में प्रस्तुत करने वाला अन्यतम उपन्यास है । इस उपन्यास में वर्णित सेटिलमेंट ॥ सुधार केन्द्र ॥, जेल, अदालत पाठशालाएँ, पुलिस, खादी धारण, असहयोग, धार्मिक लूट-खसोट, स्वराज्य आन्दोलन आदि विषयों से सम्बद्ध अनेकानेक विवरण इस रचना को " सामाजिक अभिलेख "
का महत्व प्रदान करते हैं । इस उपन्यास में लेखक ने गाँधीवादी दर्शन को काव्योचित रूप देने का स्तुत्य प्रयास किया है । रामदास इस उपन्यास का नायक है जो एक अस्पृश्य जाती का कृषक है । वह स्थित प्रज्ञ है जिसने मानव जीवन की द्वन्द्वात्मक दुविधाओं से प्रतीत अपनी नितांत-साधना द्वारा अपने जीवन को निर्मल तथा निश्चल बनाया रखा । इसे पढ़ने से किसी भी पाठक को प्रेमचन्द की " कर्मभूमि " की याद आ जायेगी । अछूतों के प्रति जितने अत्याचार किये जाते हैं इस उपन्यास में उन सभी अत्याचारों की विवरणात्मक व्याख्या मिलती है । इसी व्याख्या में लेखक ने अत्यंत सतर्कता से साम्यवादी चेतना का प्रतिपादन किया ।

कोंनंगी :-

अडीवि बापिराजु एक बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्य-कार है। इन्होंने सामाजिक उपन्यासों के साथ-साथ ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे हैं। इनके सामाजिक उपन्यासों में " कोंनंगी ", " नारायणराव ", " तूफान " प्रमुख है। कोंनंगी बापिराजु का सर्वोत्कृष्ट उपन्यास है। इसमें निम्न मध्य वर्गीय आदर्शवादी युवक की कहानी अंकित है।

नारायणराव :-

" नारायणराव " अडीवि बापिराजु का दूसरा सामाजिक उपन्यास है। इसमें मनोविज्ञान का गहरा पुट भी शामिल है। नारायणराव का विवाह एक जमीन्दार की दुलारी बेटी शारदा से सम्पन्न होता है और वह दाम्पत्य जीवन में सफल नहीं होता। अभिजात्य वर्ग की लडकी शारदा के मन में मध्यवर्गीय परिवार से आये हुए नारायण राव के प्रति विमुखत्व का भाव उत्पन्न होता है। केवल ससुर को छोड कर ससुराल के अन्यलोग नारायण राव के पक्ष में नहीं है। इन विषम परि - स्थितियों में नारायणराव जितने संयम तथा चातुर्य से शारदा के मन में स्थान पा सका, उन सारे प्रयत्नों का चित्रात्मक उल्लेख ही नारायण राव है।

<u>वेयिपड्गुल (सहस्रफण) :-</u>

श्री विश्वनाथ सत्यनारायण ने अनेक उपन्यास लिखे, जिनमें " वेयि-पड्गलु " आन्ध्र की सांस्कृतिक, सामाजिक एवं धार्मिक विशेषताओं का परिचय करानेवाला है । यह रचना मन्दिरों तथा तत्सम्बन्धी धार्मिक रूढ़ियों को प्राधान्य देने वाले प्राचीन पीढ़ी के लोगों को मनोवृत्तियों तथा वृत्तान्तों को आकर्षक रूप से चित्रित करती है । इस प्रतीकात्मक उपन्यास में रामेश्वर शास्त्री हिन्दू धर्म तथा संस्कृति के समग्र महत्व के परम प्रतिनिधि माने जा सकते हैं । उसका पुत्र धर्मराव प्रतिकूल परिस्थितियों में भी पिता के आदर्शों को यथातथ्य रूप में अनुसरण करने का प्रयत्न करता है । धीरे-धीरे देश को आक्रान्त करने वाली विदेशी सभ्यता की बाढ़ का उसे सामना करना पड़ा । विदेशी शासन के प्रति जनता में जो विमुखता उत्पन्न हुई उसने जनता में देशभक्ति को प्रस्फुटित करने के साथ-साथ भारतीय संस्कृति की महानता की ओर भी आकृष्ट किया । असहयोग तथा स्वदेशी आन्दोलन इस उपन्यास के ताना-बाना बने हुए हैं इसमें राघव राव राष्ट्रीय भाव का मूर्तिमान प्रतीक है । राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति के साथ-साथ विस्मृत प्राय भारतीय परम्परायें पुन: जागृत होने लगीं । सत्यनारायण ने इस उपन्यास में उसे बड़ी ही प्रतिभा के साथ चित्रित किया है ।

पट्टु (पढ़ाई) :-

श्री कुटुम्ब राव ने छोटे-छोटे अनेक उपन्यास लिखें है, उन सब में " पट्टु " नामक इस उपन्यास का अपना विशिष्ट स्थान है । यह रचना दोनों महायुद्धों के मध्य परिवर्तनशील आन्ध्र समाज का चित्रण करती है । इस उपन्यास में बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक के प्रारम्भिक काल, जबकि गांधी जी का राष्ट्रीय आन्दोलन जोर पकड़ रहा था और तीसरे दशक की मुद्रास्फीति आदि को स्पष्टता, सरलता और संयम के साथ चित्रित किया गया है । उपन्यास का नायक सुन्दरम् का अध्ययन इतना विस्तृत है कि सब विषयों को वह अपने में समा लेता है । लेकिन वह अध्ययन उसे जीवन के संघर्ष के लिए तैयार करने में असफल हो जाता है । बचपन से ही साधुस्वभाव का सुन्दरम् जीवन और उसके कठिन संघर्ष से भयभीत हो, रूढ़ शिक्षा-पद्धति की आड़ ले कर, यथासाध्य जीवन-संघर्ष से दूर रहने का प्रयत्न करता है । अपने पुत्र के लिये भी उसी शिक्षा-पद्धति का प्रबन्ध उसे अत्यन्त सन्तोष देता है ।

कोलुबोम्मलु §कठपुतलियाँ§ :-

श्री·जी·बी·कृष्णाराव ने ग्रामीण दृश्य का सुन्दर चित्र उपस्थित किया है किन्तु उसका निराशावाद जो इक्के-दुक्के अनुभवों पर आधारित है, कभी-कभी पाठक को क्षुब्ध कर देता है ।

स्वतंत्रता के बाद हमारे गाँव किस प्रकार परस्पर के संघर्ष और राजनीतिक दलबन्दी के अड्डे बने हुए है, भोले-भाले जन उसमें किस प्रकार पिसते जा रहे है, अपराध करने वाले किस प्रकार बडे बन रहे है, यह उपन्यास इन सब वास्तविकताओं का समग्र चित्रण करता है । इसके साथ ही इस उपन्यास में इस दल-दल में फँसे व्यक्तियों के मानसिक संघर्ष को तथा इस अन्तर्द्वन्द्व में निहित मानव स्वभाव को तात्विक रूप से प्रदर्शित किया गया ।

चिवरकु मिगिलेदि § अन्त में क्या बचा ? § :-

श्री बुच्चिबाबु प्रतिभा सम्पन्न तथा रसज्ञ कलाकार है जिनके मन में रूढिवादिता के प्रति प्रेम नहीं है । बुच्चिबाबु के इस उपन्यास का कथानायक "दयानिधि" एक आदर्शवादी, स्वप्न में विचरण करनेवाला तरुण है, जो अन्ततः वास्तविकता को स्वीकार कर समाज तथा जीवन से समझौता करने का प्रयास करता है ।

5·2·2· मनोवैज्ञानिक उपन्यास :-

सन् 1940 के बाद आन्ध्र के उपन्यास पर एक नया प्रभाव पड़ा । नमक सत्याग्रह, द्वितीय महायुद्ध, " भारत छोडो " आन्दोलन, एम·एन·राय के तात्त्विक सिद्धान्त और मानवतावाद ने इस पीढ़ी के लेखकों को अत्यधिक प्रभावित किया । मनोविज्ञान के सिद्धान्त तथा अति यथार्थवाद को आधार बनाकर यूरोप और अमेरिका में लिखे गये प्रसिद्ध उपन्यासों का भी प्रभाव तत्कालीन उपन्यासों पर परिलक्षित होता है ।

इस प्रभाव के कारण सर्वश्री कुटुम्बराव, गोपीचन्द, जी·वी·कृष्णाराव, बुच्चिबाबु, रायकोण्ड विश्वनाथ शास्त्री, उत्पल लक्ष्मणराव आदि लेखकों ने समाज तथा व्यक्तियों को नये दृष्टिकोण से देखकर उनका परिशीलन कर, उनकी विभिन्न मानसिक प्रवृत्तियों का यथातथ्य चित्रण करते हुए उपन्यास लिखे हैं ।

कडवीटगण्टि कुटुम्बराव	-	लेधिपोइन मीनीष, कुलंलेनि पिल्ला
गोपीचन्द	-	असमर्थुनि जीवित यात्रा, परमेश्वर शास्त्री का वीलुनामा

जी·वी·कृष्णा राव	-	कोलुबोम्मलु
बुच्चिबाबु	-	चिवरकु मिगिलेदि
रावकोण्ड विश्वनाथ शास्त्री	-	अल्पजीवि
उत्पल लक्ष्मणराव	-	अतडु-आमे

लेचिपोइन मनिषि ॥ भटकी हुई औरत ॥ :-

श्री कोडवटिगण्टि कुटुम्बराव संस्कृत, आन्ध्र तथा अंग्रेजी आदि भाषाओं के अच्छे ज्ञाता हैं । इन्होंने असंख्य हृदयंगम कथाएँ नवलिकाएँ ॥छोटे उपन्यास॥ और नाटिकाएँ लिखी हैं । इनकी प्रज्ञा साथियों के सुख-दु:ख, राग-द्वेष, स्वनिर्मित समाज तथा उसके संयमन नियमों के कारण उत्पन्न कष्ट आदि का भली-भाँति अवगत कर, आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति से उनका परिशीलन अनुशीलन कर अत्यन्त सहानुभूति पूर्वक पात्रों की सृष्टि करने में समर्थ हुई है । प्रस्तुत उपन्यास " लेचिपोयिन मनिषि " में अतीव बुद्धिमान व्यक्ति, दूसरे दो व्यक्तियों को धोखा देने का षड्यन्त्र रचकर अन्त में स्वयं ही धोखा खा जाता है । दूसरों के लिए खोदे गये गड्ढे में स्वयं ही गिर जाता है ।

अस्मर्थीन जोवित यात्रा ‖ असमर्थ की जीवन यात्रा ‖ :-

मानव के मनस्तत्व चित्रण को प्रधानता देने वाले तेलुगु उपन्यासों में सर्व प्रथम उपन्यास श्री गोपीचन्द का " असमर्थ की जीवन यात्रा " है । अपने आदर्शों की सफलता के लिए अनुकूल परिस्थितियों से रहित समाज के मध्य जीवन-यापन करना न जानने वाले एक व्यक्ति के बाह्य अन्तर का संघर्ष ही इस उपन्यास का इतिवृत्त है । इस उपन्यास का नायक सीतारामाराव असमर्थ होने का कारण संसारिकता का परिज्ञान रखते हुए भी स्वयं को तदनुकूल ढालने में असमर्थ होता है । जहाँ टिकट दिया जाता है, वहाँ लोगों की भीड़ लगी रहती है और प्रत्येक व्यक्ति टिकेट लेने के लिए धक्का-मुक्की करता ही है । सीतारामा राव में सबके समान टिकट के लिए धक्का मुक्की में पिस कर, टिकट लाने का कौशल नहीं है । इसलिए वह सुचारू रूप में जीवन यापन करने में असमर्थ है । वह समझ लेता है कि संसार का हर एक आदमी उसे धोखा दे रहा है । जीवित रहने के लिए कुछ कठोरता और निर्लिप्तता की आवश्यकता है और उसमें इनका अभाव है । सुकुमार हृदय वालों तथा छोटी-मोटी घटना को देख आवेश में आने वालों को इस संसार में तकलीफों और मुसीबतों का सामना करना ही पड़ता है । धीरे-धीरे सीता रामाराव मानसिक सन्तुलन खो बैठता है और अन्त में वह श्मशान में, उसी क्षुब्धावस्था में विक्षिप्त बन आत्महत्या कर लेता है ।

कीलुबोम्मलु (कठपुतलियाँ) :-

श्री·जी·वी· कृष्णाराव की यह उपन्यास ग्रामीण आन्ध्रों के जीवन विधान का वास्तविक दर्पण है । स्वतन्त्रता के बाद आन्ध्र के गाँव किस प्रकार परस्पर के संघर्ष और राजनीतिक दलबन्दी के अड्डे बने हुए हैं, भोले-भाले जन उसमें किस प्रकार पिसते जा रहे है, अपराध करनेवाले किस प्रकार बडे बन रहे हैं इन सब वास्तविकताओं का इस उपन्यास की कथावस्तु चित्रण करती है । लेकिन यह केवल इन विषयों का वर्णन करनेवाला ही नहीं, पर इस फेर में फँसे कुछ व्यक्तियों के मानसिक संघर्ष को तथा इस अन्तर्द्वन्द्व में निहित मानव स्वभाव को तात्विक रूप में प्रदर्शित करनेवाला ग्रन्थ है ।

चिवरकु मिगिलेदि (अन्त में क्या बचा ?) :-

" असमर्थ की जीवन यात्रा " के बाद मनस्तत्व चित्रण को प्राधान्य देने वाला एक और उपन्यास है - बुच्चिबाबु का " अन्त में क्या बचा ? " । " असमर्थ की जीवन यात्रा " में कथानायक अपने से पूर्णत: विरुद्ध समाज में जीवित न रह पाकर अन्त में मर जाता है । परन्तु प्रस्तुत उपन्यास में कथानायक दयानिधि समाज के साथ अनेक प्रकार से संघर्ष करता है और वह लोक तथा मानव समाज के

मनोविज्ञान को समझकर अपने प्रति लोगों के किये गये अपकारों को उदार हृदय से क्षमा कर, परिस्थिति के साथ स्वयं को परिवर्तित कर, सफलता प्राप्त कर लेता है और इसीलिए यह उपन्यास सुखान्त हो जाता है ।

अल्पजीवी :-

श्री राचकोंडा विश्वनाथ शास्त्री के उपन्यास " अल्प - जीवी " इस शताब्दी के पाँचवें दशक में प्रकाशित विशिष्ट तेलुगु उपन्यास है । अभिव्यंजना शैली की नवीनता के कारण इस उपन्यास को तेलुगु उपन्यास साहित्य में अन्यतम गौरव प्राप्त है । युगीन चेतना धारा का यथातथा चित्रण के कारण यह उपन्यास तेलुगु के मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास में अद्वितीय माना जाता है । इस उपन्यास में भय, लोभ और काम पर आधारित कथा नायक के व्यक्तित्व का विकास तथा उसके अस्तित्व का मनोवैज्ञानिक चित्रण इस रूप में हुआ है कि पाठक इसे पढ़ कर चमत्कृत हो उठता है । हीन भावना ग्रस्त " अल्पजीवी " का यथातत्य चित्रण करने वाला यह मनोरम उपन्यास प्रबुद्ध आन्ध्र पाठकों द्वारा समादृत हुआ है ।

अतड्डु-आमे :-

19 वीं शताब्दी के पाँचवें दशक में प्रकाशित तेलुगु उपन्यासों में प्रस्तुत उपन्यास " अतड्डु-आमे " का एक विशिष्ठ स्थान है । इस उपन्यास का शिल्पविधि प्रशंसनीय है । यह उपन्यास डायरी शैली में लिखा गया है । नायक और नायिकाओं के दैनिक क्रियाओं का लेखनों के रूप में इस उपन्यास लिखा गया । इस उपन्यास शैली बहुत सुन्दर है । इस उपन्यास की नायिका शान्ता क्लोन मेरीस कालिज में प्रध्यापिका के रूप में काम करती रहती है, विदेश में बारिष्टर पढ़के लौटा हुआ चिदम्बर शास्त्री से उनका प्रेम-विवाह होता है । वे अपने पारिवारिक जीवन के घटनाओं को अपने-अपने डैरीयों में लिख लेते है, इस घटनाओं का समिष्ट रूप ही " अतड्डु-आमे " उपन्यास है ।

5·2·3· हास्यरसात्मक उपन्यास :-

19 वीं सदी के आखिरी दशक में श्री वीरेशलिंगम पन्तुलु ने कहानी, उपन्यास, नाटिका, नाटक निबन्ध आदि की रचना करते हुए आन्ध्र वाङ्मय का श्रीगणेश किया है । इसके साथ ही तेलुगु के प्रथम हास्य उपन्यास का उन्हीं के हाथों रचा जाना बडे हर्ष का विषय है । उस समय तेलुगु में हास्यरस प्रधान रचना का अभाव देखकर, उस अभाव की पूर्ति के लिए पन्तुलु जी ने कुछ अनुवाद तथा मौलिक रचनाएँ कीं । उनमें प्रधान रचना है " सत्यराज की पूर्व देश की यात्राएँ ।"

प्रारम्भ में समाज सुधार के साधन के रूप में गृहीत हास्यरसात्मक उपन्यास धीरे-धीरे शुद्ध हास्य रचना के रूप में परिणत हो उत्कृष्ट बन गया । श्री वीरेशलिंगम के साथ-साथ उनके बाद के उल्लेखनीय हास्यरसात्मक उपन्यासकार और उनके उपन्यासों का परिचय निम्नांकित है ।

श्री वीरेशलिंगम पन्तुलु	-	सत्यराज की पूर्वदेश की यात्राएँ
चिलकमूर्ति लक्ष्मीनरसिंहम	-	गणपति
भोगराजु नारायण मूर्ति	-	पंडुग कट्नम
मोक्कपाटि नरसिंह शास्त्री	-	बारिस्टर पार्वतीशम
मुनिमाणिक्यम	-	कान्तम
कोडवटिगन्टि कुटुम्बराव	-	कोत्त कोडलु, कोत्त अल्लुडु
मुल्लपूडि वेंकटरमण	-	बुड्डुगु

<u>सत्यराज की पूर्व देश की यात्राएँ</u> :-

श्री वीरेशलिंगम पन्तुलु कृत उपन्यास " सत्यराज की पूर्व देश की यात्राएँ " तेलुगु के प्रथम हास्यरसात्मक उपन्यास है । यह उपन्यास जोनाथन स्विफ्ट की अंग्रेजी उपन्यास " गलीवर की यात्राएँ " का अनुसरण होने पर भी एस नहीं लगता अपितु मौलिक रचना के समान अत्यन्त प्रभावशाली बन कर हमारा ध्यान आकर्षित करता है ।

यह उपन्यास का नायक सत्यराज एक ब्रह्मण युवक और ब्रह्मचारी है । वह आन्ध्र प्रदेश में पैदा होकर, वहीं सयाना हो कर, संस्कृत, आन्ध्र तथा ज्योतिष में प्रावीण्य प्राप्त करता है । वह देश भ्रमण की इच्छा से दक्षिण देश की ओर निकल पड़ता है । वह मद्रास पहुँचता है । रेल में धोखा खाकार खाली हाथ किसी गाँव में जा पहुँचता है । वहाँ किसी मान्त्रिक के मन्त्रो - पदेश के प्रभाव से दुर्भेद्य रहस्यमार्ग द्वारा " आड मलयालम् " पहुँच जाता है । वहाँ का सारा वातावरण उसे पूर्णत: अपने देश के विपरीत प्राप्त होता है । हमारे देश की स्त्रियों के दुर्दशाएँ उस देश में पुरुषों के भाग्य में बडी थीं और वे सब अत्यन्त सहज तथा स्वाभाविक-सी अनुभव की जाती हैं । वह कुछ स्त्रियाँ उस पर प्रेम सुधा बरसाने का प्रयत्न करती हैं, और वह उस आफत से बच निकलने का सफल प्रयास करता है । जान बचाकर वहाँ से भाग निकलने वाला वह ब्रह्मचारी, वहाँ से घर न जा कर, लंका जाता है । वहाँ उसकी भेंट राक्षसों के समूह से होती है । वहाँ के लोग उसे तोते के समान पिंजडे में रखते हैं । अंगूठे के समान होने पर भी उसकी किसी विशेषता को देखकर कोई राक्षस कन्या उससे प्रगाढ़ प्रेम कर विवाह कर लेने का प्रयत्न करती है । सत्यराज किसी तरह उनके हाथों से छूट कर अपने प्राणों को बचाने में सफल होता है ।

यह उपन्यास अंग्रेजी उपन्यास " गलीवर की यात्रायें " के समान आकर्षण न रख सका । इसके दो कारण है । एक तो यह उपन्यास " ग्रान्धिक भाषा " में लिखी होना, दूसरा समाज सुधार को ही मुख्य स्थान दिया जाना । उपर्युक्त दोनों कमियों के कारण ही पन्तुलु जी की रचना का जितना समादर होना चाहिए था उतना नही हुआ ।

गणपति :-

कन्दुकूरि के पश्चात् आन्ध्र उपन्यास साहित्य की दिशा को ओर एक तरफ खींचने वालों में चिलकमूर्ति लक्ष्मीनरसिंहम पन्तुलु अग्रगण्य है । उस समय के समाज-सुधारक आन्दोलनों ने उन्हें हास्य-रसात्मक उपन्यास प्रणयन की प्रेरणा दी और परिणाम-स्वरूप गणपति नामक उपन्यास प्रकाश में आया । उन दिनों में वह श्रेष्ठ हास्य रसात्मक उपन्यास के रूप में प्रसिद्ध और समादृत हुआ है । आज भी उसे पढ़कर आनन्दित होने वाले पाठक थोडी-बहुत संख्या में हैं ।

यह उपन्यास का नायक गणपति परम्परागत दरिद्रता से पीडित ब्रह्मण कुटुम्ब में उत्पन्न एक युवक है । गणपति के बचपन में ही उसके पिता स्वर्गस्थ हो जाते हैं । उनके पास न खाने को कुछ रहता है, न रहने को । उसके मामा उसे और उसकी माँ को कुछ दिन तक आश्रय देते हैं, पर गणपति के भोजन की मात्रा को

देख कर डर जाते हैं और अपना रास्ता देख लेने के लिए उसे घर से निकाल देते हैं । कुछ दिन कहीं रसोई बनाकर, कुछ दिन भीख माँग कर, तथा अन्य कष्ट झेल कर किसी प्रकार से माँ बेटे को बड़ा कर, उपनयन दिला, उसे अपने पाँवों पर खड़ा होने के लिए बिदा कर देती है । गणपति बिना किसी अन्तर और विचार के सभी प्रकार के छोटे-बड़े काम करता रहा जैसे श्राद्ध-भोजन, शववाहन, वेश्याओं के नाटक में श्रीकृष्ण देव का धारण, पटसार, में अध्यापन आदि । वह दीन इतने कष्ट झेलता और इतने नीच कार्य करता है कि अपना उपमान स्वयं बन जाता है । " उदर निमित्तं बहुकृतवेषम् " ही उसके आचरण का आधार है । इस उपन्यास में गणपति का अज्ञान और पेट्रपन आदि तो हमारे मन में उसके प्रति हास्य से बढ़कर दया ही उपजाते हैं । यही कारण है कि आज के प्रबुद्ध मानवतावादी पाठक को " गणपति " पढ़ कर, हँसी नहीं आती । यह उपन्यास भी ग्रान्थिक भाषा में लिखा गया और इसमें समाज सुधार को ही प्रमुख स्थान दिया गया है ।

पंडुग कट्नम (त्योहार का पुरस्कार) :-

श्री भोगराजु नारायणमूर्ति विजय नगरम् रियासत के दरबारी कवि और स्थानीय कालेज में तेलुगु के प्राध्यापक थे । वे अत्यन्त हास्यप्रिय व्यक्ति थे । इन्होंने प्रस्तुत उपन्यास " पंडुग कट्नम् " नामक सुन्दर तथा सरस काव्य की रचना की थी ।

सामाजिक इतिवृत्त पर आधारित इस काव्य को वे पद्यकाव्य के रूप में रचित उपन्यास कहते थे ।

प्रस्तुत उपन्यास में शरभराजु नामक अत्यन्त लोभी, दुराशा के कारण अपनी बेटी सीतम्मा का विवाह किसी एक वृद्ध के साथ करने का निश्चय कर लेता हैं । लेकिन उसकी पत्नी और पुत्री को यह रिश्ता पसन्द नही आता । परन्तु वह अपने निश्चय पर अटल रहकर, मुहूर्त आदि का निश्चय कर रिश्तेदारों को सूचना दे देता है । इतने में मानसिक वेदना के कारण सीतम्मा बीमार पड़ जाती है । माँ लड़की को अपने मामा के पुत्र में अनुरक्त जान कर उसे बुलाने की सलाह देती है । उसे निमंत्रित करते हुए पत्र लिखा जाता है । इतने में एक स्वामीजी आते हैं और यह जिद पकड़ कर उनके यहाँ डेरा डालते हैं कि चरण पूजा कराये बिना नहीं जाऊँगा । इस झंझट से बचने के लिए शरभराज घर में छिप कर बैठ जाता है । तभी शरभ राजु की पत्नी के मन में एक विचार आता है । वे बाल विवाह के दिन थे । इस लिए वह झूठ-मूठ पति से कहती है कि लड़की सयानी हो गयी है । यदी अब भानजे के साथ उसकी शादी न की गयी तो जग हँसाई होगी । इससे डर कर शरभराजु अपने भानजे के साथ उसकी शादी कर देता है । इस प्रकार इतिवृत्त को सुन्दर ढ़ंग से प्रस्तुत किया गया है । हास्य सरल और सरस है ।

प्रस्तुत उपन्यास में श्री नारयणमूर्ति जी हास्य के लिए अपने तेलुगु शब्दों के साथ अंग्रेजी शब्दों का प्रचुरता से मिश्रण किया है। इस प्रकार के " भाषा-संकार्य " से साधारणत: हास्य की उत्पत्ती नहीं होती और यदि होती भी है तो उसे उत्तम नहीं माना जाता। किन्तु लेखक ने पूज्य श्री गुरजाड अप्पाराव के चरण चिह्नों का ही अनुसरण किया है। उनका वह प्रयोग उस समय के लिए नया और विचित्र तो था ही, उत्कृष्ट मनोरंजन का साधन भी था।

बारिस्टर पार्वतीशम :-

श्री मोक्कपाटि नरसिंह शास्त्री हास्य प्रधान उपन्यास - कारों में प्रथम तथा सिद्धहस्त लेखक हैं। इग्लेण्ड से लौटने वाले देशी जनों को पकड़ में न आने वाली बातों में मोक्कपाटि सर्वाधिक निपुण हैं। " बैरिस्टर पार्वतीशम् " का प्रथम संस्करण 1925 ई. में ही छप गया था और वह उस समय से लेकर आज तक पाठकों का मनोरंजन करता आ रहा है।

हास्य प्रधान पात्र का सर्जन, कथासूत्र का निर्वहण, पदे-पदे अस्वाभाविकता का निदर्शन, अकल्पनीय विकृति का दिग्दर्शन और सतत् भूलों का परिचय देते हुए भी अन्त में पूर्णत: स्वाभाविकता का बोध कराने वाली अतीत कुशलता के साथ लिखी गयी पुस्तक है " बारिस्टर पार्वतीशम् "।

प्रस्तुत उपन्यास का नायक पार्वतीशम् लन्दन जा कर बैरिस्टरी की परीक्षा पास करने की लालसा तथा अदम्य उत्साह से युक्त सनातन आन्ध्र ब्राह्मण परिवार का युवक है। अंग्रेजी विद्या के साथ प्राप्त होने वाले कई सद्गुणों का इसमें अभाव है। आज की सारी सभ्यता उसके लिए अजनबी है। जिसने कभी रेल भी न देखी हो, ऐसा युवक जब घर से निकल पड़ता है, तब स्वभावत: उसे पग-पग पर विपरीत परिस्थितियों का सामना कर मूर्ख बनाना पड़ता है। रेल में उसका व्यवहार, जहाज में उसकी यातनाएँ, मद्रास आदि नयी जगहों पर उसकी उलझनें, सब इतनी कुशलता के साथ वर्णित हैं कि पाठक तदात्म्य स्थापित कर स्तब्ध सा रह जाता है। अनेक स्थानों पर हँसी से लोट-पोट हो जाना भी आवश्यक हो जाता है।

पार्वतीशम् स्वभावत: मूर्ख नहीं है, परिस्थितियाँ उसे मूर्ख बना कर उसका मजाक उड़ाती रहती है। सम्भवत: पार्वतीशम् की अपेक्षा हमने कहीं अधिक ऐसी अवस्थाओं का अनुभव किया हो। इसीलिए इस पात्र के साथ हमारी ममता, प्रेम तथा सहानुभूति बनी रहती है। और इसीलिए शायद यह पात्र हमारी शाब्दीय सम्पत्ति बन गया है।

कान्तम् :-

उपन्यास साहित्य के कथानायकों में सर्वश्रेष्ठ स्थान मोक्कपाटि जी के " पार्वतीशम् " का है तो कथा साहित्य की नायिकाओं में मुनिमाणिक्यम् की " कान्तम् " का । उपन्यासों में भी मुनिमाणिक्यम् का हास्य कोमल तथा सौम्य है । हास्य और करुण रस की पोषण में मोक्कपाटि और मुनिमाणिक्यम् का स्थान लगभग समान है ।

श्री मुनिमाणिक्यम् नरसिंहराव जी के " कान्तम कैफियतु (कान्तम को खबरें) " कान्तम् जीवितम् " (कान्तम का जीवन), " कान्तम् वृद्धात्यम " (कान्तम् की वृद्धावस्था) आदि रचनाओं को न पढ़ने वाला और पढ़कर आनन्द न प्राप्त करनेवाला आन्ध्र में नहीं है, इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नही है । इनका हास्य अतीव सहज तथा सरस है ।

कोत्त कोडलु (नई बहू) :-

श्री कोडवटिगंटि कुटुम्बराव संस्कृत, आन्ध्र तथा अंग्रेजी आदि भाषाओं के अच्छे ज्ञाता है । इन्होंने असंख्या हृदयंगम कथाएँ, नवलिकाएँ और नाटिकाएँ लिखी हैं । हास्य लेखक को संपूर्ण विशेषताएँ इनमें है । उनके " कोत्त कोडलु " (नई बहू), कोत्त अल्लडु " (नया दामाद), " लेचिपोयिन मनिषि "

§ भटकी हुई औरत §, बेदरिन मनुष्युलु " § घबराए मनुष्य §, " ब्रतुकु भयम " § जीवन का भय § आदि रचनाओं को मात्र एक बार पढ़ने वाला उन्हें हास्य रचनाएँ नही मानता । क्यों कि इनमें हास्य इतनी गहनता से अनुस्यूत है कि कई बार पढ़ कर भी पाठक यह पूछने पर बाध्य हो जाता है कि आखिर इनमें हास्य है कहाँ ?

प्रस्तुत उपन्यास का विषय आन्ध्र के विवाह विधान से सम्बन्धित है । आन्ध्र के विवाह विधान में पहली बात है, वर का वधू को देखने आना । इस रचना में स्वयं कन्या ही वर के घर यह पूछती आती है कि सुना है यहाँ कोई दूल्हा है, जो मुझ से शादी करना चाहता है । सबेरे-सबेर आयी हुई उस कन्या को देख कर घर भर के लोग हड़बड़ा उठते हैं । वह की माता उसी क्षण निश्चय कर लेती है कि जो यह कन्या मेरी बहू नहीं बन सकती । धीरे-धीरे वह इस अवस्था में पहुँच जाती है कि जहाँ उसका मन प्रश्न करता है कि यह मेरी बहू न बनी तो क्या होगा ? कथा बडी सुन्दर तथा आकर्षक गति से बढ़ती है किन्तु हँसी नहीं आती । परन्तु वही पुस्तक दो दिन बाद पुनः पढ़ने पर रचना सौन्दर्य, चमत्कार और हास्य को इस प्रकार अभिव्यक्त करने लगती है कि हम चमत्कृत हो जाते हैं ।

बुड्ग्यू § मुन्ना § :-

उक्त लेखकों के बाद उल्लेखनीय हैं श्री मल्लपूडि वेंकटरमण। वे अग्रणी हास्य रचयिता के रूप में प्रसिद्ध हुए हैं। इनकी " बुड्ग्यू " § मुन्ना §, " ऋणानन्द लहरी " § ऋण के आनन्द की लहरियाँ §, " इद्दरम्मायिलु-मुग्गुर अब्बायिलु " § दो लड़कियाँ-तीन लड़के §, आदि विद्वज्जन प्रशंसित एवं लोकप्रिय है।

प्रस्तुत रचना " बुड्ग्यू " में विस्तृत इतिवृत्त कल्पना अथवा चरित्र-चित्रण नहीं है। फिर भी पुस्तक इतनी रोचक होती है कि पाठक हाथ में लेकर समाप्त किये बिना उसे नही छोडता। प्रत्येक वाक्य हास्य रस से भरा रहता है। शब्दों में कुछ वर्णों को बदलना अथवा वाक्यों के शब्दों में हेरफेर करना, साधारण शब्दों के लिए नये अर्थ का स्फुरण कराना, पुरानी कहावतों को नये रूप में प्रयोग करना आदि तरह तरह के चमत्कार इस रचना में देख सकते है।

5•2•4• राजनैतिक उपन्यास :-

तेलुगु उपन्यास साहित्य में राजनैतिक उपन्यास कहने योग्य उपन्यासों में श्री उन्नव लक्ष्मीनारायण जी के " मालपल्लि " के बाद उप्पल लक्ष्मणराव जी का " अतडु-आमें " महीधर राम - मोहन राव जी का " रथ-चक्रालु ", " ओनमालु ", " दावानलमु ", श्री विश्वनाथ सत्यनारायण का " पुतुल सत्याग्रहमु " ﴾ बांधों का सत्याग्रह ﴿, स्व•वट्टिकोट आल्वारस्वामी का " प्रजल मनिषि " ﴾ जनता का आदमी ﴿ श्री शिवराम कृष्ण का " मृत्युंजयुलु " श्री लक्ष्मीकान्त का " सिंह गर्जन " आदि उल्लेखनीय हैं।

अतडु आमे :-

1950 में प्रकाशित उप्पल लक्ष्मणराव के " अतडु-आमें " का तेलुगु उपन्यास साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। इस उपन्यास में आदि से लेकर अन्त तक नायक-नायिकाओं के दैनिक क्रियाओं को एक लेखन के रूप में लिखा गया। यह उपन्यास का शैली-शिल्प अद्वितीय है। एम•ए• उत्तीर्ण शान्ता क्वीन मेरीज कालिज में प्राध्यापिका के रूप में काम करती रहती है। विदेश में बारिस्टर पढ़कर लौटा चिदम्बर शास्त्री से उनका प्रेम-विवाह होता है। उनके पारिवारिक जीवन यात्रा में घटी हुई घटनाओं को वे अपनी-अपनी दृष्टिकोण के अनुसार उनके डैरियों में लिख लते है। यही इस

उपन्यास का विषय है । इस शती के दूसरे दशक के मद्रास की आधुनिक समाज, तेलुगु देश में हुए परिवर्तन, राजनैतिक परि - स्थितियाँ, चुनावों, खद्दर, गान्धी आन्दोलन अदालत, डाक्टरों, वकीलों उनके अमदानी आदि बहुत विषयों का इस उपन्यास में स्थान दिया गया है ।

रथ-चक्राल :-

श्री महीधर राममोहन राव के इस उपन्यास में साम्यवाद के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुए तथा किसान और मजदूरों के दैनिक जीवन की समस्याओं का चित्रण अतिवास्तविक रूप से किया गया है । रचना विधान में विशिष्टता न होने पर भी, इन उपन्यासों का विषय बड़ा ही हृदयग्राही बन पड़ा है ।

पुलुल सत्याग्रहम :-

स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन के अतिशय प्रभाव से मुक्त होकर उससे सर्वथा पृथक तथा विशिष्ट दृष्टिकोण प्रस्तुत करने वालों में विश्वनाथ सत्यनारायण प्रमुख हैं । इनका प्रस्तुत उपन्यास पुलुल सत्याग्रहम (बाघों का सत्याग्रह) एक ऊहात्मक उपन्यास है । इस उपन्यास में इन्होंने भाषा राजनैतिक परिस्थितियों का व्यंग्यात्मक

चित्रण प्रस्तुत किया है । इनका एक और उपन्यास " हा हा हू हू " भी इसी तरह का है ।

प्रजल मनिषि :-

श्री वट्टिकोट आल्वार स्वामी के सुप्रसिद्ध उपन्यास " प्रजल मनिषि " ‹जनता का आदमी› में सन् 1947-48 तक तेलंगान प्रान्त में नवाबी शासन, जमीन्दारी विधान तथा रजाकारों के विरोध में जनता के संघर्ष तथा आन्दोलन का वास्तविक चित्रण किया गया है । आलुवारु स्वामी सचमुच जनता के आदमी थे । प्रजा जीवन की वेदनाओं ने उन्हें आन्दोलित तथा विचलित कर दिया था । उसी मानसिक आन्दोलन का परिणाम ही " प्रजल मनिषि " है ।

मृत्युंजयुलु :-

बोल्लिमुंत शिवरामकृष्ण जी के उपन्यास " मृत्युंजयुलु " स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय ‹1947-48› का है । इस उपन्यास में तेलंगान प्रान्त के राजनैतिक परिस्थितियाँ जैसे नवाबी शासन, जमीन्दारी विधान, रजाकारों के विरोध में जनता के संघर्ष आदि का आँखों देखा वर्णन मिलता है ।

सिंहगर्जन :-

श्री लक्ष्मीकान्त मोहन जी के इस उपन्यास में तेलंगान आन्दोलनों का वास्तविक चित्रण किया गया है। इस उपन्यास का विषय वस्तु भी लग-भग उपरोक्त दो उपन्यासों का ही है।

5·2·5· ऐतिहासिक उपन्यास :-

इतिहास तथा उपन्यास इन दो शब्दों से निर्मित " ऐतिहासिक उपन्यास " शब्द से किंचित भ्रान्ति होती है। अतीत का पूरा विवरण इतिहास नहीं होता अपितु देश, समाज या व्यक्ति को प्रभावित करने वाली अतीत की घटनाओं का क्रमबद्ध आकलन इतिहास होता है। और जब इसी परिवेश में समुचित कल्पना का पुट देकर ऐतिहासिक कथानक प्रस्तुत किया जाता है तब उसी को ऐतिहासिक उपन्यास कहते है। ऐतिहासिक उपन्यासकार यथार्थ रूपी बीज को ग्रहण कर उसे कल्पना जाल से सींच कर, सुन्दर वाटिका सजाता है। कई समर्थ लेखकों के सुन्दर रचनाओं से आन्ध्र का ऐतिहासिक उपन्यास सुसम्पन्न है।

ईसा की 19 वीं शती के अन्तिम दशक में, उपन्यास के साथ-साथ ऐतिहासिक उपन्यास का भी आविर्भाव हुआ है। उस समय टॉड के संकलित तथा प्रकाशित " राजस्थान कथावली "

ने देश को आकृष्ट किया था । उस ग्रन्थ को आन्ध्र भाषा में अनूदित करने वाले श्री चिलकमूर्ति लक्ष्मीनरसिंहम ने " हेमलता " नामक प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास की रचना की है । उसके बाद शिवाजी आदि महाराष्ट्र वीरों के कथाएँ प्रचुर में आयी । चिलकमूर्ति ने होलकर राज्य से संबंधित " अहल्याबाई " नामक दूसरा उपन्यास लिखा । उसके बाद विज्ञान चन्द्रिका ग्रंथ मंडली वालों ने " हिन्दू महायुगमु ", " महम्मदीय महायुगमु ", " चन्द्रगुप्तडु ", " शिवाजी चरित्रमु " का प्रकाशन किया । श्री चिलकूरि वीरभद्रराव ने अत्यधिक श्रम कर " आन्ध्रुल चरित्र " का प्रकाशन किया । परन्तु इसके आधार पर रचना न कर मण्डली का प्रथम पुरस्कार प्राप्त करने वाले " विमलादेवी " के रचयिता श्री भोगराजु नारायण मूर्ति, " राणी संयुक्त " के लेखक श्री वेलाल सुब्बाराव आदि लेखक अपनी रचनाओं में राजस्थान के इतिहास पर ही आधारित रहे हैं ।

आन्ध्र प्रदेश के इतिहास से सम्बन्धित उपन्यास 1914 में प्रकाश में आये थे । इनमें श्री दुग्गिराल राघव चन्द्रय्या का " विजय नगर साम्राज्यमु " तथा श्री केतवरपु वेंकटशास्त्री का " रायचूरु युद्धमु " उल्लेखनीय हैं । तदनन्तर आन्ध्रों का इतिहास बहुत समय तक उपन्यासकारों को आकृष्ट नहीं कर पाया । इसके दो कारण है, एक तो आन्ध्र के उपन्यासकारों को राजस्थान तथा महाराष्ट्र की वीर गाथाएँ ही प्रिय रहीं दूसरा कुछ समय तक देश के मेधावियों के स्वतंत्रता-संग्राम में सक्रिय रूप से सलग्न रहने के कारण, रचयिताओं

की दृष्टि प्रधान रूप से कविता की ओर आकृष्ट हो गयी । इस काल में लिखे गए उपन्यास देशकाल से अपरिचित रचयिताओं की रचना का विषय होने के कारण वे उपन्यास नाम मात्र के लिए ही ऐतिहासिक हैं । उदाहरण के लिए -- वसुमतोवसन्तम् और ईश्वनी कुमारो इत्यादि ।

यहाँ तक तो ऐतिहासिक उपन्यास के प्रथम चरण का सर्वेक्षण हुआ है । तेलुगु ऐतिहासिक उपन्यास को प्रौढ़ता की ओर ले चलने वालों में श्री विश्वनाथ सत्यनारायण, अडिवि बापिराजु, नोरि नरसिंह शास्त्री आदि उल्लेखनीय हैं । इन महान लेखकों बाद आने वाले ऐतिहासिक उपन्यासकारों में नेल्लटूरि वेंकट रमणय्या, तेन्नेटि सूरि, मल्लादि वसुंधरा, धूलिपाल श्रीराममूर्ति, पिलका गणपति शास्त्री आदि उल्लेखनीय हैं । तेलुगु के मुख्य ऐतिहासिक उपन्यास निम्नांकित हैं --

श्रीविश्वनाथ सत्यनारायण	-	एकवीरा, बद्दन्न सेनानी, कडिमिचेट्टु
अडिवि बापिराजु	-	हिमबिन्दु, गोनगन्ना-रेड्डी
नोरि नरसिंह शास्त्री	-	नारायण भट्टु, रुद्रमदेवी, मल्लारेड्डी
नेल्लटूरि वेंकट रमणय्या	-	पाश्चात्ताप, छत्रग्राही, मधुमावती

तेन्नेटि सूरि	-	चेंघिजखान
मल्लादि वसुंधरा	-	तंजाउरू पतनमु, सप्तपर्णी, रामप्प गुडो
धूलिपाल श्रीराम मूर्ति	-	भुवन विजयमु, गृहराजु मेड
कोर्लपारि श्रीराम मूर्ति	-	चित्रशाला
पिलका गणपतिशास्त्री	-	मोनांबिका

एकवीरा :-

आन्ध्र ऐतिहासिक उपन्यासों को श्री विश्वनाथ सत्य - नारायण ने 1932 में अपनी " एकवीरा " द्वारा एक नया मोड़ दिया है । उसकी कथावस्तु यद्यपि तमिल देश से सम्बद्ध है, तथापि " मदुरै " पर राजा करने वाले आन्ध्र नायक राजाओं से सम्बन्धित होने के कारण आन्ध्रों के इतिहास से वह संबद्ध है । उसके प्रधान पात्र उन परिवारों के हैं, जो आन्ध्र से तमिल देश में प्रवास करने गये थे । उसमें मुद्दुकृष्णप्पा नायक की मृत्यु तथा उसके बाद तिरुमल नायक के सिंहासनासीन होने के समय की कथा है । इस उपन्यास में प्रधान कथा के दो मित्रों के पारिवारिक जीवन से संबद्ध होने पर भी उसमें प्रसंगवश उस समय की सामाजिक परिस्थिति, पुर्तगालियों के अत्याचार, लूट-खसोर, राबर्ट डि नोबिलि द्वारा " तत्व बोधक स्वामी " के नाम से ढोंगी सन्यासी के रूप में किये धार्मिक उपदेश, मंदिरों का शिल्प वैभव आदि सुन्दर ढंग से चित्रित है ।

<u>हिमबिन्दु</u> :-

श्री अडवि बापिराजु के लिखे तीन ऐतिहासिक उपन्यासों में " हिमबिन्दु " निस्सन्देह संसार के श्रेष्ठ उपन्यासों की सन्निधि में रखा जा सकता है । इनकी रचनाओं को पढ़ कर ऐसा जान पड़ता है मानो उनके बहुमुखी अनुभवपूर्ण आर्द्रहृदय ने ही " हिमबिन्दु " का रूप धारण कर लिया है ।

प्रस्तुत उपन्यास श्रीमुख शातवाहन चक्रवर्ती के समय का चित्रण करता है । चक्रवर्ती का आदर्श था अपने राज्य को चतुस्स - मुद्रवेलावलयित कर, धर्म को चारों चरणों पर सुस्थापित कर अपने राज्य को स्वर्ण धाम बनना । राजगुरु का आदर्श था शातवाहन राजवंश को निष्कल्मष बनाकर उससे सारे संसार पर शासन करा कर, यज्ञ-याग आदि वैदिक कर्मकांड से देवताओं को तृप्त करना तथा मानवशक्ति को महान सिद्धकर, वैदिक-धर्म का तिरस्कार करनेवाले बौद्ध और जैन धर्मों को जड़ से उखाड़ फेंक देना । अन्त में दोनों के आशयों की पूर्णता परिलक्षित होती है । किन्तु वह चक्रवर्ती की अन्य धर्मों के प्रति सहनशीलता का ही परिणाम है, न कि राजगुरु के धार्मिक द्वेष का ।

नारायण भट्टु :-

श्री नोरि नरसिंह शास्त्री ने आन्ध्रों के इतिहास की जाज्वल्यमान घटनाओं को लेकर सुन्दर ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की थी और आन्ध्रत्व तथा आर्ष संस्कृति के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करने का प्रयत्न किया था । नोरि ने कवित्रय के जीवन काल का वर्णन करते हुए " नारायण भट्टु " रुद्रमदेवी " तथा " मल्लारेड्डी " नामक तीन उपन्यासों की रचना की है ।

प्रस्तुत उपन्यास " नारायण भट्टु " का कथाकाल 1053 का है । उस समय उत्तर-भारत का वातावरण बड़ा विचित्र था । सारी शक्तियाँ आपसी फूट से छिन्न-भिन्न हो विदेशियों के आक्रमण के अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण कर रही थीं । उसी समय दूसरी ओर दक्षिण में चोल चक्रवर्ती दक्षिण भारत को एकच्छत्राधिकार में ला कर, भारतीय वैदिक रक्षा कर रहे थे । गंगा नदी तक विजय यात्रा करने वाले गंगैकोंडचोल के दामाद राजराजनरेन्द्र राजमहेन्द्रवरमु में राज्य कर रहे थे । उस समय आन्ध्र भूमि के बौद्ध संघ तथा बिहार षड्यंत्रों के आकार बन, राजनैतिक विप्लव के केन्द्र बनने लगे थे । समय पर उसका पता लगा कर सामान्य प्रजा के लिए दुर्बोध व्यासीय महाभारत के प्रतिपादित धर्म को जनता की भाषा में आन्ध्रीकृत कर, उसको पहुँच में लाने का प्रयत्न भी राजा ने किया था । इन सबके वर्णन के साथ यह उपन्यास समाप्त हो जाता है ।

मधुमावती, छत्राही :-

आन्ध्र के इतिहास-वेत्ताओं में सर्वमान्य डॉ॰ नेलटूरि वेंकटरमणय्या को " पाश्चात्तप ", " छत्राही ", " मधुमावती " आदि रचनाएँ बड़ी कहानियों के क्षेत्र में आती हैं, क्योंकि उनमें उपन्यास के लिए आवश्यक विस्तार का अभाव है । उन्होंने बड़े ही अनुकरणीय ढंग से यह दरसाया है कि इतिहास तथा कल्पना किस प्रकार संयुक्त किया जा सकता है ।

चेंघिजखान :-

भारतीय इतिहास की सीमाओं का अतिक्रमण कर लिये गये ऐतिहासिक उपन्यासों में श्री तेन्नेटि सूरि का " चेंघिज - खान " प्रथम तथा प्रधान है । यह उपन्यास सर्वांग सुन्दर रूप में कदम-कदम पर " गोबी " रेगिस्थान के वातावरण का चित्रण करते हुए, वहाँ की जनता के तीव्र राग-द्वेष का दिग्दर्शन कराता है ।

एक्का मंगोल जाति के मुखिया यासुके का मेर्किट समूह के सभी सदस्यों को तलवार के घाट उतार कर, वधू यूलन को जबर - दस्ती उठा लेजाने की घटना से उपन्यास का प्रारम्भ होता है । बहुत समय तक यूलन यासुके की पत्नी बनने के लिए राजी नहीं होती

परन्तु अन्त में भाई कराचर के उपदेश को मानकर यासुके की पत्नी बनने के लिए राजी हो जाती है और टेमूजिन को जन्म देती है। यासुके मंगोल के सभी कबीलों को एकता के सूत्र में आबद्ध कर केरेट के प्रभु तुग्रालखान को सहायता देने की सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है। एक दिन अकस्मात् यासुके शत्रुओं के धोखे में पड़ मारा जाता है। ऐसे समय में जबकि मंगोलों का संघटन फिर से विच्छिन्न होने वाला था, टेमूजिन शासन को बागडोर को अपने हाथों में लेता है। युवक होते हुए भी वह साम दान आदि से " गोबी " के कबीलों को एक सूत्र में बाँध कर, तुग्रालखान, चीन के चक्रवर्ती, तुर्किस्तान के अधिनेता आदि के षड्यन्त्रों का, दाँवा-पेंचों का अत्यन्त वीरता तथा साहस के साथ सामना कर उन्हें पूरी तरह हरा कर चेंघिजखान (जगज्जेता) बन जाता है। उसका भाई चमूगा पढ़ा-लिखा है। वीर होने पर भी शान्तिप्रिय है। टेमूजिन उसे " नेमान " को जनता का राजा बनाकर भेजता है। वह जनता से अस्त्रविसर्जन कराकर देश को कुछ समय के लिए सस्य सम्पन्न बना देता है। परन्तु बौद्ध, इस्लाम, ईसाई धर्म के प्रचार करने वालों के द्वारा शत्रु राजाओं के द्रोह के कारण चमूगा का सारा प्रयत्न असफल हो जाता है। यह घटना पाठकों को उत्कंठित करती है। सन् 1960 की वसंत ऋतु में सम्पन्न विजय के उत्सवों में टेमूजिन चेंघिजखान बन जाता है। और वहीं उपन्यास समाप्त हो जाता है। आज भले ही हम अपने को सभ्य मान गर्व करें, पर इस उपन्यास को पढ़ते समय लगता है कि मानव जाति पर शासन करने की क्षमता, महाशक्ति " पशुशक्ति " में ही है। आन्ध्र भाषा के प्राधान उत्तम उपन्यासों में " चेंघिज खान " का निस्सन्देह विशिष्ट स्थान है।

तंजाऊरू पतनमु :-

1951 में आन्ध्रविश्वविद्यालय ने आन्ध्र के इतिहास से सम्बद्ध श्रेष्ठ उपन्यास को एक हजार रुपये का पुरस्कार देने की घोषणा की है । इसके परिणामस्वरूप कुछ अच्छे ऐतिहासिक उपन्यास प्रकाश में आये । इस प्रकार की उपन्यासकारों में अग्रणी श्रीमती मल्लादि वसुन्धरा हैं । उनका प्रथम उपन्यास " तंजावूरु पतनमु " है, जो उन पुरस्कार प्राप्त उपन्यासों में सर्वोत्तम है ।

इस उपन्यास का कथावस्तु तमिल देश से सम्बद्ध होने पर भी, तंजाऊरू पर शासन करने वाले आन्ध्र नायक राजाओं में अन्तिम विजयराघवराय के शासन काल काल का वर्णन करने से यह एक प्रकार से आन्ध्र के इतिहास से सम्बद्ध है । इसमें उस राज दरबार में कविता कविता, संगीत, नृत्य, शिल्प आदि कलाओं का अपनी चरम सीमा प्राप्त करने का सुन्दर वर्णन है । किन्तु राजा की भोग लालसा, रंगाजम्मा नामक वेश्या के प्रति व्यामोह स्तुतिगान में अनुरक्त दरबारी कवियों की स्तुतियाँ सुन-सुन कर अपने आपको भगवान् मान लेना, अपनी आठ रानियों के साथ दक्षिण नायकत्व को निभा न सकना, वेकन्ना के षडयन्त्र में फँस राज्य-पतन के लिए उत्तरदायी होना आदि का अद्भुत चित्रण किया गया है । परम भक्त पेरिट्रदास का चरित्र, भैले एल्लु सोमयाजुलु का दूत कार्य, युवराज को बन्दी बनाने पर क्रुद्ध पटरानी राज - गोपालंबिका का विजृंभण, इस बात का पता लग जाने पर कि

उसकी रखैल रंगाजम्मा स्वयं उसकी बहन है, विजयराघव का निर्वेद आदि घटनाएँ पाठकों के हृदय पर अमिट छाप छोड जाती हैं। यह उपन्यास श्रीमती वसुंधरा की सर्वतोमुखी प्रज्ञा का प्रतीक है।

भुवन विजयमु :-

श्री धूलिपाल श्रीराममूर्ति लिखित " भुवन विजयमु " तथा " गृहराजु मेड " ꠰ गृहराज नामक भवन ꠰ दोनों उपन्यासों ने विश्वविद्यालय पुरस्कार प्राप्त किये है। मूर्ति जी साहित्यवेत्ता हैं।

प्रस्तुत उपन्यास " भुवन विजयमु " की कथा विजय नगर के सम्राट श्रीकृष्णदेवराय के आदिलखान को जीतने से आरम्भ होकर पूर्व दिशा में सफल विजय यात्रा कर, अनेक दुर्गों को जीतते हुये कटक तक जा कर गजपति की पुत्री तुक्कादेवी से विवाह करने के बाद अपनी राजधानी में " भुवन विजय सभा " के निर्माण की पूर्ति पर समाप्त होती है। इस उपन्यास में सूत्र रूप से " तिरुमलदेवी " के साथ " चित्रादेवी " का राज महिषी के गौरव को प्राप्त करने का प्रयत्न वर्णित है। वस्तुत: राजकुमारी होते हुए भी किसी वेश्या द्वारा पोषित हो कर " गांड्ल संगी " के नाम से चित्रादेवी रायलु की प्रीतिपात्र बनती है। उसके प्रणय क्रोध के कारण रायलु का उस पर अनुग्रह नही रहता। नंदितिम्मन्ना

नामक महाकवि " पारिजातापट्टणम् " नामक काव्य रचना कर उसे रायलु को समर्पित करते हैं और उसे सुन कर रायलु पुन: चित्रादेवी को अनुगृहीत करते हैं । इसी इतिहास प्रसिद्ध घटना पर यह कथानक आधारित है । इनमें श्री राममूर्ति ने सूक्ष्मातिसूक्ष्म घटनाओं का ग्रथन कर अपने साहित्य वैशारद्य को प्रदर्शित करते हुए " पारिजात " के सौरभ से समग्र उपन्यास को सुरभित किया है ।

5·3· कथ्य एवं संवेदना का विकास :-

लेखक भी समाज का एक सदस्य है । वह सामाजिक समस्याओं को बहुत निकट से देखता है, उन पर विचार करता है और उनको अपनी कृति में प्रस्तुत करता है । समस्याओं या घटनाओं को जैसे के तैसे प्रस्तुत करने से वह कृति एक सामाजिक दस्तावेज बनती है लेकिन उपन्यास तो नहीं । इसीलिए वे इतिहास को एक नई दृष्टि से देखते है और प्रस्तुत करते है । कुछ उपन्यासकार अपने उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया कुछ ने नहीं प्रस्तुत किया । उपन्यासों में मुख्य सामाजिक समस्याओं का चित्रण निम्नांकित किया गया --

5·3·1· धर्माडम्बर :-

विकास युग के उपन्यासों में धार्मिक ढोंग, ब्रह्माडम्बर तथा जाति प्रथा की कटुता आदि का सहज चित्रण मिलता है । इस युग के उपन्यासकार स्वयं समाज सुधारक और देशभक्त भी थे । वे स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग भी लिए थे । वे अपने उपन्यासों के द्वारा जनता को जागृत करने के लिए अपने उपन्यासों में धर्मा-डम्बर आदि का खंडन किया ।

" मालपल्ली " उपन्यास के लेखक श्री उन्नव लक्ष्मी नारायण स्वयं समाज सुधारक और देश भक्त है । उन्होंने अपने इस उपन्यास में धार्मिक ढोंग, ब्रह्माडम्बर, जाति प्रथा की कटुता आदि का खंडन किया । इस उपन्यास के पात्र अनेक बार भगवान, धर्म आदि पर चर्चा करते दिखाई देते है । इस उपन्यास में एक जगह रामानायुडु, संगदास से कहता है कि -- " मजदूर लोग जिन के लिए एक वक्त का रोटी मिलना भी मुश्किल है, ओ क्या प्रतिघटन करेंगे ? उनका कौन आधार है ? " संगदास कहता है -- " भगवान ही आधार है । रामानायुडु - " अगर भगवान भी न्याय को छोडकर धनवानों के पक्ष में आये तो क्या होगा ? संगदास " हम मिल कर उसका भी प्रतिघटन करेंगे । "[1] इस प्रकार के उदाहरण इस उपन्यास में अनेक मिलते है ।

1· मालपल्ली - उन्नव लक्ष्मीनारायण - त्रिवेणी पब्लिशर्स - मद्रास - 1984 - पृ· 78·

महोधर राम मोहन राव जो स्वयं समाज सुधारक और देशभक्त भी थे । उनके उपन्यास " कोल्लाइ कट्टिते नेमि ? " में मुंगांडा नामक एक गाँव रहता है । उस गाँव के कोई भी व्यक्ति समुन्दर पार करके विदेश जाकर आए तो वहाँ के ब्राह्मण लोग उनके साथ गाय का गोबर प्रायश्चित के रूप में खिलाते थे । एक बार रामनाथम के गुरु रंगनाथ राव विदेश जाकर आते है तो उनको सामाज बहिष्कार को दण्ड दी जाती है । अगर वे गोबर खाए तो दण्ड को रद्द किया जाता और फिर से उन्हें ब्राह्मण जाति में लिया जाता था । लेकिन वे गोबर नही खाते दण्ड को ही स्वीकार करते है ।"[1]

अडवि बापिराजु के उपन्यास " नारायणराव " में भी धर्माडम्बर का चित्रण मिलता है । इस उपन्यास का नायक नारायणराव उच्च शिक्षा प्राप्त करने पर भी विदेश जाते समय पिता से निश्चित किया गया मुहूर्त में ही घर से निकलता है ।[2]

1· कोल्लाइ कट्टिते नेमि । महोधर राम मोहन राव, विशालान्ध्र प्रचुरण - 1978 - द्वि·म· - पृ· 149·

2· नारायण राव - अडवि बापिराजु - त्रिवेणि पब्लिशर्स 1961 - छटवाँ संस्करण - पृ·

उप्पल लक्ष्मणराव के उपन्यास " अतड्ठु-आमे " में भी उस समय के धर्माडम्बरों का वास्तविक चित्रण किया गया है। यह उपन्यास डायरी-शैली में लिखा गया है। इस उपन्यास के नायक शास्त्री विदेशों में बारिस्टर पढ़कर भी धर्माडम्बर, मूढ़विश्वास आदि को मानता है। उनका भाई भी विदेश में डाक्टर पढ़कर आता है। वह भी मुहूर्त के बिना कहीं भी रवाणा नहीं होता।[1]

विश्वनाथ सत्यनारायण के " वेइपडगलु " (सहस्रफण), उपन्यास में उन्होंने धर्माडम्बर का चित्रण किया लेकिन उसका विरोध नही किया।

इस उपन्यास में एक जगह धर्मारावु की पत्नी अरुन्धती उनको स्वर्गीय पिता का मजाक उडाती कुछ कहती है तुरन्त उसे एक सांप दिखाई पड़ता है। धर्मारावु भक्ति से प्रार्थना करने पर वह हजार सिरों के साथ दर्शन देकर अदृश्य हो जाता है। उस सांप गणाचारी के सपने में भी आकर भविष्य के विषयों के बताते रहता है। अगर कोई गणाचारी के खिलाफ कुछ कहे तो तुरन्त उस सांप प्रत्यक्ष होकर उनको दण्ड देता है। गणाचारी की भावी ईसाई

---

1. अतड्ठु-आमे - उप्पल लक्ष्मणराव - विशालान्ध्र प्रचुरण 1966 द्वितीय मुद्रण

स्त्री से गणाचारी का मजाक उडाते कुछ कहती है । दूसरे दिन उसका लडका नीम के पेड से गिरता है ।[1]

इस प्रकार इस युग के उपन्यासों में धर्माडम्बर आदि का वास्तविक चित्रण विस्तार रूप से मिलता है ।

5•3•2• विधवा समस्या :-

तेलुगु उपन्यास के इस विकास युग के कथाकारों ने नारी की असहाय अवस्था को चित्रित करने के लिए उनको मध्यवर्गीय पृष्ठभूमि में रख कर देखने की कोशिश की, क्योंकि नारी की असहायता समाज के सभी वर्गों में कमावेश कर देखी जा सकती है लेकिन मध्यवर्ग में इसका रूप सबसे भयंकर है ।

युवती विधवाओं की हीन दशा और उन पर किये जाने वाले अत्याचारों का इस युग के कथाकारों ने खूब चित्रित किया है ।

1• वेइपडगलु - विश्वनाथ सत्य नारायण - पल्लो प्रचुरणलु 1976 - बारहवा मुद्रण - पृ• 644•

महीधर रामामोहन राव के " कोल्लायि कट्टितेनेमि " उपन्यास में स्वराज्यम का बाल्यावस्था में ही विवाह होता है। वह पढी-लिखी होने के कारण उसका पति उसे नहीं लिवा जाता। वह रामनाथम को प्यार करती है। वह दुबारा विवाह करलेना पाप नही समझती। कन्दुकूरि वीरेशलिंगम जी के भाषणों का प्रभाव उस पर पडता है। बाद में वह रामनाथम से विवाह कर लेती है। समाज उनका आदर नही करता। तो भी वह आत्मस्थैर्य के सात आगे बडते हैं।[1]

उप्पाल लक्ष्मणराव के " अतडु-आमे " ये अयंगार नामक एक विधवा रहती है। वह स्वातन्त्र आन्दोलन में भाग लेने के कारण जेल जाती है। बाद में आजाद होती है। बारिष्टर शास्त्री उसका विवाह सुब्बय्या से करवाता है।

विश्वनाथ सत्यनारायण के उपन्यास वेयिपडगलु में उन्होंने विधवा समस्याओं का चित्रण किया लेकिन उनका खण्डन नहीं किया। इस उपन्यास में एक जगह महिला समाज में विधवा विवाहों का चर्चा चलता रहता है। मंगम्मा विधवा विवाह और

---

1. कोल्लायि कट्टितेनेमि - महीधर राममोहन राव - विशालान्ध्र प्रचुरण - 1978 - द्वि.स. - पृ. 393.

उसे लागू करने वाला कानून का भी खण्डन करती है । रंगम्मा आश्चर्य चकित होती है ।[1]

धर्माराव का विचार है कि विधवाओं का विवाह करने से आबादी की समस्या उत्पन्न होती है और पुरुषों की कमी होती है इससे कन्याओं का विवाह होना मुश्किल होता है ।[2]

5•3•3• अछूतों की समस्या :-

अछूतों की समस्या भी धर्माडम्बर तथा अन्ध-मान्यताओं की ही देन है । इसका परिणाम यह हुआ है कि अनेक अछूत जो कि हिन्दू ही थे । ईसाई बनगए या उन्होंने अन्य धर्म स्वीकार कर लिये । जिसके मूल सवर्ण जातियों की कट्टरता एवं पोंगापंथी ही कही जा सकती है । इस युग के उपन्यासकारों ने अछूतों की समस्या को अत्यधिक महत्त्व दिया । सरकार ने भी इस दिशा में पर्याप्त ध्यान दिया ।

1• वेयिपडगलु - विश्वनाथ सत्यनारायण - वल्ली प्रचुरणलु 1976 - बारहवाँ संस्करण - पृ• 654•

2• - वही - पृ• 980•

उन्नव जी के मालपल्ली में अस्पृश्यता समस्या का गम्भीर चित्रण हुआ और खण्डन भी किया गया। संगदासु के बूआ को घास काट के लौटते समय बसिविरेड्डी नामक उच्च वर्ग के किसान की खेत में से चलती रहती है, इतने में रेड्डी देखता है, एक अस्पृश्य औरत अपने खेत में से चलने से वह उग्र होता है, उस औरत को खूब मारता है। उस औरत घायल हो के गुण्टूर के एक अस्पताल में मर जाती है।

महीधर राममोहन राव जी के उपन्यास " कोल्लायि गट्टितेनेमि " में अछूतों की हीन दशा का चित्रण किया गया है। मुंगंडा गाँव में अछूतों का तालाब से पानी लेना मना है। अभिजात वर्गों का धारणा है कि अछूतों तालाब में उतर ने से पानी मैला पड जाता है। इसलिए उस गाँव के अछूत लोग अपने हंडों के साथ तालाब के रास्ते में बैठते हैं। अगर कोई उच्चवर्ग के कुछ पानी हंडों में डाले तो उनके लिए पानी मिलेगा नहीं तो नहीं मिलेगा। यही उस गाँव की स्थिति है।[1]

---

1. कोल्लायि गट्टिते नेमि - महीधर राम मोहानराव
विशालान्ध्र प्रचुरण - 1978 - द्वि॰ सं॰ पृ॰ 298 - 299॰

विश्वनाथ सत्यनारायण के उपन्यास " वेयिपडगलु " में धर्माराव राव का विचार है कि मंदिरों में अछूतों के प्रवेश से भगवान मैला पड जाते हैं ।[1] ब्राह्मण गाय से समान है तो नीच जाति का आदिमी भैंस से समान है । वे नीच कामों निपटाने के लिए ही काबिल है ।[2]

कोडवटिगण्टि कुटुम्बराव के उपन्यास " चदुवु " में शेषगिरि नामक एक सज्जन जातीय विद्यालय " स्वराज्यम बडि " में अछूतों की प्रवेश पर बल देता है । बाकी लोग इसका विरोध करते हैं । उनका मत है कि अगर अस्पृश्यों प्रवेश देने से उच्चवर्ग वाले लोग अपने बच्चों को विद्यालय में नही भेजेंगे । आखिर अछूतों का विद्यालयों में प्रवेश रद्द किया जाता । केवल उच्चवर्गीय बच्चों के साथ ही विद्यालय शुरू होता है ।[3]

रंगनायकम्मा के उपन्यास " बलिपीठम " में भी अस्पृश्यता के कारण ही नायक भास्कार राव उनकी पत्नी अरुणा में मनमुटाव आता है । वे दोनों भिन्न जाति के शिक्षित युवा पीडी है । अस्पृश्यता के कारण उनका परिवार विच्छिन्न हो जाता है ।

1· वेयिपडगलु - विश्वनाथ - वल्ली प्रचुरणलु - 1976 - बारह संस्करण - पृ· 693·

2· - वही -

3· चदुवु - कोडवटिगण्टि कुटुम्बराव - नवभारत प्रचुरणलु - 1976 - पृ· 112·

5·3·4· वेश्यावृत्ति की समस्या :-

वेश्यावृत्ति की समस्या को अनेक उपन्यासों में दिख लाया गया, किन्तु अधिकांश उपन्यासकार इस समस्या का समाधान प्रस्तुत करने में असफल ही रहे । उन्होंने वेश्याओं का यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत किया है किन्तु किसी उपन्यासकार ने भी यह नहीं निर्देश किया कि वेश्या-वृत्ति जो समाज के कोढ़ के रूप में हमारे समक्ष विद्यमान है: उसका निराकार कैसे किया जाय ? वेश्याओं के सम्पर्क अनेक उपन्यास लिखे गये जिनमें प्रमुख उपन्यासों का नीचे चर्चा किया गया ।

श्री नटराजन " शारदा " उपनाम से विख्यात है । इनके उपन्यास " अपस्वरालु " में दहेज समस्या और वेश्यावृत्ति की समस्याओं को प्रमुखता दिया गया । इस उपन्यास में वसन्तम नामक एक वेश्या रहती है । वह अपनी बहन स्वालु को वेश्या नही बनाना चाहती है । वह स्वालु का विवाह करना चाहती है । शास्त्री स्वालु को चाहता है । वसन्तम पहले नहीं मानती बाद में पैसों के लालस में शास्त्री के यहाँ भेजती है । वरदराजु स्वालु को बचाता है और किसी मजदूर से उसका विवाह करवाता है । वसन्तम को कुष्ठ रोग लग जाता है । समाज के बडे-बडे लोग जो उसके शरीर का उपयोग करते है उनमें से एक भी उसे बचाने

के लिए नहो आते । वरदराजु उसे बचाने के लिए जितना भी धन हो देने के लिए तैयार रहता है । लेकिन उसे बचा नहो सकता ।[1]

राचकोण्ड विश्वनाथ शास्त्री के " राजु-महिषि " एक सुप्रसिद्ध उपन्यास है । इस उपन्यास में वेश्यावृत्ति का वास्तव चित्रण प्रस्तुत किया गया है । इस उपन्यास में यह दिखाया गया है कि किस तरह व्यापार संस्थाएँ वेश्याओं को तैयार करते हैं और उनका पोषण करते है । इस उपन्यास में सूर्यचन्द्रराव नामक वकील रहता है । वह शराबी है । वह वेश्यागमी भी है । सारे वेश्यालयों के मालिक उसे जानते है । वेश्यालयों के मालिक भोले-भाले लडकियों को फसा कर वेश्यावृत्ति में उतारते है । कभी पुलिस इन वेश्याओं पर केस बनाकर पुलिस स्टेशन ले जाते है । ऐसे केसों में तरफ सूर्यचन्द्रराव अदालत में मुकद्मा पेश करते है ।[2]

---

1. अप्सवराल्गु - शारदा - वृन्दावन पब्लिशिंग हाउज द्वितोय संस्करण - पृ. 330 - 335.
2. राजु - महिषि - रा.वि. शास्त्री - स्टूडेण्ट बुक सेंटर विजयवाडा - प्रथम संस्करण - 1971 - पृ. 351.

सुप्रसिद्ध लेखिका बीनादेवी के उपन्यास " पुण्यभूमि कल्लु तेरचिन्दि " में भी वेश्या वृत्ति का यथार्थ चित्रण किया गया है। इस उपन्यास में सिंहाचलम नायक एक किसान रहता है । राजम्मा उनकी पत्नी है । धीरे-धीरे सिंहाचलम किसान से मजदूर बन जाता है । बाद में सिंहाचलम् का एक पैर टूट जाता है, वह विकलाग बनता है । पति और बेटे के लिए राजम्मा बडे लोगों के घरों में काम करना शुरू करती है । एक दिन सिंहचलम किसी के बातों मान कर राजम्मा के चरित्र पर सन्देह करता है और उसे घर से निकाल देता है । राजम्मा निस्सहाय स्थिति में एक कालिज प्रिन्सिपल के घर जाती है जहाँ वह काम करते रहती है । वह प्रिन्सिपल की पत्नी का कुछ दिन पहले ही स्वर्गवास होता है । प्रिन्सिपल शराब के नशे में राजम्मा पर अत्याचार करता है । वह भी मान लेती है । वहाँ से राजम्मा का पतन शुरू होता है । बाद में उसे वेश्यालय में जाना पडता है । वह वेश्या बन जाती है ।

एक दिन वेश्यालय का मालिक राजम्मा को जे•जे• के घर भेजता है । उस समय जे•जे•आत्महत्या कर लेने के लिए निर्णय लेता है । इसलिए वह अपना पूरा धन, सोना राजम्मा को देकर भेज देता है । दूसरे दिन जे•जे• के आत्महत्या के सिल सिले में राजम्मा को पुलिस स्टेशन लिवा जाते है । वहाँ उसे

खूब पीटते है । अनेक अमानवीय अत्याचार उस पर करते है । पीने के लिए पानी भी नही देते हैं । उसके पूछने पर पानी के बजाय शराब देते है । बिचारी शराब ही पीती है ।[1]

इस प्रकार वेश्यावृत्ति और वेश्याओं पर पुलिस वेश्यालयों के मालिक आदि के अमानवीय अत्याचारों का गम्भीर चित्रण इस उपन्यास में मिलता है ।

पूंजीवादी आर्थिक विषमता से उत्पन्न समस्याएँ तथा उनकी प्रतिक्रिया :-

तेलुगु उपन्यास साहित्य के विकास काल में किसान तथा मजदूर अपने अधिकारों के प्रति अत्यधिक जागुरूक एवं सजग थे । जो किसान जमीन्दारों के समक्ष एक शब्द भी बोलने का साहस नहीं करता था, वह अब निर्भीकता से उसकी बातों का उत्तर देता था । सेठ साहूकारों से भी अब वह भयाक्रान्त न था । उसके मन में प्रतिहिंसा की भावना जन्म ले चुकी थी । वह इन पूंजीपतियों तथा शोषकों से अपने शोषण का प्रतीकार चाहता था । फलत: उसके मन में उनके विरुद्ध प्रतिक्रिया का जन्म हुआ, जिसका चित्रण प्रेमचन्दोत्तर कालीन उपन्यासों में देखा जा सकता है ।

---

1. पुण्यभूमि कल्लु तेरिचिन्दि - बीनादेवी - नवभारत प्रचुरण विजयवाडा - 1971 - पृ. 316.

पूंजीपति वर्ग का उदय प्रथम महायुद्ध के पश्चात हुआ, किन्तु द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त वह अत्यन्त शक्तिशाली हो गया । पूंजीपति आधुनिक सामाजिक दृष्टिकोण तथा जनतन्त्रीय विचारों के समर्थक है, लेकिन वे न केवल आर्थिक साधनों पर एकाधिकार प्राप्त करना चाहते है , वरना समाज पर भी नियन्त्रण रखना चाहते हैं । दूसरी ओर श्रमिक वर्ग ब्रिटिश सरकार की आर्थिक व्यवस्था की उपज है । अंग्रेजों के शासन-काल में देश के पुराने उद्योग धंधे प्राय: नष्ट हो गये । कारीगरों के लिये अन्य कोई साधन न रहा । इस प्रकार वे धीरे-धीरे पूंजीपतियों के आधीन हो गये ।

शिक्षा के अभाव के कारण एक लम्बे अरसे तक इस वर्ग का पूंजीपति वर्ग शोषण करता रहा । सन् 1920-29 में यह वर्ग अपने हितों की रक्षा के लिए संगठित हुआ । उसने यह अनुभव किया कि पूंजीपति उसका शोषण करता है । यहीं से इस वर्ग के प्रति उसके मन में प्रतिक्रिया का अभ्युदय हुआ । इसके अतिरिक्त उस पर मार्क्सवादी विचार-धारा का भी प्रभाव पड़ने लगा था । अब वह अपने अधिकारों के प्रति अत्यन्त सजग एवं जागुरुक हो उठा था । परिणामत: उसके मन में इसके प्रति प्रतिक्रिया हुई और उसने विद्रोह करना प्रारम्भ किया, जिसका चित्रण तेलुगु उपन्यास साहित्य के विकास युग के प्रथम महान उपन्यास " मालपल्ली " से शुरू होता है ।

इस उपन्यास में लेखनकाल 1921 तक तो आन्ध्र में वर्गचेतना नहीं दिखाई पड़ती तो भी लेखक भविष्यत दृष्टि से इसका चित्रण किया है ।[1] इस उपन्यास में बेजवाडा का मजदूर सभा के सन्दर्भ का चित्रण किया गया है । वास्तव में यह नहीं हुआ । यह केवल काल्पनिक है ।

उपन्यास में एक जगह मजदूर अपने समस्याओं के लिए जमीन्दार चौदरय्या के खिलाफ हडताल करने के लिए निर्णय लेते है । चौदरय्या उनसे जबरदस्ती करने की यत्न करता है तो एक मजदूर शेषय्या कहता है -- " अगर हम आप के बीस एकड जावर की कटाई नहीं की तो वह मिट्टी में मिल जायेगा । अगर पानी की व्यवस्था नहीं की जाय तो आप के पाँच सौ एकड का नाश हो जायेगा । कल से आप के नौकर हडताल करेंगे तो आपके खेतों का क्या हाल होगा ?"[2]

आल्वारु स्वामी के उपन्यास " प्रजल मनिषि " में वर्गचेतना का चित्रण हुआ है । जब जमीन्दार रामभूपालराव ने छोटे मोटे किसानों का जमीन को हडपने की कोशीश करता है तो मजदूर सब संघटित होते है । इस अन्याय का प्रतिघटन करते है ।[3]

---

1. मालपल्लि - उन्नव लक्ष्मीनारायण - त्रिवेणि पब्लिशर्स मद्रास - 1984 - पृ. 153.
2. - वही - पृ. 116.
3. प्रजल मनिषि - आलार स्वामी - विशालान्ध्र पब्लिशिंग हाउस - 1970 - तृतीय संस्करण - पृ. 102.

आल्वार स्वामी का ही एक और अधूरा उपन्यास " गंगू " (1940-45) में तेलंगाना जनता के वर्गचेतना का वास्तविक चित्रण प्रस्तुत किया गया है । सामंतवादी वातावरण में हुए अत्याचार, साधारण प्रजा, किसान, मजदूर आदि को शोषण का सहज चित्रण इस उपन्यास में मिलता है । उस काल में हरिजनों का अधिकारियों को मुफ्त में लकड़ी देना साधारण था । उसे " राजुनांचा " कहते थे । एक गरीब हरिजन पोशय्या अधि - कारि को लकड़ी न देने के कारण उसे खूब मारते है । वह बेहोश हो जाता है । इस सन्दर्भ में मजदूर हरिजन आदि लोग इकीत्रत होते है पहली बार अधिकारियों का प्रतिघटन करते है ।[1]

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में जमीन्दारों की पूँजीवादी मनोवृत्ति का यथार्थ चित्रण लेखक ने प्रस्तुत किया है ।

---

1. गंगू - आल्वार स्वामी - विशालान्ध्र पब्लिशिंग हाउस 1974 - द्वितीय संस्करण - पृ. 74, 107.

5.4. निष्कर्ष :-

तेलुगु साहित्य के विकास युग का आरम्भ उन्नीसवीं शती की तीसरी दशाब्दी में हुआ । यह समय भारत देश के इतिहास, समाज और साहित्य में भी अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं परिवर्तनशील रहा है । इस युग की सामाजिक प्रवृत्तियाँ व परिस्थितियाँ जैसे राज - नीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक आदि का प्रभाव तेलुगु साहित्य पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है । उपन्यासों की विभिन्न प्रवृत्तियों जैसे सामाजिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक, हास्य - रसात्मक आदि का उदय हुआ । इस युग के उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में समकालीन समस्याओं का चित्रण किया । कुछ ने समाधान भी प्रस्तुत किया ।

षष्ठ अध्याय

हिन्दी और तेलुगु साहित्य में उपन्यास के उद्भव और विकास का तुलनात्मक समाजशास्त्रीय विवेचन

हिन्दी और तेलुगु साहित्य में उपन्यास के उद्भव और विकास का तुलनात्मक समाजशास्त्रीय विवेचन

विश्व साहित्य में उपन्यास एक आधुनिक विधा है । रूप की दृष्टि से यह निरंतर परिवर्तनशील है । साहित्य की अन्य विधाएँ जैसे नाटक, महाकाव्य, कविता आदि रूप की दृष्टि से बहुत कुछ निर्धारित है । साहित्यिक परंपराएँ उनके मार्ग निर्देशन में सहायक हैं किन्तु उपन्यास के लिए कोई निश्चित विधान नहीं होता । उपन्यास एक अनिर्धारित विधा है । उपन्यास की गत्यात्मकता उसकी परिवर्तनशीलता, नित्य नया रूप ग्रहण करने की क्षमता तथा संरचना के लचीलेपन के कारण उपन्यास की कोई भी परिभाषा निर्धारित करना अथवा इसकी रचना के लिए किसी पूर्व निश्चित विधान का निर्धारण करना आलोचना के उस मान दण्ड के लिए संभव नहीं है जो साहित्यिक निर्धारित विधाओं के लिए है ।

साहित्य की एक विधा के रूप में जब उपन्यास का विकास हुआ तब उसने साहित्य के अन्य रूपों जैसे नाटक, कहानी आदि को भी प्रभावित किया । अन्य विधायें भी स्वतंत्र एवं लचीली होने लगीं । इन विधाओं में भाषा रूढ़िग्रस्त लीक से हटकर उपन्या - सोन्मुख होने लगी । फलत: इन विधाओं में व्यंग्य एवं विनोद का समावेश होने लगा तथा उनमें जन सामान्य के चित्रण के साथ उनके चरित्र के अंतर्विरोध के चित्रण को भी प्रश्रय मिलने लगा । इसके फलस्वरूप समस्या प्रधान नाटक वैचारिक कविता आदि प्रकाश में आने लगे । लेकिन यह प्रभाव सीधा न मानकर प्रकारान्तर से मानना अधिक उचित होगा क्यों कि जो तथ्य उपन्यास कला के आविर्भाव के कारण बने, वे ही साहित्य के आविर्भाव के कारण बने, वे ही साहित्य की अन्य विधाओं में भी परिवर्तन के कारण माने जा सकते हैं । उपन्यासकला परंपरा के बोध से अपेक्षतया अधिक मुक्त है ।

आधुनिक युग के उपन्यासों को देखने से इस बात का परिचय मिलता है कि जीवन का संपूर्ण और गहन चित्रण उपन्यास में सम्भव है । प्रेमचन्द ने भी उपन्यास के इसी विषय विस्तार को उसकी लोक प्रियता का प्रमुख कारण माना है ।

उपन्यास शब्द संस्कृत भाषा का है, किन्तु प्राचीन संस्कृत साहित्य में इसका प्रयोग उस अर्थ में कभी नहीं हुआ, जिसमें हम आज करते हैं। भारत की कई प्रान्तीय भाषाओं में यह शब्द विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होता है। उपन्यास सचमुच ही " नवल " अर्थात् नया और ताजा साहित्यांग है। (उप = निकट, न्यास = रखना) इस विशेष साहित्यांग के द्वारा ग्रन्थकार पाठक के निकट अपने मन की कोई विशेष बात, कोई अभिनव मत रखना चाहता है। इसलिए यद्यपि यह शब्द परंपरा के अनुकूल नहीं पाता, यद्यपि उसका प्रयोग उपन्यास की विशिष्ट प्रकृति के साथ बेमेल नहीं कहा जा सकता।

उपन्यास की परिभाषा विद्वानों ने कई प्रकार से की है लेकिन यह कायदा है कि जो चीज जितनी ही सरल होती है उसकी परिभाषा उतनी ही मुश्किल होती है।

यूरोपीय विद्वान राल्फ फाक्स के अनुसार उपन्यास, कला का प्रथम गद्य रूप है जो मानव को समग्रता से अभिव्यक्त करने की चेष्टा करता है। वह कहता है उपन्यास गद्य की एक विशिष्ट यथार्थ-दृष्टि को प्रस्तुत करता है जो उसी की पहुँच में है, काव्य, नाटक, सिनेमा, चित्रकला अथवा संगीत द्वारा संभव नहीं।

क्रार के अनुसार उपन्यास उस गद्य-आख्यान को कहा जाता है जो यथार्थ जीवन का यथार्थ-वादी दृष्टि से अध्ययन करें ।

क्लारा रीव ने उपन्यास को यथार्थ जीवन का तथा उस काल का चित्र माना जिसमें वह लिखा गया है ।

प्रेमचन्द के अनुसार उपन्यास मानव चरित्र का चित्र है । मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उनके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है ।

उपन्यास ऐसी कला है जिसमें मनुष्य सामाजिक और ऐतिहासिक दृष्टि से निरूपित होकर सामने आता है ।यह सच है कि दूसरे कला-रूपों और साहित्य रूपों की तुलना में उपन्यास का स्वरूप समाज पर अधिक निर्भर होता है और उसका विकास समाज के इतिहास के साथ होता है । लेकिन यह भी सच है कि वह एक कला है केवल सामाजिक दस्तावेज नहीं, इसलिए सामाजिक यथार्थ जीवन के अनुभव और इतिहास की गति रचनाकार की सृजनशीलता से पुनर्रचित होकर ही उपन्यास में आती है ।

उपन्यास का विकास औद्योगिक समाज के विकास से जुड़ा हुआ है । उपन्यास के उदय और विकास के लिए अर्थात् उसके अस्तित्व के लिए कुछ ऐसे भौतिक और विचारधारात्मक आधारों की जरूरत थी, जो औद्योगिक युग में ही विकसित हुए । उपन्यास के अस्तित्व के लिए अनिवार्य मुद्रण प्रकाशन व्यवस्था और पत्र-पत्रिकाएँ औद्योगिक युग के वैज्ञानिक विकास की देन है तो उसके लेखक और पाठक के रूप में क्रियाशील मध्यवर्ग पूँजीवादी सामाजिक संरचना का परिणाम है । इन भौतिक आधारों के साथ-साथ विचार धारा के स्तर पर व्यक्तिवाद, धर्मनिरपेक्ष जीवन दृष्टि और यथार्थवादी विश्वदृष्टि की जरूरत थी, जो औद्योगिक युग की विकासवादी चेतना की उपज है । उपन्यास की रचना दृष्टि में मनुष्य की स्वतंत्र सत्ता, व्यक्ति की महत्ता और मानवीय संबन्धों की गरिमा को तभी केन्द्रीय महत्व मिला, जब औद्योगिक समाज का मानस अपने अनुभव और तर्क के अलावा किसी अलौकिक शक्ति की सत्ता को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं था ।

हम यह कह सकते है कि उपन्यास का विकास औद्योगिक समाज के विकास से जुड़ा हुआ है । वर्ग विभक्त समाज का विकास, शोषित वर्ग में चेतना, आर्थिक परिवेश में परिवर्तन, परिवर्तित नैतिक मान्यताएँ, पारिवारिक स्थिति में परिवर्तन और जातिगत बन्धनों से मुक्ति आदि जो उपन्यास विधा के उद्भव के प्रबल तत्व है, वे सब औद्योगिक समाज की ही देन है ।

उपन्यास के उदय का सामाजिक आधार मध्यवर्ग ही है। मध्यवर्ग से उपन्यास को अलग करके नहीं देखा जा सकता क्यों कि उपन्यास कला के जन्म के मूल में वह यथार्थवाद काम कर रहा था, जिसका आविर्भाव मध्यवर्ग की अपनी आवश्यकता और मूल्यों को लेकर हुआ था। अत: बौद्धिकता, तर्कसम्मत घटनाक्रम, व्यक्ति एवं समाज का संघर्ष, सामान्य जीवनपरक दृष्टि, व्यक्ति की महत्ता, अतीत के विरोध में वर्तमान पर बल, कल्पना के स्थान पर जीवन की यथार्थता का आग्रह, प्रकृति एवं समाज को पराभूत कर अग्रसर होने की आकांक्षा, जन्मगत अधि - कारों के स्थान पर वर्गगत उपलब्धियों द्वारा समाज में प्रतिष्ठित होने का दावा-ये सभी प्रवृत्तियां मूलत: उस मध्यवर्ग की है जो सामंतवाद के गर्भ से फूटने के लिए छटपटाता है और अंतत: जो पूंजीवाद में अपना विकास पाता है।

अत: यह स्पष्ट होता है कि गद्य के आविर्भाव के साथ ही साथ उपन्यास का भी साहित्य के क्षेत्र में प्रादुर्भाव हुआ। उपन्यास का सामाजिक आधार वस्तुत: मध्यवर्ग ही है। मध्यवर्ग की धरती में ही उपन्यास की बीज पड़ा। दोनों का संबन्ध अन्योन्याश्रयी है। वास्तव में उपर निर्देशित वर्ग की वे सभी विशेषतायें उस यथार्थवाद की भी विशेषतायें है जिसके क्रोड से उपन्यास जन्म लेता है।

भारतीय भाषाओं में उपन्यास साहित्य का आरम्भ गद्य के आरंभ से जुड़ा हुआ है । प्राचीन काल से भी कुछ भारतीय भाषाओं में गद्य लेखन की परंपरा थी परन्तु यह उपन्यास जैसे आधुनिक विधा के अनुकूल नहीं थी । बाद में उपन्यास साहित्य के विकास के अनुकूल गद्य का विकास अंग्रेजी शासन काल में हुआ ।

भारत की विभिन्न भाषाओं में गद्य साहित्य के विकास में पाश्चात्यों का योगदान चिरस्मरणीय है, भारत में प्रथम मुद्रणालय की स्थापना कोचिन और विपिन में 1579 में हुई । सब भारतीय भाषाओं में से सबसे पहली पुस्तक तमिल में ही छपी । इसका नाम " किरिस्तुव वणक्कम " ﴾ क्राइस्ट को प्रणाम ﴿ इसके बाद पाश्चात्य विद्वानों के माध्यम से कालांतर में सभी भारतीय भाषाओं पर अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव पड़ा ।

उन्नीसवी शती के अन्तिम चरण में पूरे देश में सांस्कृतिक जागरण का दौर चल रहा था । सामंती समाज की श्रृंखलाएँ टूट चुकी थीं । अंग्रेजी शिक्षा के विकास की गति चाहे जितनी मंद रही हो और उसके उद्देश्य चाहे जितने सीमित रहे हों, उसके व्यापक प्रभाव से देश का शिक्षित समाज बच नहीं सका था । देश में एक सशक्त मध्यमवर्ग का उदय हो गया था जो अत्यधिक संवेदनशील था । यह वर्ग राष्ट्रीय एवं सामाजिक भलाई की दृष्टि से सोचने लगा था और यह अनुभव करने लगा था कि सभी दृष्टियों से हमारा

देश अत्यन्त हीन स्थिति में हैं, जीवन के सभी क्षेत्रों में जैसे राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक में परिवर्तन और सुधार की आवश्यकता है। इसकी पूर्ति के लिए साहित्य को भी एक माध्यम बनाया गया था। फलत: पद्य के विकास के साथ-साथ गद्य का भी विकास हुआ और गद्य की विभिन्न विधाओं जैसे उपन्यास, नाटक, कहानी आदि का प्रादुर्भाव हुआ।

समस्त भारतीय भाषाओं में उपन्यास साहित्य का आरम्भ पश्चिम की भाषाओं से अनूदित उपन्यासों से होता हैं। इसके दो कारण दिखाई देते हैं। पहला कारण है साहित्यिक और सामाजिक विकास का और दूसरा कारण है भाषा के स्वा - भाविक विकास का और दूसरा कारण है भाषा के स्वाभाविक विकास का। भारत में उपन्यास साहित्य के उद्भव के पूर्व जो साहित्य था वह भारत में पश्चात्यों के राज्य की स्थापना से जो परिवर्तन सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक स्तर पर हुआ उसे अभि - व्यक्त करने में असमर्थ था। यही नहीं यूरोप में उपन्यास का उद्भव जिन स्थितियों में हुआ था उसके ठीक विपरीत परिस्थितियाँ यहा मौजूद थीं। इस समय भारत में न तो औद्योगीकरण हुआ था और न मध्यवर्ग का विकास हुआ था। यहाँ जो नाम मात्र का औद्योगीकरण हो रहा था, वह केवल साम्राज्यवाद की लूट के लिए पैसे व्यापार और बाजार की एक स्थिति था। यूरोप के उपनिवेशवाद ने भारतीय सामंतवाद के मूल ढाँचे को बनाए रखा था।

इसलिए यहाँ के औद्योगीकरण में स्वाभाविक रूप से विकसित पूंजीवाद की कोई विशेषता न थीं । उपनिवेशवाद व्यवस्था में यहाँ जो मध्यवर्ग पैदा हुआ था उसका चरित्र यूरोप के मध्यवर्ग से बहुत भिन्न था । अतः अंग्रेजों को अपने फायदे के लिए ऐसी परिस्थितियों व सामाजिक मानसिकता के विकास का प्रयास करना पड़ा जो परिस्थितियाँ अंग्रेजी उपन्यास साहित्य के विकास के मूल में थीं । इस प्रयास के अंतर्गत उपन्यास साहित्य-लेखन के लिए सफल लेखकों को प्रोत्साहन देने का प्रयास किया गया । उपन्यास की शिल्प और संरचना से अवगत कराने के लिए उन्हें अनुवादों की प्रेरणा देना पड़ी तो दूसरे ओर लेखक भी उस मध्यवर्ग से पैदा होने लगे जिस का विकास अंग्रेजों की सामाजिक, आर्थिक नीतियों के कारण हुआ था । उस समय की भारतीय भाषाएँ और शाब्दिक संरचना औपन्यासिक कथ्यों की अभिव्यक्ति के लिए सशक्त नहीं थी । अतः लेखकों को या तो अंग्रेजी जैसी पाश्चात्य भाषाओं के उपन्यास साहित्य का अनुवाद करना पड़ा या उनके अनुकरण पर लिखना पड़ा । लेकिन शिक्षित मध्यवर्ग की विकास एक स्तर तक होने के बाद, मौलिक उपन्यास लेखन कार्य शुरू हुआ ।

उपन्यास साहित्य के उद्भव के प्रथम चरण काल की तब तक चर्चा की गयी है। द्वितीय चरण काल में परंपरा और समाज सुधार के मध्य संघर्ष हुआ है। इस काल के भारतीय उपन्यास साहित्य में प्रस्तावित सुधार सम्बन्धी विचार धारा में प्रस्तावित सुधार के दो प्रकार परिलक्षित होते हैं। बंगाल को छोड़कर बाकी राज्यों की उपन्यास साहित्य में सुधार के लिए धीरे-धीरे राजनैतिक स्वतंत्रता की आवश्यकता का अनुभव किया गया। और राष्ट्रीय आन्दोलन से सम्बन्धित अभिव्यक्ति होने लगी। बंगाल में इसके विपरीत सुधार के लिए विश्व मानवतावाद की परिकल्पना की गयी और जीवन की समस्याओं पर सांस्कृतिक दृष्टिकोण से विचार किया गया। इस काल के समस्त उपन्यास साहित्य में नारी शिक्षा पर बल दिया गया है। भारतीय उपन्यास साहित्य के सुधार के इस समय के अंतिम वर्षों में धीरे-धीरे सामाजिक यथार्थ के रूप ग्रहण करके आरम्भिक रूप दिखाई देता है। राष्ट्रीय आन्दोलन से सम्बन्धित विचारों की अभिव्यक्ति होने के कारण गान्धी के सिद्धान्तों का प्रभाव भी दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त इस काल में पूर्वार्ती चरण के समान समाजिक, ऐतिहासिक, तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों के साथ-साथ अनुवादों और अनुकरणों का बहुलता पायी जाती है।

इस प्रकार विश्व के साहित्य में उपन्यास एक आधुनिक और परिवर्तनशील विधा है । इसका क्षेत्र बहुत व्यापक है जिसके अंतर्गत संसार के किसी भी विषय को लिया जा सकता है । गद्य के आविर्भाव के साथ ही साथ उपन्यास का भी साहित्य के क्षेत्र में प्रादुर्भाव हुआ । उपन्यास का सामाजिक आधार वस्तुत: मध्यवर्ग ही है जो औद्योगिक समाज का उपज है । यह वर्ग अत्यंत संवेदनाशील है और उसने अनुभव किया था कि हमारा देश सभी दृष्टियों से अत्यन्त हीन दशा में है, जीवन के सभी क्षेत्रों में परिवर्तन और सुधार की आवश्यकता है । इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए साहित्य को भी एक माध्यम बनाया गया था । फलत: पद्य के विकास के साथ-साथ गद्य का भी विकास हुआ और गद्य की विभिन्न विधाओं जैसे उपन्यास, नाटक, कहानी आदि का प्रादुर्भाव हुआ ।

जब किसी देश अथवा राष्ट्र का शासन-सूत्र एक शक्ति के पास से दूसरी शक्ति अथवा एक जाति के हाथ से निकल कर दूसरी जाति के हाथ में जाता है, तब उस देश में अनेक परिवर्तन होते हैं । ये परिवर्तन विशेष रूप से वहाँ के राजनीति, आर्थिक, समाज, संस्कृति तथा साहित्य के क्षेत्रों में होते हैं और अपेक्षाकृत उन्हेंही अधिक प्रभावित करते हैं । भारतवर्ष को एक लम्बे समय तक विदेशी शासन में रहना पड़ा है । जब हिन्दू राजाओं के हाथ से राजसत्ता निकल कर मुगलों के हाथ में गयी, तो यहाँ जो परिवर्तन इसके फल स्वरूप हुए वे स्वाभाविक थे । इसी नई अवस्था में हमें तब तक रहना

पडा, जब तक कि मुगल साम्राज्य का पतन न हुआ और भारत का शासन-सूत्र एक अन्य विदेशी जाति-अंग्रेजों के हाथ में चला गया ।

मुगल शासन काल के हिन्दी और तेलुगु उपन्यास के उद्भवकालीन परिस्थितियाँ लग-भग समान ही हैं । हिन्दी और तेलुगु दोनों राज्यों में मुगलों का अधिकार ही चल रहा था ।

हिन्दी प्रदेश में औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता और हिन्दू धर्म के प्रति असहिष्णुता के फलस्वरूप इस धर्म पर अनेक आघात हुए । ब्राह्मण लोग धर्म के तत्व, ज्ञान आदि को भूल कर, अज्ञानवश दान लेने में ही अपने धर्म की इतिश्री समझने लगे । अज्ञानी और अशिक्षित जनता भी अन्धविश्वासों में पडकर धर्म-विमुख हो रही थी । जाति की दुर्बलता और प्राणशून्यता के कारण सामाजिक कुरीतियाँ बढ़ रही थीं । सती प्रथा, बाल-विवाह, बाल-हत्या आदि प्रथाएँ अब तक बन्द न हो पायी । जातियाँ और उप - जातियों की बहुलता के कारण संगठन होना असंभव सा था ।

तेलुगु प्रदेश में भी इसी स्थिति थी । इस समय के एक भी गाँव मुसलमानों के दुष्कार्यों से नहीं बच सका । धर्मान्ध मुसलमान शासक मन्दिरों को लुटवाते थे । हिन्दू स्त्रियों को सताते थे । हिन्दू संस्कृति की अवहेलना करते थे म मुसलमान शासकों और सैनिकों ने मन्दिरों का नाश करके उनके स्थान में मसजिद, दर्गा, ईदगाह

आदि का निर्माण किया था । मुगल शासकों ने तेलुगु राज्य को अपनी जायदाद मानकर लोगों को लूटा थे । उस समय की प्रजा अकाल और लूटमार से पीड़ित थी धन, मान, प्राणों को खोये थे । दुष्प्रशासन अनावृष्टि, आक्रमणों, युद्धों, अधिक कर, पिण्डारियों के दुष्कार्यों, मुसलमानों के कुकर्मों आदि से तेलुगु प्रजा निराश थी ।

अठारहवीं शताब्दी में मुगल साम्राज्य का पतन हुआ और उसने अपना प्रभुत्व खो दिया । प्लासी और बक्सार की लड़ाइयों में विजय प्राप्त होने के बाद पूरा देश में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में अंग्रेजी शासन लागू हुआ । ब्रिटिश औपनिवेशिक जुए के विरुद्ध उन्नीसवीं शताब्दी के संपूर्ण पूर्वार्द्ध में आबादी के विशिष्ट वर्गों की छिटपुट, सर्वथा स्थानीय कार्यवाइयों में अभि-व्यक्त होने वाला रोष तब कुछ कुछ एकाकार होने लगा, जब राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व दीर्घकाल से संघटित कार्रवाइयों के अभ्यस्त सिपाहियों ने अपने हाथों में ले लिया । फलत: 1857 का महान जन विद्रोह हुआ ।

1857 के महान जनविद्रोह का प्रभाव जितने गम्भीर रूप से हिन्दी प्रदेशों पर पड़ा उतना प्रभाव तेलुगु प्रदेश पर नहीं पड़ा । इसका कारण यह है कि 1857 के गदर में भाग लेनेवाले सिपाही लगभग पूर्णत: अवध, बिहार और उत्तर पश्चिमी प्रान्तों

के थे । 1857 माई 11 को विद्रोहियों ने दिल्ली पर कब्जा किया । बाद में अलीगढ़, बरेली, लखनऊ, कानपुर, इलाहाबाद आदि नगर विद्रोहियों के वश में आ गये । 14 दिसम्बर 1857 को अंग्रेजों ने, जिन्होंने अबतक अपनी फौजें जमा कर ली थी, दिल्ली पर धावा बोल दिया और पांच-पांच दिन के बाद नगर और किले पर कब्जा कर लिया । धीरे-धीरे बाकी नगरों पर जो विद्रोहियों के कब्जे में थे । उन पर भी अंग्रेजों ने अपना अधिकार जमा लिया था ।

दिल्ली पर कब्जा करने के बाद अंग्रेजों ने विद्रोहियों के खिलाफ जो बर्बरतापूर्ण प्रतिशोध की कार्रवाइयाँ की, वे बहुत भयंकर और अविस्मरणीय हैं । दिल्ली स्थिति ब्रिटिश सेना की सहायता करने के लिए जनरल नील कलकत्ते से आते हुए, रास्ते में पड़नेवाले विद्रोही बनारस और इलाहाबाद नगरों में सिपाहियों और आबादी का निर्ममतापूर्वक संहार किया । उसके बाद के जनरल हैवलक ने भी अपनी बारी में अपने रास्ते में आनेवाले गाँवों को जलाकर और सैकड़ों को पेड़ों पर लटकाकर फाँसी देकर सचमुच कत्लेऽआम किया । 19 मार्च 1858 को लखनऊ पर अन्तिम कब्जा हो गया और लगभग दो हफ्तों तक ब्रिटिश फौजें लूट और कत्लेआम मचाती रहीं । लूट का माल वस्तुतः बहुत अधिक था ।

1857 में उत्तर में जब अंग्रेजों के खिलाफ बगावत की बात मालूम हुई तो तेलुगु राज्य में भी उसकी प्रतिक्रिया हुई। स्वदेशी जमीन्दारों, देश भक्तों, मंत्रि, प्रजा आदि विद्रोहियों से हाथ मिलाकर अंग्रेजों को भारत से भगाने के लिये एकत्रित होने लगे थे। दक्षिण भारत में प्रमुखत: निजाम राज्य में इस विद्रोह का प्रभाव कम था। निजाम इस विद्रोह को प्रोत्साहन नही देने के कारण विद्रोहियों और प्रजा निराश हुए थे।

1857 जुलाई 7 को हैदराबाद के बेगम बाजार में सैकड़ों रोहिल्ल लोगों ने तुर्रेबाजखान और मौलवी अल्लाउद्दीन के नेतृत्व में रेसिडेन्सी पर धावा बोल दिया। दो घंटे तक लड़ाई हुई। तुर्रेबाजखान को गिरफ्तार किया गया। अल्लाउद्दन मर गये। आदिलाबाद जिले में रामजी गोंड के नेतृत्व में गोंड लोगों ने अंग्रेजों का विरोध किया। उस युद्ध में गोंड हार गये। रामजी गोंड को निर्मल में एक पेड के नीचे फासी की सजा दी गई। महबूबनगर जिले में भी पंडुग सायन्ना को इसी कारण मौत की सजा दी गई।

निजाम के प्रधान मन्त्री सालार जंग ने अंग्रेजों का पक्ष लेकर यह सारा काम किया। विद्रोह को कुचल कर देश को उन्होंने गुलाम बना दिया।

हिन्दी और तेलुगु उपन्यास की उद्भवकालीन आर्थिक स्थिति हिन्दी और तेलुगु दोनों प्रदेशों में लग-भग समान ही थी । असका कारण यह है कि ब्रिटिश सरकार ने केन्द्रीय सत्ता प्राप्त कर ली और प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से लग भग पूरे भारत में उन्हीं की आर्थिक नीति चल रही थी ।

ब्रिटेन में औद्योगिक पूँजीपति वर्ग द्वारा अपनी स्थिति मजबूत करने के बाद भारत का आर्थिक विकास अधिकाधिक रूप में उस वर्ग के हित में होने लगा । भारत को धीरे-धीरे ब्रिटिश वस्तुओं के बाजार और ब्रिटिश उद्योग के कच्चे मालों के स्रोत में परिवर्तित किया जा रहा था ।

ब्रिटन की सीमा शुल्क नीति के कारण भारत को पहले की भाँति कपडों का निर्यात करने के स्थान पर इसका आयात शुरू करने के लिए विवश होना पडा । अन्य मालों के संबंध में भी घटनाक्रम इसी प्रकार चला ।

उन्नीसवीं शताब्दी के पाँचवें, छठे और सातवें दशकों में विशेष रूप से विद्रोह के दौरान किसानों के बीच असन्तोष रूप से विद्रोह के दौरान किसानों के बीच असन्तोष की बढ़ती लहने उपनिवेशवादियों को विद्रोह के बाद के तीन दशकों में बंगाल, उत्तर पश्चिमी प्रान्त, पंजाब और मध्य प्रान्त में जमीन्दार

काश्तकार संबन्धों के नियामक कानून बनाने के लिए विवश किया । औपनिवेशिक काश्तकारी कानून ने, जिसका उद्देश्य भारतीय किसानों के असंतोष को रोकना था, व्यवहार में उनके शोषण की सामंती विधाओं को बढ़ावा ही दिया ।

अंग्रेजों को तेलुगु राज्य में प्रशासनिक अधिकार मिलने के बाद उसके द्वारा जनता पर कर लगा कर लाभार्जन करना शुरू किया । इससे जितना अधिक लाभार्ज वे कर सकते थे, उस दृष्टि से बार-बार लगान की पद्धति में परिवर्तन करते गये । अंग्रेजों के प्रशासन के अंतर्गत आनेवाले उत्तर सरकारी जिलों की जमीनें, हवेली व जमीन्दारी जमीने नाम से दो प्रकार की थीं सरकार अपने लिए जिन जमीनों को रख चुकी थी वे हवेली जमीने कहलाई और इसमें रहने वाले किसान सरकार से सीधा सम्बन्ध स्थापित कर सरकार द्वारा नियुक्त नौकरों को लगान अदा करते थे । जमीन्दारी जमीनों के लिए उनके नाम पर व्यवहृत बघौलिया लगान वसूल करते थे । पहले लगान वसूल करने में नीलम पद्धति चलती थी । इससे जनता की स्थिति दुर्भर बनी तथा कंपनी को मिलने वाली आमदनी बाकी रह गयी । बाद में स्थाई लगान पद्धति अमल में आयी । इससे अंग्रेज सरकार को वांछित लाभ की सिद्धि हुई । क्रमशः आय की भी वृद्धि हुई । स्थाई वृद्धि से प्रशासन और भी सुदृढ़ बना । लेकिन किसानों की स्थिति में कुछ परिवर्तन नहीं हुआ । 1800 ई से 1850 ई· तक के मध्यकाल में तेलुगु देश का जनसंख्या दुगुनी हुई ।

इसी कारण जमीन पर दबाव बढ़ गया । किन्तु जमीनों का अधिकतम भाग केवल वर्षा पर निर्भर था । वर्षा के अभाव के कारण कई सालों तक अकाल पड़ता रहा । गोदावरी, कृष्णा आदि नदियों में पानी थोडी मात्रा में ही पानी बहा करता था । पानी के अभाव के कारण फसलें सूख गई थी । गुण्टूर जिले में इसकी तीव्रता रही, इस जिले के पाँच लाख लोगों में से दो लाख लोग मर गये । बाद में 1852 में गोदावरी नदी पर बाँध का निर्माण हुआ । लेकिन किसानों के जीवन में काफी सुधार नहीं हुआ ।

19 वीं शताब्दी के बीच में भारत ब्रिटिश पूँजी के लिए निवेश का एक क्षेत्र बन गया । कच्चे मालों के स्रोत तथा बाजार के रूप में भारत के शोषण के लिए ब्रिटिश सरकार को संचार और परिवहन के आधुनिक साधनों की आवश्यकता थी । इसी पूर्ति के लिए रेल्वे का उदय हुआ । इस प्रकार रेल्वे की सहायता से अंग्रेजी सरकार ने देश के दासीकरण और शोषण में सफलता पाई ।

हिन्दी और तेलुगु उपन्यास के उद्भवकालीन हिन्दी और तेलुगु प्रदेशों के सामाजिक परिस्थितियों में विषमताएँ कम और समानताएँ अधिक है । दोनों प्रदेशों के सामाजिक परि - स्थितियाँ लग-भग समान ही है ।

उस समय के हिन्दी और तेलुगु दोनों प्रदेशों का समाज पतनावस्था में था। शिक्षा की कमी भी इसका एक कारण था। विलास-प्रियता तथा अत्यधिक मद्यपान ने अधिकारियों को पतन के गर्त में गिरा दिया था। समाज के प्रत्येक वर्ग में अंधविश्वास, अशिक्षा तथा कुरीतियाँ आदि फैली हुई थीं। जनता का ज्योतिष आदि पर विश्वास था, अत: अज्ञानी एवं अपढ़ लोगों ने उसे ठगने का एक रास्ता यह भी अपना लिया था। धार्मिक अंधविश्वास से जनता की उन्नति के मार्ग बन्द कर दिये गये थे। चरित्र-हीनता तत्कालीन समाज की मुख्य प्रवृत्ति थी। मठ तथा अन्य धार्मिक स्थान व्यभिचार बड़े-बड़े अड्डे बन चुके थे। शासकों में अधिकांश विलास-प्रिय होते थे। उच्च लोगों में तड़क-भड़क तथा ऐश्वर्य-प्रदर्शन की भावना व्याप्त थी। ये लोग भड़कीले तथा कीमती वस्त्रों का उपयोग करते थे। स्त्रियों में अशिक्षा, अज्ञान तथा अन्धविश्वास ही अपेक्षाकृत अधिक होने का कारण सम्भवत: उनकी पर्दे की प्रथा तथा रूढ़िवादिता थी।

इन सारे सामाजिक परिस्थितियों का सहज चित्रण हिन्दी और तेलुगु के प्रथम उपन्यासों में देख सकते हैं।

हिन्दी के प्रथम उपन्यास श्री श्रीनिवासदास कृत "परीक्षा गुरु" (1882 ई.) के नायक लाला मदन मोहन आचार-विचारों से विलासी और विदेशी वस्तुओं के प्रयोग में

सम्मान का अनुभव करने वाला दिल्ली का एक प्रतिष्ठित रईस है। मानसिक दृढ़ता के अभाव में मित्रता का मुखौटा पहने मुंशी चुन्नीलाल, मास्टर शिम्भूदयाल आदि चाटुकार लाला साहब की मिथ्या प्रशंसा करके अपने स्वार्थ सिद्ध करते रहते हैं। पैसे की अभाव में भी कीमत की परवाह किए बगैर प्रशंसित वस्तु को तुरन्त खरीद लिया जाता है। उनका पतन इस सीमा तक हो जाता है कि वे व्यापारियों के ऋणग्रस्त हो जाते है। अपमानित हरिकिशोर द्वारा किये प्रचार से सब लेनदार अपना कर्ज वसूल ने आते हैं। पैसे न मिलने की अवस्था में वे अदालत की शरण लेते हैं। परिचित मित्र सहायता के नाम पर धोखा देते हैं। दिवालियेपन की इस स्थिति में अदालत से मदन मोहन की कुर्की आजाती है। और वे गिरफ्तार होकर जेल जाते है। अन्त में उनकी पत्नी और सच्चे हितैषी ब्रजकिशोर के सहायता से हवालत से मुक्त होता है। हृदय-परिवर्तन के क्रम में मदन मोहन को स्वेच्छाचारिता और स्वतन्त्रता, सच्ची मित्रता और चाटुकारिता, सज्जनता और दुर्जनता, सावधानी और चालाकी का अन्तर समझ में आने लगता है और वे प्रामाणिक भाव से रहने के लिए प्रस्तुत हो जाते हैं। उन्हें इस प्रामाणिक भाव से रहने को प्रेरित करने में "परीक्षा" ही गुरु सिद्ध होती है।

तेलुगु के प्रथम मौलिक उपन्यास "राजशेखर चरित्रमु" (1878 ई.) के लेखक श्री कन्दुकूरि वीरेशलिंगम पन्तुलु ने उस समय की सामाजिक स्थिति का वास्तविक चित्रण किया है। इस उपन्यास के नायक राजशेखरम धवलेश्वरम् नामक कस्बे के एक सम्पन्न गृहस्थ हैं।

उस गाँव के ज्योतिषी रामशास्त्री आदि चाटुकार सदा राजशेखरम की खुशामद कर, उनसे पैसा ऐंठते रहते हैं। राजशेखरम अपनी प्रशंसाएँ सुन फूलकर, पैसा बहाने वाले स्वभाव के हैं। ज्योतिषी रामशास्त्री, नंबि राघवाचार्य आदि उस गाँव के लोगों के अति - रिक्त दूसरे गावों के लोग भी राजशेखरम के यहाँ आते हैं और दो-तीन दिन रहकर सत्कार ग्रहण कर जाते हैं। व्यर्थ के आडम्बर तथा खुशामदियों के छलकपट से वे निर्धन हो जाते हैं। राजशेखरम को मन्त्रतन्त्रों पर विश्वास रहता है। इसी कारण वे स्वर्णविद्या जनने वाला सन्यासी, चुरायी गयी वस्तु का पता बताने वाला हरिशास्त्री नामक ढोंगी, झाड़-फूँक ने वाला मान्त्रिक आदि से धोखा खाते है और लुट जाते है। कर्जदारों के तकाजे भी शुरू होते हैं। थोड़े दिनों में राजशेखरम की स्थिति ऐसी हो जाती है, मानो जिस गाँव में वे फूल बेच रह थे, वही उन्हें लकड़ियाँ बेचना पड़े। वहाँ उनसे रह नहीं जाता। तब वे मान- सिक शान्ति के लिए पुण्य क्षेत्रों के दर्शन के लिए निकल पड़ते है। अनेक अनुभव और कष्टों से गुजरने के बाद अन्त में उनकी स्थिति फिर पूर्व की तरह ठीक हो जाती है। राजशेखरम की हालत को सुधरते देख खुशामदी फिर उन्हें घेर लेते हैं किन्तु अब वे विवेक से काम लेते हुए, समाज के दोषों तथा कुरीतियों का विरोध करते हुए उन्हें सुधारने के प्रयत्न में समय बिताने लग जाते हैं।

" परीक्षा गुरु " एवं " राजशेखर चरित्रमु " दोनों उपन्यासों को परखने से हमें यह मालूम पड़ता है कि हिन्दी और तेलुगु उपन्यास के उद्भवकालीन सामाजिक परिस्थितियाँ लगभग समान ही हैं ।

हिन्दी और तेलुगु उपन्यास साहित्य के उद्भव कालीन उपन्यासों के इतिवृत्त में समानता दिखाई देता है, इसका कारण यह हो सकता है कि इस काल (1872 से 1920 तक) के दोनों प्रदेशों के सामाजिक परिस्थितियों में साम्यता थी ।

हिन्दी के " परीक्षा गुरु " से लेकर प्रेमचन्द का प्रथम उपन्यास सेवासदन तक और तेलुगु के " राजशेखर चरित्रमु " से " मालपल्ली " तक के उपन्यासकारों का उद्देश्य समाज सुधार और मनोरंजन ही रहा ।

उद्भव कालीन हिन्दी उपन्यासों को अध्ययन की सुगमता के लिए तीन वर्गों में विभक्त कर सकते है ।

1. शुद्ध मनोरंजन प्रधान उपन्यास
2. उपदेश-प्रधान सामाजिक उपन्यास
3. ऐतिहासिक उपन्यास

शुद्ध मनोरंजन प्रधान उपन्यासों के अंतर्गत तिलस्मी और जासूसी उपन्यास आते हैं। तिलस्मी उपन्यासों में सर्वाधिक ख्याति देवकीनन्दन खत्री को प्राप्त हुई। इनके तिलस्मी रचनाएँ "चन्द्रकान्ता", "चन्द्रकान्ता सन्तति", "भूतनाथ" आदि सुप्रसिद्ध हैं। जासूसी उपन्यासों का श्रीगणेश गोपालराय गहमरी ने किया। इनके जासूसी रचनाएँ "लाल पंजा", "रक्तमण्डल" "सफेद शैतान" आदि सुप्रसिद्ध है।

नीतिपरक सामाजिक उपन्यासों का शिल्पन्यास बाबू श्रीनिवासदास ने अपने उपन्यास "परीक्षा गुरु" से किया। इस धारा को गति देने का श्रेय श्री बालकृष्ण भट्ट, अयोध्यासिंह उपाध्याय, मेहता, लज्जाराम, ठाकुर जगमोहन सिंह, गोस्वामी आदि को मिलता है।

हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यास धारा को आरम्भ करने का श्रेय जयशंकर प्रसाद को मिलता है। इनका "इरावती" एक अधूरा उपन्यास है। इस धारा को आगे बढ़ने वालों में वृन्दावन लाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, राहुल सांस्कृत्यायन, चतुरसेन शास्त्री आदि प्रमुख हैं।

तेलुगु उपन्यास साहित्य में तिलस्मी उपन्यास धारा का विकास नहीं हुआ। जासूसी उपन्यास धारा भी लम्बी समय तक नहीं रह पाया । इन जासूसी रचनाओं से, जो अधिक तर विदेशी भाषाओं से और वंग, कन्नड आदि देशी भाषाओं से अनूदित हैं। लगभग 1910 ई॰ में " वेगुचुक्का संस्था " द्वारा इन उपन्यासों का प्रकाशन होना शुरू हुआ । इस धारा के नींव श्री चिन्ता दीक्षितुलु ने अपनी उपन्यास " चित्रलेखा " से डाला । इस धारा को आगे बढ़ाने वालों में राघवराव, रोमाराजु रामानुजराव, मास्वाड नारायण मूर्ति, आन्ध्र, शारदा आदि प्रमुख है ।

सामाजिक उपन्यास धारा वीरेशलिंगम के " राजशेखर चरित्रमु " से शुरू होता है । इसे विकास की ओर ले जाने वालों में चिलकूर्ती, उन्नवजी, बापिराजु, विश्वनाथ, कृष्णाराव आदि प्रमुख है ।

ऐतिहासिक उपन्यास धारा तो चिलकमूर्ति के " हेमलता " से आरम्भ होती है । इस धारा को आगे बढ़ाने वालों में विश्वनाथ, बापिराजु, नोरिनरसिंह शास्त्री, नेल्लटूरि वेंकट रमणय्या, तेन्नेटि सूरि, मल्लादि वसुंधरा, धूलिपाल, कोर्लपाटि, पिलका गणपति शास्त्री आदि प्रमुख है ।

उद्भवकालीन हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों को ध्यान से परख ने के बाद कुछ विषमताएँ भी दिखाई दे रहे है । वे निम्नांकित है --

हिन्दी का पहला तिलस्मी उपन्यास "चन्द्रकान्ता" 1992 ई॰ में प्रकाशित हुआ । बाद में इस धारा आगे बढ़ती गयी । लेकिन तेलुगु में इस तरह का तिलस्मी उपन्यास धारा के विकास नहीं हुआ । कारण यह है कि, तेलुगु के प्रथम उपन्यासकार वीरेशलिंगम जी पहले समाज सुधारक थे और बाद में उपन्यासकार । तेलुगु उपन्यास के आरम्भ से लेकर दस साल तक इस क्षेत्र में कंदुकूरि के सिवा और कोई उपन्यासकार नहीं रहा । और उनके बाद में आने वाले उपन्यासकार भी उन्हीं के पदचिह्नों में चले थे ।

सामाजिक उपन्यासों का विकास जितना तेज गति से तेलुगु क्षेत्र में हुआ उस तरह हिन्दी में नहीं हुआ । इसका कारण यह है कि - "उन्नीसवीं शताब्दी तक हिन्दी का विशिष्ट बुद्धिजीवी वर्ग तैयार नहीं हुआ, पहले मुगल काल में फारसी का और फिर अंग्रेजों के भारत आगमन और सन् 1957 की क्रान्ति की विफलता में अंग्रेजी परस्त मानसिक दासकी प्रतीक वह पीढी तैयार की, जो हर दृष्टि से पश्चिमी संस्कृति, भाषा और साहित्य की दास बनाती चली गई । एक ओर कीट्स शैली और थैकर डिक्स को महान कहने वाली पीढ़ी तो दूसरी ओर अयोध्यासिंह उपाध्याय

तथा किशोरीलाल गोस्वामी जैसे कट्टर परम्परावादी कथाकार भारतीय नये पीढ़ी को कैसे अपने प्रभाव में ला सकते थे ।

उदाहरण के लिए उपाध्याय जी के " ठेठ हिन्दी के ठाट " को लीजिए, इसमें लेखक ने एक चौदह वर्षीय बालक देवनन्दन और बालिका देवबाला बाला में बाल सुलभ स्नेह, निष्कपट दुलार और एकान्त होने की उत्कंट इच्छा दर्शाई है, किन्तु देवबाला का पिता उसका विवाह पापाचारी से कर देता है जो उसे छोड़कर कलकत्ता में एक रखैल के साथ रहने लगता है । देवबाला एक स्थल पर कहती है, " पति नारी का देवता है, वह कैसा ही क्यों न हो पर तिरिया उसका अयोग और बुरा नहीं चाह सकती । "[1] देवबाला एक परम्परावादी आदर्श नारी है, जिसमें लेखक ने भारतीय पतिव्रता धर्म का जय घोष दर्शाया है । यह उपन्यास देश की कुरीतियों, झूठे धार्मिक आडम्बरों, थोथी पारम्परिक मान्यताओं पर एक व्यंग्य भी है, साथ ही प्राचीनता के प्रति आस्था का परिचायक भी है । इस आस्था के मोह ने ही उन्नीसवीं शताब्दी के युवा पीढ़ी को दिग्भ्रान्त कर दिया और उसने शुद्ध साहित्यिक प्रवृत्ति से मुँह मोड़कर सहज मनोरंजन प्रचार प्रवृत्ति की ओर झुकना श्रेयस्कर समझा ।

---

1. अयोध्यासिंह उपाध्याय - ठेठ हिन्दी का ठाट - पृ. 45.

उद्भवकालीन हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों की प्रवृत्तियों में समानता ही दिखाई देता है। इसका कारण यह है कि — आरम्भ कालीन भारतीय उपन्यास साहित्य समाज के क्षीणोन्मुख सामन्ती रूप तथा विकासशील उत्पादन की नयी शक्तियों और संस्कृति की सम्मिलित देन है जिसका वस्तु-मूल अधिकत: इसके पूर्ववर्ती और अंतत: तत्कालीन समाज में है। इस समय में भारतीय सामंती व्यवस्था व जमीन्दारी व्यवस्था का पूर्णत: विनाश नहीं हो पाया। फलस्वरूप तत्काल में जहाँ एक ओर अंग्रेजी शिक्षा और शासन और नीतियों के द्वारा मध्यवर्ग और उससे उपन्यासों का विकास हुआ वहीं दूसरी ओर उन्हीं के फलस्वरूप भारतीय लेखकों में अपने देश और समाज के सम्बन्ध में विचार करने की प्रवृत्ती जागी। अत: आदिकालीन हिन्दी और तेलुगु के उपन्यास साहित्य में चाहे सामाजिक उपन्यास साहित्य हो या ऐतिहासिक, सामाजिक कुरीतियों का निर्मूलन लेखकों का आशय रहा। इसलिए आरम्भिक कालीन सामाजिक उपन्यासों में तत्कालीन समाज के परिव्याप्त कुरीतियों, मुख्यत: पारिवारिक जीवन की समस्याओं, संयुक्त परिवार, पारिवारिक कलह, विधवा जीवन, बाल विवाह, व्यभिचार, वेश्यागमन, पतिव्रता का आदर्श, देवदासी का कुत्सित जीवन, धार्मिक रूढ़ियाँ, पुलिस अदालत के अकथनीय अत्याचार, दहेज प्रथा, स्त्री शिक्षा, भ्रष्टाचार, सती प्रथा, सरकारी कर्मचारियों में परिव्याप्त भ्रष्टाचार का प्रतिपादन कथ्य के रूप में हुआ था।

इस प्रकार की प्रवृत्तियाँ हिन्दी के आरम्भ कालीन उपन्यासों जैसे भाग्यवती, परीक्षागुरु, विधवा विपत्ति और तेलुगु के आरम्भ कालीन उपन्यासों जैसे राजशेखर चरित्रमु, सत्यवती चरित्रमु, रामचन्द विजयमु आदि उपन्यासों में स्पष्ट रूप से दिखाई देते है ।

ब्रिटिश सरकार के शिक्षा का प्रसार भारत में अपने स्वार्थ के लिए करने पर भी परिणाम हमारे हित में ही हुए । धीरे-धीरे शिक्षित मध्यवर्ग का उदय हुआ । इस मध्यवर्ग ने यूरोप के आधुनिक लोकतांत्रिक विचारों को आत्मासात कर लिया और अपने देश की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्थाओं में सुधार के लिए मध्ययुगीन रुढ़िवादिता के साथ ब्रिटिश साम्राज्य का विरोध किया । इसके पूर्ति के लिए साहित्य के माध्यम को अपनाया गया । फलत: उपन्यास का जन्म हुआ । इसके द्वारा वे सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक समस्याओं को जनता के सम्मुख रख कर उसे जगाने की कोशिश की । इस तरह उपन्यासकारों का उदय हिन्दी और तेलुगु में ही नहीं सम्पूर्ण भारत के सभी भाषाओं में शिक्षित मध्यवर्ग से ही हुआ ।

उपन्यास के विकास युग में शिक्षा का प्रसार के साथ-साथ औद्योगीकरण भी हुआ है । फलत: देश के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक सांस्कृतिक आदि सभी परिस्थितियों में परि - वर्तन होने लगा । विकास युग के पहले चरण में भारतीय जनता के

सामने केवल एक ही ध्येय प्रमुख था - स्वतन्त्रता । किन्तु स्वतंत्रता के तुरन्त बाद अनेक समस्याएँ उत्पन्न हुए । उनमें पुनरावास की समस्या देशी राज्यों के विलीनीकरण, प्रशासनिक इकाइयों के निर्माण एवं विस्तार शिक्षा एवं राष्ट्र की निर्माण की समस्या प्रमुख है । स्वतन्त्रता के पश्चात भारत में चार वर्ग प्रमुख बन गए - पूँजीवादी या उद्योगपति वर्ग, मजदूर या कामगार वर्ग, किसान वर्ग व बुद्धि - जीवि वर्ग । ये चार वर्ग चार सिद्धान्तों के प्रतीक है । पूँजीवाद, औद्योगीकरण पाश्चात्य अनुकरण, भौतिक साधनों की उन्नति ने एक ओर बडी-बडी इमारतों, राजभवनों को खडा किया तो दूसरी ओर गरीबी के प्रतीक हजारों झोपडे नित्य खडे होते जा रहे-हैं। संविधान में भारत को धर्म निरपेक्ष राष्ट्र घोषित किया गया है । जनता ने व्यक्ति की महत्ता को प्रतिष्ठित किया है । साम्प्र - दायिकता, धार्मिक कट्टरता आदि से सम्बन्धित परम्परागत मूल्य वैधानिक रूप से समाप्त हो गए हैं । विभिन्न रूढ़ीग्रस्त सामाजिक मूल्यों का संविधान द्वारा निषेध हो जाने पर नए स्वास्थ मूल्यों की स्थापना हो रही है । मौलिक अधिकारों से व्यक्ति के मानसिक जगत में परिवर्तन आया है । संचार साधनों का विकास हुआ । भिन्न संस्कृतियों के प्रभाव से राजनीतिक एवं सामाजिक विचार - धारा में परिवर्तन आया है । देश की बदलती हुई राजनीतिक परिस्थितियों ने अनेक विचार धाराओं को जन्म दिया है । अत: विभिन्न राजनीतिक वादों का जन्म भारत में भी हुआ है ।

ये राजनीतिक वाद मुख्यत: गान्धीवाद, मार्क्सवाद एवं समाजवाद के रूप में आये । इन तीनों की अभिव्यक्ति स्वतन्त्रता के बाद के हिन्दी और तेलुगु के दोनों उपन्यासों में हुई है ।

उदाहरण केलिए कुछ हिन्दी उपन्यास -- " यशपाल के उपन्यास " देशद्रोही " में मार्क्सवाद का खुला समर्थन किया गया है । त्रिभुवन सिंह के शब्दों में " देशद्रोही के अन्दर दादा कामरेड की भाँति अन्य भारतीय राजनैतिक दलों की छीछालेदर नहीं की गई है, बल्कि लेखक का एक मात्र लक्ष्य भारतीय कम्यूनिष्ट पार्टी का समर्थन करना है । वह साम्यवाद का प्रचार करना चाहता है ।"[1]

" विषादमठ " रांगेयराघव का एक समाजवादी चेतना युक्त उपन्यास है । बंगाल के एक गाव को उपन्यास का केन्द्र बनाकर लिखा गया । इसमें अरूण का कथन है -- " भीख से गरीबी मिटती नहीं, उसकी अवधि वास्तव में बढ़ती है । बंगाल चावल नही चाहता, क्रान्ति चाहता है । अगर नही कर सकता तो आजाद होने का उसे हक ही नहीं है । आजादी छिनने और भूखे से बढ़कर कौन क्रान्ति कर सकता है ।" [2]

---

1. त्रिभुवनसिंह, हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वारणासी - 1973 - पृ. 206.
2. रांगेयराघव - विषादमठ, राजपाल एण्ड सन्स - दिल्ली 1971 चौथा संस्करण - पृ. 63.

जैनेन्द्र ने " सुनीता " उपन्यास में गांधीवाद का समर्थन किया है । श्रीकान्त का सिद्धान्त है प्रेम अहिंसा से जीवन का उन्नयन । उनका चरित्र गांधीवादी सिद्धान्तों पर आधारित है ।

अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारतीय समाज व्यवस्था गांवों पर आधारित थी । ग्राम समाज वर्ग व्यवस्था की श्रृंखलाओं में जकड़ा हुआ था । लेकिन अंग्रेजों के आगमन के साथ भारत में उस नवीन दृष्टि का प्रवेश हुआ जिसमें नवजागरण, औद्योगीकरण, वैज्ञानिक अन्वेषण, जागरूकता, नवीनता और ताजगी का समावेश था । आर्थिक क्षेत्र में परिवर्तन के कारण मध्यवर्गीय समाज के संयुक्त परिवारों का विघटन होने लगा । अब जाति का स्थान वर्ग ने व संयुक्त परिवार के स्थान पर आणविक परिवार पनपने लगे । औद्योगीकरण ने पूंजीपति वर्ग को जन्म दिया तो औद्योगिक विकास एवं शिक्षा के प्रसार ने मध्यवर्ग को जन्म दिया । अंग्रेजी आर्थिक नीति ने खेतीहर मजदूर शहरों की ओर उन्मुख किया । हिन्दी और तेलुगु दोनों के उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में इन परिवर्तित परिस्थितियों का चित्रण किया । हिन्दी के प्रेमचन्द की " गोदान " और प्रसाद की " तितली " तेलुगु के उन्नव लक्ष्मीनारायण की " मालपल्ली " में उक्त कथन को पुष्टि मिलती है ।

उदाहरण के लिए कुछ तेलुगु उपन्यास --

उन्नव लक्ष्मीनारायण के उपन्यास " मालपल्ली " में गाधीवाद, मार्क्सवाद और समाजवाद इन तीनों का उद्भुद चित्रण किया गया है। इस उपन्यास में रामदास गांधीवाद का प्रतीक है, तक्केल्ल जग्गडु मार्क्सवाद का प्रतीक है और संगदास समाजवाद का प्रतीक है।

महीधर राममोहन राव के उपन्यास " कोल्लाइगहिते नेमि " में गांधीवाद और समाजवाद का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार स्वतंत्रता के पश्चात सामाजिक परिवर्तन का कारण पाश्चात्यीकरण, शहरीकरण औद्योगीकरण, यन्त्रीकरण आदि का विकास एवं प्रसार रहा है। औद्योगीकरण ने औद्योगिक बस्तियों का निर्माण कर क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित किए है। शहरीकरण ने सामाजिक सम्बन्धों को प्रभावित किया है।

19 वीं शताब्दी के आरम्भ में विभिन्न धार्मिक एवं राजनीतिक कारणों से समाज में हो रहे विभिन्न परिवर्तनों एवं जड़ व अस्थाहीन सामाजिक, धार्मिक परम्परा का विरोध होने से नई परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई। इन परिस्थितियों का

प्रभाव हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों पर समान रूप से पडा । इस युग के लेखक राजनीतिक और सामाजिक दृष्टि से जागरूक थे । सुधार - वादी प्रवृत्ति के कारण ये समाज का विकास तो चाहते थे किन्तु उग्रता के नाम पर क्रान्ति नही चाहते थे ।

यह युग राजनीतिक उथल-पुथल का युग था । सामन्ती युग की समाप्ति, हिन्दू मुस्लिम झगड़े, कांग्रेस का राजनीतिक संघर्ष तथा गान्धी का अहिंसावाद इस युग के उपन्यासों में स्पष्ट दिखाई देते है । इस विकास युग के उत्तरार्ध में सन् 1940 ई तक उपन्यासों में और भी अधिक गहराई आई जीवन के प्रति दृष्टिकोण और भी अधिक विस्तृत हो गया । साहित्य में यह परिवर्तन नए सम्बन्धों तथा समझौते के स्थान पर विद्रोह के कारण आया था । इन कारणों को जन्म देनेवाली तत्कालीन सामाजिक तथा आर्थिक विषमताएँ थीं । सामाजिक क्षेत्र में व्यक्ति घर के दायरे को तोडकर राजनीतिक प्रक्रियाओं का निकष बन गया था । नवीन जीवन पद्धति ने समाज को दो विपरीत दिशाओं में बाँट दिया था । इस युग के उपन्यासकार व्यक्तिवादी व समष्टिवादी दोनों रूपों में पहचाने जाते है । उपन्यास उनके प्रवृत्ति के आधार पर विभाजित हो गये ।

हिन्दी उपन्यासों की मुख्य प्रवृत्तियाँ थीं सामाजिक यथार्थवादी, व्यक्तिवादी, मनोविश्लेषणात्मक, आँचलिक, व्यंग्यात्मक, ऐतिहासिक आदि ।

तेलुगुउपन्यासों की भी प्रवृत्तियाँ भी सामाजिक, हास्यरसात्मक, मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक आदि । तेलुगु में विशेषकर व्यक्तिवादी उपन्यास धारा को नहीं बढ़ाया गया, उसे मनोवैज्ञानिक धारा में मिलाया गया । वैसे ही तेलुगु में तेलंगाना आँचल के कुछ आँचलिक उपन्यास निकले लेकिन इस धारा का जितना हिन्दी में विकास हुआ उतना तेलुगु में नहीं हुआ ।

लेखक भी समाज का एक सदस्य होने के कारण सामाजिक समस्याओं को बहुत निकट से देखता है, उन पर विचार करता है और उनको अपनी कृति में प्रस्तुत करता है । समस्याओं या घटनाओं को जैसे के वैसे प्रस्तुत करने से वह कृति एक सामाजिक दस्तावेज बनती है लेकिन उपन्यास नहीं । इसलिए उपन्यासकार इतिहास को एक नई दृष्टि प्रदान करके उसे प्रस्तुत करते है । कुछ उपन्यासकारों ने सामाजिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया कुछ ने नहीं प्रस्तुत किया । उपन्यासों में मुख्य सामाजिक समस्याओं का चित्रण निम्नांकित है --

हिन्दी उपन्यासों में धर्माडम्बर, विधवा समस्या, अछूतों की समस्या, वेश्या वृत्ति, पूंजीवादी आर्थिक विषमता से उत्पन्न समस्याएँ तथा उनकी प्रतिक्रिया आदि को प्रस्तुत किया गया ।

इस समय के तेलुगु उपन्यासों में भी धर्माडम्बर, विधवा - समस्या, अछूतों की समस्या पूंजीवादी आर्थिक विषमता से उत्पन्न समस्याएँ तथा उनकी प्रतिक्रिया आदि का वास्तविक चित्रण मिलता है ।

इस समय में संपूर्ण भारत में ब्रिटिश शासन चलने के कारण हिन्दी और तेलुगु उपन्यास साहित्य के विकासकाल की राजनैतिक आर्थिक, सामाजिक परिस्थितियों में विषमताएँ कम और समानताएँ अधिक दिखाई पड़ते है । हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रेमचन्द का प्रवेश 1918 में हुआ, उन्होंने अपने प्रथम उपन्यास " सेवासदन " में समकालीन समाज की रूढ़िवादिता स्त्री-शिक्षा, अनमेल विवाह, वेश्यागमन, दहेज प्रथा आदि समस्याओं पर विचार किया और समाधान भी प्रस्तुत किया । इधर तेलुगु उपन्यास क्षेत्र में लगभग उसी समय 1918-1921 में उन्नव लक्ष्मीनारायण का प्रवेश हुआ उन्होंने अपनी उपन्यास " मालपल्ली " में इन्हीं सामाजिक समस्याओं पर विचार किया और समाधान भी प्रस्तुत किया । इस प्रकार हिन्दी और तेलुगु उपन्यास के विकास युग में प्रकाशित सभी उपन्यासों में इन प्रवृत्तियों को देख सकते है ।

प्रस्तुत हिन्दी और तेलुगु उपन्यास के उद्भव और विकास की प्रक्रिया का समाजशास्त्रीय दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों में सभी दृष्टियों से विषमताएँ कम और समानताएँ अधिक है ।

x :-x :-x :-x :-x :-x :-x :-x-x :-x :-x :-x :-x :-x :-x :-x :-x :-

सप्तम अध्याय

हिन्दी और तेलुगु उपन्यास के शिल्पगत विकास का समाजशास्त्रीय अध्ययन

x :-x :-x :-x :*x :-x :-x :-x :-x :-x :-x :-x :-x :-x :-x :x-x :-x.

हिन्दी और तेलुगु उपन्यास के शिल्पगत विकास का समाजशास्त्रीय अध्ययन

7.1. भूमिका :-

उपन्यास के उद्भव और विकास का समाज शास्त्रीय सन्दर्भ केवल वस्तु तत्व के अध्ययन से पूरा नहीं होता, जब तक उसकी शिल्प की बात न की जाए। दूसरे शब्दों में जो सामाजिक परिस्थितियाँ उपन्यास के वस्तुतत्व को प्रभावित करते है, वे ही उसके शिल्प को भी प्रभावित करते है। उपन्यास का वस्तु शरीर है तो शिल्प उसकी आत्मा है। दोनों को एक दूसरे से अलग करके नहीं देखा जा सकता है।

उपन्यास में गृहीत विषय, घटनाओं एवं प्रसंगों को शैली-शिल्प के द्वारा सजाया जाता है। औपन्यासिक शिल्प के अन्तर्गत उन सभी विधियों, नियमों, प्रक्रियाओं अथवा तरीकों का समावेश हो जाता है, जिनकी सहायता से उपन्यासकार किसी घटना, पात्र वार्तालाप अथवा दृश्य का सजीव वर्णन करता हुआ मानव जीवन के किसी विशिष्ट पहलू पर प्रकाश डालता है। शैली का शाब्दिक अर्थ है -- "किसी चीज को बनाने या रचने का ढंग अथवा तरीका। किसी वस्तु को रचने की जो जो विधियाँ अथवा प्रक्रियाएँ हैं उनके समन्वय को ही शिल्प-विधि के नाम से पुकारा जाता है।"[1]

शिल्प विधि एक माध्यम है जिसके सहयोग से कोई भी रचनाकार अपना कथ्य कहता है। उसके लिए वह अपनी सुविधा-नुसार उपन्यास-तत्वों को अपने तरीके से तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करता है। लेखक के रचना उद्देश्यों को अधिकाधिक स्पष्ट कर शिल्प ही उन्हें सामने लाता है। उपन्यास की सफलता एवं असफलता का निर्णय भी शिल्प ही करता है। "शिल्प के माध्यम से ही हम प्रबन्ध काव्य, महाकाव्य, खण्ड-काव्य, मुक्तक, गीत, आख्यान, नाटक, एकांकी, कहानी और उपन्यास के अन्तर को समझ पाते है।"[2]

---

1. वृहद हिन्दी कोश - पृ. 1239.
2. हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रयोग - पृ. 241.

कलाकार की अनुभूति और चिन्तन को अभिव्यक्त करने का साधन ही शिल्प कहलाता है । अनेक आलोचकों ने शिल्प और शिल्प-विधि को पर्यायवाची मानकर विश्लेषण किया है । इस सन्दर्भ में उन्होंने अंग्रेजी शब्द " टेकनीक ", " फर्म " या " क्राफ्ट " को आधार बनाया है ।[1] अधिकतर विद्वान शिल्प को " टेकनीक " का अनुवाद मानते हैं ।[2] डॉ॰नगेन्द्र ने शिल्प को अंग्रेजी शब्द " क्राफ्ट " का पर्याय माना है ।[3]

कुछ लेखक " शैली " और शिल्प " को एक ही तत्व मानते हैं ।[4] " शिल्प " शब्द शैली से बहुत अधिक व्यापक है । साहित्य के क्षेत्र में शिल्प का प्रयोग साधारणतया कलात्मक सौन्दर्य के लिए करते हैं । शिल्प वस्तु को अभिव्यक्त करने की प्रक्रिया का वैशिष्ट्य है । इस प्रकार शिल्प का अभिप्राय ऐसी अभिव्यंजना प्रक्रिया से है जो जीवन्त और सप्राण, समुच्चय-परक और संश्लेषणा - त्मक है ।

1• आलोचना § अंक 13 § पृ• 1•
2• हिन्दी उपन्यास - शिल्प : बदलते परिप्रेक्ष्य - डा•प्रेम भटनागर - पृ• 10•
3• शैली विज्ञान - डा•नगेन्द्र - पृ• 14•
4• शैली विज्ञान - डा•नगेन्द्र - पृ• 15•

सामान्य रूप से उपन्यास के छ: मुख्य तत्व माने जाते हैं — 1• कथावस्तु 2• पात्र या चरित्र-चित्रण 3• कथोपकथन 4• देश-काल 5• शैली 6• उद्देश्य । कोई उपन्यासकार इन विभिन्न तत्वों को दृष्टि में रखकर ही अपनी कृति को अधिक प्रभावशाली बना सकता है, किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि यदि इनमें से किसी तत्व पर अधिक और किसी पर कम बल दिया गया हो, तो उपन्यास लेखक अपनी कृति को सशक्त नहीं बना सकता । वास्तव में कोई उपन्यासकार अपनी रुचि और क्षमता के अनुसार इनमें से प्रत्येक पर अथवा केवल कुछ की ओर विशेष ध्यान देकर भी अपनी कृति को महत्वपूर्ण बना सकता है । इससे यह स्पष्ट होता है कि ये छ: तत्वों का समग्र रूप ही उपन्यास का " शिल्प " है ।

7•2• हिन्दी उपन्यास का शिल्पगत विकास :

7•2•1• कथानक सम्बन्धी शिल्प :-

उद्भव कालीन हिन्दी उपन्यास साहित्य घटना-प्रधान होता था । कल्पना-प्रधान विषय वस्तु के इस युग के कथा-साहित्य में समावेश की दृष्टि से दो वर्ग किये जा सकते हैं । पहला वर्ग आदर्शवादी कल्पनात्मकता के अंतर्गत " इलामा-स्वप्न ", " आश्चर्य वृत्तान्त " तथा " ठेठ हिन्दी का ठाठ " आदि आते हैं । इस वर्ग के उपन्यासों में तत्कालीन जीवन को प्रतिबिम्बित करने का

प्रयत्न किया गया । परन्तु सफलता न मिलसकी क्यों कि उन पर पूर्वकालीन तथा युगीन कथा कृतियों का इतना अधिक प्रभाव था कि वे अपने आप को उस से पूर्णत: मुक्त न रख सके । दूसरा वर्ग कल्पनाशील विलक्षणता के अंतर्गत " चन्द्रकान्ता ", " चन्द्रकान्ता सन्तति " की कोटि में आने वाली जासूसी और ऐय्यारी रचनाएँ आती हैं । इस वर्ग के उपन्यास मुख्यत: तिलस्मी, ऐय्यारी आदि विलक्षणता के तत्वों को लेकर आगे बढ़े है और उनमें कल्पना की उड़ाने इतनी ऊँची भरी गयी हैं कि उपन्यासकारों की चमत्कार दृष्टि की सामर्थ्य की प्रशंसा करनी पड़ती है ।

हिन्दी उपन्यास धीरे-धीरे घटना प्रधान शिल्प से वर्णनात्मक शिल्प की ओर बढ़ा है । इसके अन्तर्गत " परीक्षागुरु ", " सौ अजान एक सुजान ", " नूतन ब्रह्मचारी " आदि उपन्यास आते हैं । कथा-शिल्प के रूपों, कथानक के विविध प्रकारों तथा कथा विषयों की दृष्टि से भारतेन्दु युगीन उपन्यासों में पर्याप्त वैविध्य लक्षित होने का एक कारण यह कि कुछ विशिष्ट कथा-परम्पराओं को छोडकर इस युग को कोई सुनिश्चित कथा-परम्परा धरोहर के रूप में नहीं मिली थी । इस युग में अंग्रेजी तथा बंगला आदि भाषाओं के उपन्यास के जो अनुवाद हिन्दी में किये गये, वे स्वभावत: एक नवीन साहित्य-माध्यम के रूप में स्वीकार किया जाने के कारण प्रचलित हुए । इस स्थिति में हिन्दी उपन्यासकारों में से प्रत्येक ने अपने दृष्टिकोण के अनुसार उससे प्रभावित होकर रचनाएँ लिखीं ।

भारतेन्दु युग से प्रेमचन्द के युग तक आते-आते हिन्दी उपन्यास का शिल्प वर्णनात्मक के नाटकीय शिल्प की ओर बढ़ा है । पूर्व प्रेमचन्द युग के शिल्प की आधारभूमि रोमांस थी, प्रेमचन्द युग में इसका स्थान वर्णनात्मकता और नाटकीयता के कारण महाकाव्य और नाटक ने ले लिया । प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में एक विशेषता यह भी मिलती है कि कथानक को पूर्णता की ओर अग्रसर करते समय क्रमिक-विकास गति को आधार बनाया जाता है । इस युग की दूसरी विशेषता वह है नाटकीय तत्वों के कथानक में कम से कम समावेशित होने की ।

सामाजिक परिवर्तनों के साथ-साथ शिल्प में भी परिवर्तन आता जाता है । हर युग के अलग सन्दर्भ एवं विषय होते हैं । प्रेमचन्दोत्तर युग साहित्य की विचारभूमि की सन्धिरेखा है जो पिछले युग से अधिक गहरी, व्यापक, मूलनिष्ठ और क्रान्तदर्शिनी है और जिसमें राजनीति और मनोविज्ञान का चकाचौंध फैलने वाला प्रकाश है, अस्पष्ट चिन्तन की रहस्य वीथियाँ नहीं हैं । आज के उपन्यासों में जीवन की जटिलता तथा संकुलता की अभिव्यक्ति का प्रयास है । आधुनिक युग की जटिलता, यान्त्रिकता वैयक्तिकता, तटस्थता तथा संघर्षमयता ने उपन्यास शिल्प को प्रभावित किया है ।

हिन्दी उपन्यास क्रमश: घटना प्रधान शिल्प से वर्णनात्मक शिल्प की ओर वर्णनात्मक से नाटकीय ओर, नाटकीय से प्रतीकात्मक और विश्लेषणात्मक शिल्प की ओर बढ़ा है ।

साहित्य की अन्य विधाओं की कथानक पद्धति को अपनाने से उपन्यास की कथानक शैली में विविधता आगई है । अभिव्यक्ति की अनेक शैलियाँ प्रचलित हो गई हैं जो परिवर्तित कथानक सम्बन्धी शिल्प प्रक्रिया को दर्शाती हैं । कुछ शैलियाँ इस प्रकार हैं —

वर्णनात्मक शैली :-

प्रेमचन्द युग के उपन्यास इसी शैली में लिखे गए हैं । बाद के लेखकों ने भी इस शैली को अपनाया है, यथा - भगवती चरण वर्मा [1] अमृतलाल नागर[2], यशपाल [3], गिरिराजकिशोर [4], अज्ञेय [5] तथा नरेश मेहता [6] आदि ।

---

1. नाचे बहुत गोपाल
2. अमृत और विष
3. तेरी मेरी उसकी बात
4. जुगल बन्दी
5. शेखर एक जीवनी
6. यह पथ बन्धु था

विश्लेषणात्मक शैली :-

यथार्थवाद के विभिन्न पक्षों को विश्लेषित करने के लिए भी यह शैली आई है ।[1] इस शैली के प्रयोगकर्ता हैं - इलाचन्द्र जोशी [2] निर्मल वर्मा [3] आदि ।

आत्मकथात्मक शैली :-

साठोत्तर उपन्यासों में इस शैली का सर्वाधिक प्रयोग किया गया है । इस शैली के प्रमुख लेखक हैं - अमरकान्त [4], सूर्यबाला [5], कमलेश्वर[6], नरेश मेहता [7], जैनेन्द्र [8], गिरिराज किशोर [9] आदि ।

---

1. हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास - पृ॰ 413.
2. ऋतुचक्र
3. वे दिन
4. सूखा पत्ता
5. मेरे संधिपत्र
6. डाक बंगला
7. डूबते मस्तूल
8. सुखदा
9. यात्राएँ

डायरी शैली :-

पात्र या लेखक के अनुभव सत्य का वर्णन इसी शैली में प्रमुखता से किया जाने लगा है । प्रमुख लेखक - अज्ञेय [1], मोहन राकेश [2], श्रीलाल शुक्ल [3] ।

पत्रात्मक शैली :-

लेखकीय कथ्य को सुगम बनाने की दृष्टि से इस शैली का प्रयोग किया जाने लगा है । इसके लेखक लम्बी-लम्बी घटनाओं एवं वार्ताओं से बच जाता है । प्रमुख लेखक - राजेन्द्र यादव [4] मोहन राकेश [5] अज्ञेय [6] आदि ।

---

1. अपने-अपने अजनबी, नदी के द्वीप
2. अन्तराल
3. मकान
4. अनदेखे अनजाने पुल
5. अँधेरे बन्द कमरे
6. नदी के द्वीप

चेतना प्रवाह शैली :-

आज के उपन्यासों में इस विकृताकृति की नहीं पर विशुद्ध कृति की माँग बढ़ रही है। इसी माँग को पूरा करने के लिए उपन्यासकारों ने चेतना-प्रवाह शैली को अपनाया है।[1] शेखर : एक जीवनी। इस शैली का प्रथम सफल प्रयोग है। अन्य लेखक है — मृदुला गर्ग [2] मोहन राकेश [3], दीप्ति खण्डेलवाल [4]।

वैचारिक शैली :-

विचार की मात्रा में घटनाओं और चरित्रों को महत्व कम दिया जाने लगा है। प्रमुख लेखक कमलेश्वर [5], निर्मल वर्मा [6] आदि।

---

1. हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास : डॉ॰धनराज मानधने
2. चितकोबरा
3. अन्तराल
4. प्रतिध्वनियाँ
5. डाक बंगला
6. एक चिथड़ा सुख

व्यंग्यात्मक :-

सामाजिक यथार्थ को व्याख्या के लिए इस शैली का प्रयोग किया जाने लगा है । प्रमुख लेखक मन्नू भण्डारी [1] श्री लाल शुक्ल [2]।

प्रतीकात्मक :-

प्रमुख लेखक - दीप्ति खण्डेलवाल [3] लक्ष्मीनारायण लाल ।[4]

आधुनिक उपन्यास आदर्शवाद से ऊपर उठकर यथार्थवाद, मनोविश्लेषणवाद की ओर अग्रसर हो रहा है । राजनीतिक व सामाजिक परिवर्तनों ने कथ्य में भी परिवर्तन उपस्थित कर दिये हैं। समाज से ऊपर व्यक्ति की स्थापना हुई है : यह व्यक्ति समाज और परिवार में रहता हुआ भी उससे कटा हुआ है । समयानुकूल विषय में परिवर्तन हो जाने से कथानक सम्बन्धी शिल्प भी बदल जाता है ।

---

1. महाभोज
2. राग दरबारी
3. प्रतिध्वनियाँ
4. बया का घोंसला और सांप

नये विषय नए शिल्प की मांग प्रस्तुत करते हैं, अतः कथ्य को अधिकाधिक प्रभावशाली आकर्षक बनाने के लिये नए शिल्प रूपों की आवश्यकता महसूस की जाती है ।

7·2·2· चरित्र-चित्रण सम्बन्धी शिल्प :-

उद्भवकालीन उपन्यासों में उपन्यासकार अपनी दृष्टि केवल उपन्यास के कथानक पर रखता था, पात्रों को केवल इसमें सहायक मात्र समझता था । किसी उपन्यास में कथानक को छोड़कर पात्रों पर भी गौरव दिया जा सकता है, यह धारणा तत्कालीन उपन्यास विषयक कतिपय मान्यताओं के विरुद्ध पड़ती थी । यही कारण है कि इस युग के उपन्यासों के कथानक घटनाओं के भार से इतने दबे रहते थे कि न तो उनकी कथानक-विशेषतायें उभर कर सामने आती थीं और न किसी पात्र की चरित्रगत विशेषतायें ही । भारतेन्दु युग में जो कथा शिल्प के किन्हीं भी नये रूपों का परिचय नहीं मिलता और केवल सामान्य कथा कहने के ढंग से ही सभी उपन्यासों के कथानक निर्मित हुए हैं, इसका यही कारण है । अवश्य कथा-विकास के सहायक तत्वों के रूप में इस युग के उपन्यासों में कुछ ऐसी विशेषताएँ मिलती हैं जिन्हें पूर्ववर्ती युगों के कथा-रूपों के प्रभाव के फलस्वरूप आया माना जाता है और जिन्होंने इस युग के कथा-साहित्य में एक प्रकार की युगीन विशेषता उत्पन्न भी की ।

प्रेमचन्द युग के उपन्यासों में कथावस्तु और पात्रों के विकास में जो एक प्रकार का सन्तुलन दिखाई देता है, वह इसी कारण से है। इस युग के उपन्यासों में यदि कथानक को घटना-वैचित्र्य से किसी सीमा तक बोझिल बनाते हुए भी उसका विकास किया है, तब भी इस बात का ध्यान रखा गया है कि उस उपन्यास में जो पात्र आये हैं, चारित्रिक विकास की दृष्टि से उनमें भी अपूर्णता न रह जाय।

प्रेमचन्द ने अपने युग में ही चरित्रों को खुला छोड़ देने की बात कही थी -- "जब हम कहानी का मूल्य उसके घटना-विन्यास से नहीं लगाते, हम चाहते हैं पात्रों की मनोगति स्वयं घटनाओं की सृष्टि करे। घटनाओं का स्वतन्त्र कोई महत्व नहीं रहा। उसका महत्व केवल पात्रों के मनोभावों " को व्यक्त करने की दृष्टि से ही है।"[1] आधुनिक युग में जैनेन्द्र ने नापे-तुले चरित्रांकन के प्रति विद्रोह किया है। उन्होंने चरित्र-शिल्प को लचीला बनाने का प्रयास किया है -- "एक शब्द है हार्ड-फोकस यानि चित्र की रूपरेखा का बेहद दुरूस्त होना। पर कला के लिए साफ्ट-फोकस चाहिए।"[2]

---

1. कुछ विचार - प्रेमचन्द - पृ. 56.
2. साहित्य का श्रेय और प्रेम - पृ. 186.

अब रचनाकार लम्बे, एक जैसे चरित्रों को नीरस मानने लगे हैं। हर व्यक्ति के स्वभाव की अलग पहचान कराये जाने के प्रयत्न किये जाने लगे हैं। कोई महान गुण इन चरित्रों में समाहित नहीं होता, कोई धीरोदात्त नायक नहीं होता, उसका व्यक्तित्व होरो तो नहीं पर "चरित्र के दोष" अवश्य होते हैं।[1] मनोवैज्ञानिक व अस्तित्ववादी उपन्यासों चरित्र-शिल्प में क्रान्ति ला दी है। इन उपन्यासकारों ने कुंठित, अहं परिचालित, पलायनवादी, अन्तर्मुखी चरित्रों की अवतरण की है। इन चरित्रों को उभारने के लिए लम्बी घटनाओं वाला चरित्र-शिल्प असंगत प्रतीत होता है। इसीलिए कहीं चरित्र संवादों के माध्यम से सामने आने लगा है तो कहीं डायरी व पत्रात्मक शैली से है। कथानक शिल्प पर चरित्र-शिल्प छाने लगा है।

आधुनिक उपन्यासों के चरित्र धीरोदत्त नायक के स्थान पर अत्यन्त साधारण गन्दी बस्ती में रहने वाला, कुंठित व्यक्ति उपन्यास का नायक होने की क्षमता रखता है।

---

1. उपन्यास स्थिति और गति - चन्द्रकान्त बान्दिवडेकर
   पृ. - 12.

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से स्वातन्त्र्योत्तर लिखे गए उपन्यासों में विविधता है । इसकाल में जहाँ एक ओर नायक रहित [1] उपन्यास की रचना की गई है तो दूसरी ओर मनुष्य के स्थान पर कुत्ते को कथावचक [2] बनाया गया है । इसी प्रकार कुर्सी का मानवीकरण [3] कर दिया गया तो वटवृक्ष को मनुष्य की भाँति सचेतन बना दिया गया है ।[4] चरित्र-चित्रण की भी अनेक पद्धतियाँ विकसित हो गई हैं । मनोविश्लेषणवाद ने केवल चरित्र प्रधान उपन्यासों की रचना की है ।

अस्तित्ववाद ने भी उपन्यासिक चरित्र शिल्प को प्रभावित किया है । अस्तित्ववादी उपन्यासों के पात्र विषय-परिवेश में ही जीते हैं । अस्तित्ववाद से प्रभावित लेखकों के पात्र अपनी ही समस्याओं के बीच उलझे हुए होते हैं ।" लेखक अन्तिम क्षणों तक अपने लेखन के माध्यम से इनसे लड़ाने को तत्पर रहते हैं । उसकी फौज के ये सेनानी अपाहिज, दबे हुए, दुःखी, टूटे हुए, विकृत भी हैं और साफ सुथरे भी । किन्तु निराशा और अपमान से ये

---

1. मैला आँचल
2. हुजूर
3. खाली कुर्सी की आत्मा
4. बाबा बटेसरनाथ

किसी प्रकार हार मानने को तैयार नहीं है । वे अन्तिम सांस तक लड़ते हैं ।"[1] इन समस्याओं से लडता लडता पात्र कभी आत्महत्या कर लेता है, उनसे पलायन भी कर सकता है तो कभी निराशा और विद्रोही भी बन सकता है । "वे दिन", "एक पिथडा सुख", "अन्तराल", "अपने-अपने अजनबी" उपन्यासों के पात्र परिस्थिति को अनुसार ही बन गए हैं ।

यथार्थवादी दृष्टिकोण के चरित्र-शिल्प को एक और मोड़ दिया है । इन लेखकों ने चरित्र के अन्य रूप की अपेक्षा भ्रष्ट रूप को ही अधिक उभारा है । यहाँ तक कि इतिहास या पुराण से जो चरित्र इन्होंने लिए हैं उन्हें देवता के रूप में नहीं मानव के रूप मे ही अधिक उभारा है और स्पष्ट है कि मानव में अच्छाई और बुराई दोनों ही होती हैं । "मानस का हंस", "एकदा नैमिषारण्ये"[2] इसी तरह के उपन्यास है । आधुनिक उपन्यासों के चरित्र हमें कहीं भी अभिजात्यवर्ग के प्रतीत नहीं होते वरन वह हमारे ही बीच का कोई पात्र लगता है । चेतन, जगमोहन[3]

---

1. हिन्दी कहानी बदलते प्रतिमान - डॉ॰ रघुवर दयाल वर्ष्णेय
   पृ॰ - 227॰
2. अमृतलाल नागर
3. गिरती दीवारे - संघर्ष का सत्य - उपेन्द्रनाथ अश्क

डॉ॰अमर [1], लच्छू और रमेश, अरविन्द शेकर, सज्जन [2], चन्दर, माणिक मुल्ला [3], विवेक, श्रीधर [4] आदि पात्र मध्यवर्ग के ही है ।

आधुनिक उपन्यासों में केवल राजनीति को ही अपना व्यवसाय बनाने वाले पात्र भी उभर रहे हैं। नेता के रूप में ये पात्र भ्रष्टाचार ही अधिक फैलाते है । अमृतलाल नागर [5], रेणु [6], नागार्जुन [7], भगवतीचरण वर्मा [8], यशपाल [9], गिरिराज किशोर [10] आदि के उपन्यासों में अनेक पात्र केवल राजनीतिक क्षेत्र में ही जीवन व्यतित करते है ।

---

1. तेरी मेरी उसकी बात, - यशपाल
2. अमृत और विष - बून्द और समुद्र - अमृतलाल नागर
3. गुनाहों का देवता - सूरज का सातवा घोडा - धर्मवीर भारती
4. दो एकान्त - यह पथ बन्धुथा - नरेश मेहता
5. बून्द और समुद्र - अमृत और विष
6. कितने चौराहे - परती परकथा - पल्टूबाबू रोड
7. वरुण के बेटे - हीरक जयन्ती
8. टेढ़े मेढ़े रास्ते - सामर्थ्य और सीमा
9. पार्टी कामरेड - दादा कामरेड
10. जुगलबन्दी

मानव जीवन की जटिलताओं एवं संघर्ष को उतनी ही गहराई से आधुनिक उपन्यासकार अपने पात्रों की रचना से साकार करना चाहता है । इस प्रयत्न में कुछ विशेष प्रकार के चरित्रों की भी रचना की जाने लगी है । इसीलिए चरित्र-शिल्प में भी पर्याप्त परिवर्तन आ रहा है । नए भाव-बोध को वहन करने वाली शिल्प सम्बन्धी निरन्तर प्रयोग किये जा रहे हैं ।

7.3. तेलुगु उपन्यास का शिल्पगत विकास :

7.3.1. कथानक सम्बन्धी शिल्प :-

भारतीय उपन्यास के जन्म के मूल में पाश्चात्य उपन्यास का प्रभाव था । जिन परिस्थितियों में पाश्चात्य उपन्यास का उदय और विकास हुआ ठीक वही परिस्थितियाँ भारत में भी उत्पन्न होने के कारण लगभग उसी उपन्यास के स्वरूप, स्वभावों के साथ भारतीय उपन्यास का उदय और विकास हुआ । तेलुगु उपन्यास इससे भिन्ननहीं है ।

आरम्भ में तेलुगु उपन्यास का लक्ष्य तत्कालीन व्यवहारों से परिचय करवाना, अंधविश्वास, दुराचार आदि का हेतुवादी दृष्टि से खण्डन करना, समाज सुधार आदि रहा । बाद में

स्वतन्त्रता आन्दोलन को भी प्रतिबिम्बित किया । उन आन्दोलनों को आगे बढ़ाने में सहायक हुआ । तेलंगाना आन्दोलन जैसे राज - नैतिक आन्दोलनों को भी प्रतिबिम्बित किया ।

समकालीन जटिल व्यवस्था के सामाजिक जीवन में उत्पन्न होने वाले विभिन्न समस्याओं, सामाजिक स्वरूप आदि का चित्रण आज के उपन्यासों में हो रहा है ।

आरम्भिक उपन्यास का कथानक सम्बन्धी शिल्प आज के शिल्प विधियों से भिन्न है । उस काल में लेखक ही कथाकार है । पात्रों का परिचय दिलाने वाला और उनका वर्णन करनेवाला भी लेखक ही रहा । सभी विषयों पर लेखक ही व्याख्या करता था, समीक्षा भी करता था । यह आकर्षक पद्धति नहीं है । शायद यह आरम्भिक पाठक के लिये ठीक रहा होगा । लेखक के समीक्षाओं, व्याख्याओं के कारण पाठक को उस विषय पर विचार करने की जरूरत नहीं होती थी । इस तरह लेखक की समीक्षाएँ, व्याख्याओं से पाठक चेतना पाने के बजाय वह स्वयं विचार करने से उस में अधिक चेतना जागृत होती है । वैज्ञानिक विकास के इस युग में लेखक को पूर्व के तरह सब पका कर पाठक को परोसने की जरूरत नहीं है । यथार्थ और वास्तविकता को पाठक के सामने रखकर उसे जागृत करना

ही उत्तम पद्धति है। यह एक कल्पनात्मक क्रम है। इस आधुनिक जीवन में सुदीर्घ वर्णनों से पाठक को परेशानी होती है। इस प्रकार प्राथमिक पद्धतियों में परिवर्तन होते-होते आज का आधुनिक शिल्प को महत्वपूर्ण विकास हुआ।

बाद के लेखकों ने पत्रात्मक पद्धति, डायरी पद्धति और चेतना प्रवाह पद्धतियों का अनुसरण करना शुरू किया।

<u>पत्रात्मक पद्धति</u> :-

इस पद्धति को पहले अंग्रेजी लेखक रिचर्ड्सन ने शुरू किया। इसी पद्धति में लिखित इनका उपन्यास " पमेला " (1740) को सफलता मिली। 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक आते-आते इस पद्धति का प्राचुर्य कम हो गया। इसी पद्धति में लिखे गए तेलुगु उपन्यासों में गंगिनेनि वेंकटेश्वर राव का " पामु-निचेन ", रंगनायकम्मा का " कृष्णवेणि " आदि उल्लेखनीय है।

डायरी पद्धति :-

पत्रात्मक पद्धति और डायरी पद्धतियों में साम्यता के साथ-साथ विषमता भी है । पत्रात्मक पद्धति में एक पात्र दूसरे पात्र से पत्रों के द्वारा बोलता है । लेकिन डायरी पद्धति में पात्र स्वयं से बोलता है । इस पद्धति में लिखे गए उपन्यासों में उप्पल लक्ष्मणराव का " अतडु-आमे " आर॰एस॰ सुदर्शनम का " मल्ली वसन्तम " आदि उल्लेखनीय है ।

चेतना प्रवाह [चैतन्य स्रवन्ति] पद्धति :-

तेलुगु उपन्यास के शिल्प का यह एक नूतन पद्धति है । तार्किक रूप से एक भाव के बाद दूसरा भाव पर विचार करते जाने का साधारण स्वभाव मन का नहीं है । एक भाव के बारे में सोचते हुए उससे भिन्न विषयों पर भी मन विचार करता है । मानव मन में उत्पन्न होने वाले विभिन्न तर्क विरुद्ध भावों, तर्कबद्ध भावों मिल कर एक प्रवाह जैसे आगे बढ़ते है । उस प्रवाह शीलता को सूचित करने का रूप ही " चेतना प्रवाह " पद्धति है ।

तेलुगु उपन्यास शिल्प विधान में इस चैतन्य स्रवन्ति पद्धति व चेतना प्रवाह पद्धति को श्री श्री ने आरम्भ किया । इनका " कोनेटिराव कललु " [कोनेटिराव के सपने] इस प्रकार का

प्रथम उपन्यास है । बाद में बुच्चिबाबु (चिवरकु मिगिलेदि), रवि शास्त्री (अल्पजीवि), नवीन (अम्पशय्या) आदि लेखक भी इस पद्धति का प्रयोग किया । इन लेखकों के साथ-साथ वड्डेर चण्डीदास, भास्कर भट्ल कृष्णाराव, त्रिपुरनेनि नागराजु, परिमला सोमेश्वर आदि ने भी इस पद्धति का पाक्षिक प्रयोग अपने उपन्यासों में किया ।

नए विषय नए शिल्प की मांग प्रस्तुत करते हैं, अतः कथ्य को अधिकाधिक प्रभावशाली आकर्षक बनाने के लिए नए शिल्प रूपों की आवश्यकता महसूस की जाती है ।

7·3·2· चरित्र चित्रण सम्बन्धी शिल्प :-

सामाजिक चेतना के विकास के साथ-साथ रचयिता की मानसिकता, जनता से उसका सम्बन्ध, साहित्य सम्प्रदायों का वंशगत प्रभाव ·· इन सब के साथ पात्र चित्रण का स्वरूप धारण करता है । इस तरह के चरित्र के द्वारा ही सामाजिक चेतना के विभिन्न दृष्टिकोण, विकास आदि को समझ सकते हैं ।

तेलुगु उपन्यास के चरित्र-चित्रण में विकास स्पष्ट दिखाई देता है । उपन्यास के आरम्भ में वातावरण का वर्णन, पात्रों का बाह्य वर्णन आदि को प्रमुखता दी जाती थी । आज के जटिल सामाजिक जीवन परिस्थितियों में व्यक्ति के मानसिक जटिलता को चित्रित करने से लेखक सहजता को बढ़ाने का प्रयास कर रहे हैं । मनोविश्लेषणवादी लेखक पात्रों का इस जटिल मानसिकता का कारण व्यक्ति के अचेतन में ढूँढ़ते है । अस्तित्ववादी लेखक जटिल सामाजिक जीवन परिस्थितियों में कारण को ढूढ़ते है ।

जिन उपन्यासों में सामाजिक, राजनैतिक आन्दोलनों का चित्रण होता है, उन में जनसमूहों का चरित्र, मानसिकता भी चित्रित किया जाता है । दूसरे शब्दों में समाज की मानसिकता का चित्रण होता है । आलवार स्वामी के उपन्यास " प्रजल मनिषि " और " गंगु " में उक्त कथन का पुष्टि मिलता है ।

कुछ उपन्यासों में चरित्र-चित्रण को प्रधानता दी जाती है । इन उपन्यासों को नोवेल आफ कारेक्टर्स कहते है । चरित्रों को व्यक्त करने के लिए ही इस प्रकार के उपन्यासों का सृजन होता है । इस तरह के उपन्यास व्यक्ति के बाह्य स्वरूप के साथ-साथ उसके अंत: स्वरूप भी स्पष्ट करने के लिए उपयोगी होते है । " असमर्थुनि जीवित चरित्र ", " मेरपुल मरकलु ", " पंडित परमेश्वर शास्त्री वीलुनामा " आदि इसी कोटी के है ।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में पात्र के अंत: चेतना का विश्लेषण किया जाता है । इसमें सहायक भौतिक वास्तविकता, प्रतीक आदि लेखक के सामाजिक चेतना पर आधारित होते है । यह चेतना प्रवाह शैली प्रधान उपन्यासों में अधिक व्यक्त होता है । दूसरे शब्दों में कृति में प्रतीक, भावचित्रों के माध्यम से चरित्र के अंत: स्वरूप का विश्लेषण कर सकते है ।

चरित्र-चित्रण प्रधान उपन्यासों में हो नहीं सामाजिक चित्रण, सामाजिक विश्लेषण प्रधान उपन्यासों में भी भाव चित्र, प्रतीकों का प्रधानता रहता है । जटिल सामाजिक परिस्थिति को सरल रूप में पाठक को व्यक्त करने के लिए ये सहायक है ।

इस प्रकार उक्त चर्चित सभी पद्धतियों से उपन्यास शिल्प का विकास हुआ । मनोवैज्ञानिक शिल्प, चेतना प्रवाह शिल्प ‡ चैतन्य स्रान्ति शिल्प ‡ आदि ने आधुनिक तेलुगु उपन्यास शिल्प को प्रमाणिकता को बढ़ाया ।

7·4· हिन्दी और तेलुगु उपन्यास के शिल्पगत विकास का समाजशास्त्रीय विवेचन :-

हिन्दी और तेलुगु दोनों उपन्यासों के जन्म के मूल में पाश्चात्य उपन्यास का प्रभाव था । जिन परिस्थितियों में पाश्चात्य उपन्यास का उद्भव और विकास हुआ लग-भग उन्ही परिस्थितियों हिन्दी और तेलुगु प्रदेशों में भी उत्पन्न होने के कारण उसी उपन्यास के स्वरूप और स्वभावों के साथ हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों का उद्भव और विकास हुआ । हिन्दी के प्रथम उपन्यास " परीक्षा गुरु " और तेलुगु के प्रथम उपन्यास " राजशेखर चरित्र " परख ने से उक्त कथन को पुष्टी मिलती है ।

उद्भवकाल में हिन्दी और तेलुगु दोनों उपन्यासों का लक्ष्य तत्कालीन व्यवहारों से परिचय करवाना, अंधविश्वास, दुराचार आदि का खण्डन करना, समाज सुधार आदि रहा । हिन्दी के " परीक्षागुरु " और तेलुगु के " राजशेखर चरित्र " आदि उपन्यासों का विषयवस्तु परखने से यह स्पष्ट होता है । बाद के दोनों उपन्यासों में स्वतन्त्रता आन्दोलन और प्रान्तीय आन्दोलनों को प्रतिबिम्बित किया गया । इसके बाद दोनों में भी व्यक्तिवादी व मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का लेखन शुरू हुआ ।

उपन्यास के शिल्प विधान में भी हिन्दी और तेलुगु के उपन्यासों में समानता ही अधिक दिखाई देती है। हिन्दी और तेलुगु दोनों उपन्यास भी क्रमशः घटना प्रधान शिल्प से वर्णनात्मक शिल्प की ओर, वर्णनात्मक शिल्प से नाटकीय और नाटकीय से प्रतीकात्मक और विश्लेषणात्मक शिल्प की ओर बढ़े है।

शैली की दृष्टि से भी हिन्दी और तेलुगु के उपन्यासों में काफी विषमताएँ नहीं दिखाई देते है। वर्णनात्मक शैली, विश्लेषणात्मक शैली आत्मकथात्मक शैली, डायरी शैली, पत्रात्मक शैली, चेतना प्रवाह शैली (जिसे तेलुगु में चैतन्यस्रवन्ति शैली कहते है), वैचारिक शैली, व्यंग्यात्मक शैली आदि शैलियां दोनों उपन्यासों में दिखाई देते है।

चरित्र चित्रण का विकास भी हिन्दी और तेलुगु दोनों उपन्यासों में लगभग समान ही है। दोनों उपन्यासों में भी उद्भवकाल में चरित्र-चित्रण को कम महत्व मिलता था। लेकिन आज कल चरित्र प्रधान उपन्यासों का निर्माण दोनों भाषाओं में हो रहा है।

निष्कर्षतः यह कह सकते है कि हिन्दी और तेलुगु उपन्यास शिल्प में विषमताएँ कम और समानताएँ अधिक है।

-:-

अष्ठम अध्याय

उ प सं ह T र

-:-

उ प सं ह T र

आधुनिक युग में गद्य साहित्य और विशेष रूप से उपन्यास साहित्य की जितनी अधिक उन्नति संसार की भाषाओं में हो रही है, उतनी अन्य किसी साहित्यिक विधा की नहीं । आधुनिक युग के महान उपन्यासों को देखने से इस बात का परिचय मिलता है कि जीवन का संपूर्ण और गहन चित्रण उपन्यासों में संभव है । प्रेमचन्द ने भी उपन्यास के इसी विषय विस्तार को उसकी प्रधानता का प्रमुख कारण माना है ।

उपन्यास की परिभाषा विद्वानों ने कई प्रकार से की है, लेकिन यह कायदा है कि जो चीज जितनी ही सरल होती है, उसकी परिभाषा उतनी ही मुश्किल होती है । यूरोपीय विद्वान राल्फ फाक्स के अनुसार उपन्यास कला का प्रथम गद्य रूप है, जो मानव को समग्रता से अभिव्यक्त करने की चेष्टा करता है । क्रार के अनुसार उपन्यास उस गद्य-आख्यान को कहा जा सकता है जो यथार्थ जीवन का यथार्थवादी दृष्टि से अध्ययन करें । प्रेमचन्द ने उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र माना है । मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उनके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है ।

उपन्यास एक अनिर्धारित विधा है । उपन्यास अपनी विशेषताएँ जैसे क्षेत्रविस्तार, परिवर्तनशीलता गद्य का माध्यम होना, वास्तविक जीवन का अनुमोदन, उदार दृष्टिकोण, अन्य साहित्यिक विधाओं से भिन्न काल सम्बन्धी चेतना की धुरी, संरचना का नूतन परिवेश आदि के कारण साहित्य की अन्य विधाओं से जटिल माना जाता है ।

समाज से उपन्यास के सम्बन्ध के अनेक स्तर और रूप हैं। उपन्यास के उदय और विकास के लिए अर्थात उसके अस्तित्व के लिए कुछ ऐसे भौतिक और विचारधारात्मक आधारों की जरूरत थी, जो औद्योगिक युग में ही विकसित हुए । उपन्यास के अस्तित्व के लिए अनिवार्य प्रेस प्रकाशन और पत्र-पत्रिकाएँ औद्योगिक युग के वैज्ञानिक विकास की देन है तो उसके लेखक और पाठक के रूप में क्रियाशील मध्यवर्ग पूंजीवादी सामाजिक संरचना का परिणाम है । इन भौतिक आधारों के साथ-साथ विचार धारा के स्तर पर व्यक्तिवाद, धर्म-निरपेक्ष जीवन दृष्टि और यथार्थवादी विश्वदृष्टि की जरूरत थी, जो औद्योगिक युग की विकासवादी चेतना की उपज है । उपन्यास की रचना दृष्टि में मनुष्य की स्वतंत्र सत्ता, व्यक्ति की महत्ता और मानवीय संबन्धों की गरिमा को तभी केन्द्रीय महत्व मिला, जब औद्योगिक समाज का मानव अपने अनुभव और तर्क के अलावा किसी अलौकिक शक्ति की सत्ता को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं

था । यह मध्ययुग में संभव न था । उपन्यास अपने पाठकों को जीवनमूल्यों के बोध चुनाव का संकेत देता है, उसकी सहानुभूतियों का विस्तार करता है । इस तरह उसका एक नैतिक आयाम है । यह नैतिक आयाम औद्योगिक युग का ही है ।

उपन्यास के उदय का सामाजिक आधार मध्यवर्ग ही है । मध्यवर्ग से उपन्यास को अलग करके नहीं देखा जा सकता क्यों कि उपन्यास कला के जन्म के मूल में वह यथार्थवाद काम कर रहा था, जिसका आविर्भाव मध्यवर्ग की अपनी आवश्यकता और मूल्यों को लेकर हुआ था । अत: बौद्धिकता, तर्कसम्मत घटनाक्रम, व्यक्ति एवं समाज का संघर्ष, सामान्य जीवन पर दृष्टि, व्यक्ति की महत्ता, अतीत के विरोध में वर्तमान पर बल कल्पना के स्थान पर जीवन की यथार्थता का आग्रह, प्रकृति एवं समाज को पराभूत कर अग्रसर होने की आकांक्षा, जन्मगत अधिकारों के स्थान पर वर्गगत उपलब्धियों द्वारा समाज में प्रतिष्ठित होने का दावा ये सभी प्रवृत्तियाँ मूलत: उस मध्यवर्ग की हैं जो सामंतवाद के गर्भ से फूटने के लिए छटपटाता है और अंतत: जो पूंजीवाद में अपना विकास पाता है ।

उन्नीसवीं शती के अन्तिम चरण में पूरे देश में सांस्कृतिक जागरण का दौर चल रहा था । सामंती समाज की श्रृंखलाएँ टूट चुकी थीं । अंग्रेजी शिक्षा के विकास की गति चाहे जितनी मंद रही हो और उसके उद्देश्य चाहे जितने सीमित रहे हों, उसके

व्यापक प्रभाव से देश का शिक्षित समाज बच नहीं सका था । देश में एक सशक्त मध्यवर्ग का उदय हो गया था जो अत्यधिक संवेदनशील था । यह वर्ग राष्ट्रीय एवं सामाजिक भलाई की दृष्टि से सोचने लगा था, और यह अनुभव करने लगा था कि सभी दृष्टियों से हमारा देश अत्यन्त हीनावस्था में है, जीवन के सभी क्षेत्रों में जैसे राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक में परिवर्तन और सुधार की आवश्यकता है । इसकी पूर्ति के लिए साहित्य को भी एक माध्यम बनाया गया था । फलत: पद्य के विकास के साथ-साथ गद्य का भी विकास हुआ और गद्य की विभिन्न विधाओं जैसे उपन्यास, नाटक, कहानी आदि का प्रादुर्भाव हुआ ।

मुगल साम्राज्य का पतन अठारहवीं शताब्दी में हुआ और उसने अपना प्रभुत्व खो दिया । भारतीय राज्यों और यूरोप की व्यापारिक कंपनियों के बीच, जो अपने-अपने देशों के संरक्षण में भारत में काम कर रही थीं, शक्ति संतुलन बराबर यूरोपियों के पक्ष में होता जा रहा था । सोलहवीं शताब्दी में भारत में यूरोपियों के अधिकार में महज कुछ किले और मालगोदाम थे, सत्रहवीं शताब्दी में उन्होंने व्यापारिक केन्द्रों और बस्तियों की स्थापना करना शुरू कर दिया । प्लासी और बक्सर की लड़ाइयों में विजय प्राप्त करने के बाद गंगा के निचले मैदानी क्षेत्रों में अंग्रेजों के प्रभुत्व को गम्भीर चुनौती देनेवाला कोई नहीं रहा ।

ब्रिटिश औपन्यासिक जुए के विरुद्ध 19 वीं शताब्दी के सम्पूर्ण पूर्वार्द्ध में आबादी के विशिष्ट वर्गों की छिटपुट, सर्वथा स्थानीय कार्रवाइयों में अभिव्यक्त होने वाला रोष तब कुछ-कुछ एकाकार होने लगा, जब राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व दीर्घकाल से संघटित कार्रवाइयों के अभ्यस्त सिपाहियों ने अपने हाथों में ले लिया। प्लासी की लड़ाई की सौवीं जयंती आरही थी और सिपाही ठीक उसी दिन ब्रिटिश शासन का तख्ता उलटने की तैयारी कर रहे थे। विद्रोह का विचार तो बहुत पहले ही जड़ पकड़ चुका था, लेकिन यह एक सुव्यवस्थित ढंग से संघटन विद्रोह नहीं था। विद्रोह वास्तव में दोआब और मध्य भारत के कुछ भागों से और आगे नहीं फैला। दिल्ली में लाल किले जैसे प्रमुख दुर्ग पर कब्जा करने के बाद सिपाहियों ने अछूते क्षेत्रों को विद्रोह की परिधि में लाने के बजाय रक्षात्मक रुख अपना लिया। इस से अंग्रेजों को फिर से संभालने, अपनी वफादार फौजों को जमाकरने तथा दिल्ली पर घेरा डालने समर्थ बना दिया। 14 दिसम्बर 1857 को अंग्रेजों ने, जिन्होंने अब तक अपनी फौजें जमा कर ली थी, दिल्ली पर धावा बोल दिया और पाँच दिन के बाद नगर और किले पर कब्जा कर लिया। इस के बाद विद्रोहियों के खिलाफ बर्बरतापूर्ण प्रतिशोध की कार्रवाइयाँ शुरू हुई। बम्बई के गवर्नर एलफिन्स्टन तक ने लिखा है कि दिल्ली पर कब्जा करने के बाद ब्रिटिश फौजों द्वारा किये गये अपराध अवर्णनीय है। 19 मार्च 1858 को विद्रोहियों कब्जे में रहा आखिरी नगर लखनऊ पर कब्जा हो गया और लगभग दो हफ्ते

तक ब्रिटिश फौजें लूट और कुत्लेआम मचाती रहीं । लूट का माल वस्तुत: बहुत अधिक था ।

2 अगस्त 1858 को ब्रिटिश संसद ने भारत के बेहतर शासन के लिए एक अधिनियम पारित किया, जिसके तहत भारत में राजकीय सत्ता ब्रिटिश ताज को हस्तांतरित कर दी गयी और औपनिवेशिक प्रशासन ब्रिटिश और सरकार के प्रत्यक्ष नियंत्रण में आ गया । इस तरह ब्रिटिश शासन का प्रभाव बढ़ता रहा ।

ब्रिटेन में औद्योगिक पूंजीपति वर्ग द्वारा अपनी स्थिति मजबूत करने के बाद भारत का आर्थिक विकास अधिकाधिक रूप में उस वर्ग के हित में होने लगा । ब्रिटन की सीमाशुल्क नीति और वस्त्रव्यापार में कुटिल नीति के कारण दस्तकारों के जीवनस्तर तेजी से गिरावट आयी । कृषक नीति के कारण किसानों की ऋणग्रस्तता और भूमि - हीनता बढ़ गई । भारत को धीरे-धीरे ब्रिटिश वस्तुओं के बाजार और ब्रिटिश उद्योग के कच्चे मालों के स्रोत में परिवर्तन कर दिया जाता था ।

भारत में अंग्रेजी शासन प्रारम्भ होते-होते मुगल शासकों की शक्ति क्षीण हो चुकी थी । शिक्षा की कमी तथा तत्कालीन समाज की दशा भी इस पतन का बहुत सीमा तक कारण थे ।

विलास-प्रियता तथा अत्यधिक मद्यपान ने अधिकारियों को पतन के गड्ढे में गिरा दिया था । समाज के प्रत्येक वर्ग में अंधविश्वास, अशिक्षा तथा कुरीतियाँ आदि फैली हुई थीं, जो उसकी उन्नति में सब प्रकार से बाधक थीं । जनता का ज्योतिष आदि पर विश्वास था, अत: अज्ञानी एवं अपढ़ लोगों ने उसे ठगने का एक रास्ता यह भी अपना लिया था । धार्मिक अंधविश्वास से जनता की उन्नति के मार्ग बन्द कर दिये गये थे । चरित्र-हीनता तत्कालीन समाज का मुख्य दुर्गुण था । मठ तथा अन्य धार्मिक स्थान व्यभिचार के बड़े-बड़े अड्डे बन चुके थे और लोग अन्धे बनकर नरक में गिरते जाते थे । बेगारी का प्रचार था । जनता में नैतिकता की कमी थीं । देश की बौद्धिकता भी नष्ट हो चुकी थी । शासकों में तथा उच्चवर्गीयों अधिकाश विलास प्रियता तड़क-भड़क तथा ऐश्वर्य-प्रदर्शन की भावना व्याप्त थी ।

इस युग के उपन्यासकारों ने परम्परागत कथा साहित्य को ही अपना आधार माना । इनकी रचनाओं का उद्देश्य मनोरंजन प्रदान करना और साथ ही साथ सुधारवादी दृष्टिकोण होता था । इन कृतियों के समान ही जासूसी और तिलस्मी उपन्यासों का मुख्य उद्देश्य होता था मनोरंजन प्रदान करना । इसी कारण इस युग के उपन्यासों की प्रमुख विशेषता थी, उनका घटनाप्रधान होना । स्वरूप की दृष्टि से इस युग के उपन्यास परम्परा से हटकर पश्चिम का नवीन शिल्प लेकर आये ।

1882 में श्रीनिवासदास के सामाजिक उपन्यास " परीक्षा गुरु " का प्रकाशन हुआ । धीरे-धीरे उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं को स्थान देने शिरू हुआ । 1918 में हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में प्रेमचन्द का प्रवेश हुआ । प्रेमचन्द अपने युग के सर्व प्रमुख और प्रतिनिधि उपन्यासकार हैं । उनके उपन्यासों की प्रधान विशेष - ताओं में एक यह है कि उनमें एक क्रमबद्ध विकास रेखा दृष्टिगोचर होती है । उनके अधिकाश पात्र ऐसे हैं जो काल्पनिक जगत के जाल से खींचकर यथार्थ जगत की व्यवहारिकता की ओर बढ़ते प्रतीत होते हैं ।

इस उद्भवकालीन समग्र भारतीय उपन्यास साहित्य में चाहे सामाजिक उपन्यास साहित्य हो या ऐतिहासिक, सामाजिक कुरीतियों का निर्मूलन लेखकों का आशय रहा । इसलिए आरंभिक कालीन सामाजिक उपन्यासों में तत्कालीन समाज के परिव्याप्त कुरीतियों, मुख्यत: पारिवारिक जीवन की समस्याओं, संयुक्त परि- वार, पारिवारिक कलह, विधवा जीवन, बालविवाह, व्यभिचार, वेश्यागमन, पतिव्रता का आदर्श, देवदासी का कुत्सित जीवन, धार्मिक रूढ़ियाँ, पुलिस अदालत के अकथनीय अत्याचार, दहेज प्रथा, स्त्री-शिक्षा, भ्रष्टाचार, सतीप्रथा, सरकारी कर्मचारियों में परि - व्याप्त भ्रष्टाचार का प्रतिपादन कथ्य के रूप में हुआ था ।

तेलुगु राज्य को व्यापक रूप में दक्कन या दक्षिण कहा जाता था । इस राज्य में मुगलों का शासन 1687 ई. में आरम्भ हुआ । गोलकोण्डा राज्य के पतन के बाद समस्त तेलुगु राज्य मुगल साम्राज्य के आधीन हो गया । तेलुगु राज्य 1687 से 1724 तक मुगल सुबेदारों के शासन में था । इस समय एक भी गाँव मुसलमानों के दुष्कार्यों से नहीं बच सका । धर्मांपेक्ष मुसलमान शासक मन्दिरों को लुटाये थे । हिन्दू स्त्रियों को सताये थे । हिन्दू संस्कृति की अवहेलना होती थी ।

असफजाही निजाम राज्य के संस्थापक निजाम-उल-मुल्क के दादा अबिद खान मुगल दरबार में रहते थे । उन्होंने 1687 के गोलकोण्डा युद्ध में प्रधान भूमिका निभाकर वीरगति प्राप्ति की थी । बाद में उनके पुत्र निजाम-उल-मुल्क के पिता शहबुद्दीन मालवा और महाराष्ट्र के सुबेदार नियुक्त हुए थे । 1707 में औरंगजेब की मृत्यु होगई । 1710 में शाहबुद्दीन की मृत्यु भी हो गई । दिल्ली का राजा फारूकसियर शाहबुद्दीन के पुत्र कमर उद्दीन प्रथम आसफजा को " निजाम-उल-मुल्क " की उपाधि प्रदान कर दक्कन में राजप्रतिनिधि नियुक्त किया । तेलुगु राज्य में निजाम शासन 1713 में प्रथम आसफजा निजाम-उल-मुल्क से शुरू होकर 1947 में नवाब मीर उस्मान अली खाँ से अन्त होता है ।

1857 के महान सैनिक विद्रोह का प्रभाव जितना हिन्दी प्रदेश पर पड़ा उतना तेलुगु प्रदेश पर नहीं पड़ा । निजाम के प्रधान मन्त्री सालारजंग ने अंग्रेजों का पक्ष लेकर विद्रोह को कुचल कर देश को उन्होंने गुलाम बना दिया ।

1758 के तीसरे कर्नाटक युद्ध में अंग्रेजों को विजय प्राप्त हुई । 1762 तक फ्रान्सीसियों और दूसरे शासकों को पराजित कर अंग्रेजों ने जिस राज्य को प्राप्त किया था, उसे स्थिर रखने के लिए उन्हें थोडा समय लगा । 1768 से 1838 तक सरकारी क्षेत्रों में और 1800 से 1804 तक रायलसीमा में अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह होते रहे । 1807 में थामस मनरो आन्ध्र प्रदेश के अधिकारी नियुक्त हुए थे । वे उन्होंने बाटाईदारों के विद्रोहों को पाँच सालों में कुचल दिया और विद्रोहियों को निर्दयता के साथ दण्ड देकर उनके दुर्गों को नष्ट कर दिया । 19 वीं शताब्दी के आरम्भ होने तक तेलुगु तेलुगु देश के अधिकाश प्रदेश अंग्रेजों के प्रत्यक्ष शासन में आ गये । शेष प्रदेश तेलंगाना के नाम से निजाम के शासन में हैदराबाद राज्य में अन्तर्भाग बन गया । उस रियासत ने भी अंग्रेजों के सार्व - भौमाधिकार को स्वीकार कर लिया । इस प्रकार तेलुगु राज्य भी अंग्रेजों के शासन के अंतर्गत आ गया ।

ब्रिटेन की सन् 1776 ई॰ को औद्योगिक क्रान्ति के कारण तेलुगु देश में ही नही अपितु पूरे देश के आर्थिक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ । विभिन्न यन्त्रों का आविर्भाव हुआ । इस से तेलुगु देश के वस्त्रव्यापार में भारी नुक्सान हुआ, प्राचीन काल से तेलुगु राज्य की जनता अपनी जीविका खेती से चलाती थी फिर भी कुटीर उद्योग आर्थिक क्षेत्र में समुचित स्थान प्राप्त कर चुके थे । उनके लोग बुनाई, बढ़ाई गिरि आदि उद्योगों के द्वारा अपने जीविका कमाते थे । खेती पर निर्भर परिवार सूत कात कर कुछ धन कमाते थे । किन्तु औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप उत्पन्न सस्ती वस्तुएँ तथा अंग्रेजों के अधिकार ने मिलकर देश में प्रचलित उद्योगों का अंत कर दिया ।

19 वीं और 20 वीं शताब्दियों में भारत के अन्य प्रान्तों की भाँति तेलुगु प्रदेश ने अनेक सामाजिक परिणामों का सामना किया । यद्यपि इस परिणाम का प्रभाव समूचे भारत पर पड़ा फिर भी तेलुगु प्रदेश ने पृथक रूप से एक विशिष्ट परिणाम का सामना किया । इस समय तेलुगु प्रदेश बहुधा विभक्त था । यद्यपि कृष्णा नदी के उत्तरी प्रान्त में आसफजाही निजामों ने शासन स्थिर बना लिया था फिर भी नदी के दक्षिण प्रान्त में अंग्रेजों का शासन चल रहा था । इस तरह तेलुगु देश के प्रजा अलग अलग शासन व्यवस्था में जीवन निर्वाह करते रहे । वहाँ का सामाजिक विकास भिन्न-भिन्न रूपों में हुआ ।

इस प्रकार 19 वीं और 20 वीं शताब्दियों में राजनीतिक, सामाजिक, तथा वैज्ञानिक क्षेत्रों में कई आन्दोलनों ने आन्ध्र को जनता को पर्याप्त रूप में उत्तेजित या प्रभावित किया है । इस प्रभाव को इतिवृत्त के रूप में ग्रहण कर आन्ध्र के प्रगतिशील लेखकों ने समाज को विभिन्न दृष्टिकोणों से परिशीलन-अनुशीलन कर कई उपन्यासों को रचना की है और उपन्यास साहित्य की श्रीवृद्धि में योगदान किया है ।

तेलुगु उपन्यास साहित्य के इस आरम्भिक काल में उपन्यास को भिन्न प्रवृत्तियों को भी परखा जा सकता है । इस काल के उपन्यासों को अध्ययन की सुगमता के लिए ऐतिहासिक, सामाजिक, हास्यरसात्मक, जासूसी, राजनैतिक आदि वर्गों में विभक्त किया गया है ।

श्री चिलकमूर्ति लक्ष्मीनरसिंहम पन्तुलु तेलुगु के प्रथम ऐति - हासिक उपन्यासकार है । इनका प्रथम उपन्यास " रामचन्द्र विजयमु " को चिन्तामणि पत्रिका का प्रथम पुरस्कार मिला । इस समय के अन्य ऐतिहासिक उपन्यासों में अक्किराजु रमाकान्तम का टिप्पु सुलतान, केतवरपु वेंकटशास्त्री का " रायचूरु युद्दमु " दुग्गिराल राघवचन्द्रय्या का " विजयनगर साम्राज्यमु ", वेंकट पार्वतीश्वर कवियों का " प्रमदावनमु ", श्री वेलाल सुब्बाराव का " राणी संयुक्ता " आदि उल्लेखनीय है ।

श्री कन्दुकूरि वीरेशलिंगम तेलुगु के प्रथम उपन्यासकार होने के साथ-साथ प्रथम सामाजिक उपन्यासकार भी है । इनका प्रथम उपन्यास " राजशेखर चरित्रमु " को तेलुगु के प्रथम मौलिक उपन्यास माना जाता है । इसके बाद इन्हीं के पदचिह्नों में चलने वाले चिलकमूर्ति लक्ष्मीनरसिंहम पन्तुलु के सामाजिक उपन्यास " रामचन्द्र विजयमु " को महत्वपूर्ण माना जाता है ।

तेलुगु साहित्य में लगभग 1907 में जासूसी उपन्यास लिखे जा रहे है । प्रारम्भ में जो उपन्यास आये वे " पाँचकौडिदेव " जैसे बंगाली लेखकों की रचनाओं के अनुवाद थे । बृहत समय तक ऐसे उपन्यास अन्य कई भाषाओं से तेलुगु में अनूदित होते रहे है । मायावी, मनोरमा, मायाविनी, पेटिकान्तारशव, भूतगृह आदि उपन्यास इसी कोटी के है । पगटिचुक्का, कन्नपुदोंगा आदि आन्ध्रों द्वारा लिखे हुए उपन्यासों के भी नाम लिये जा सकते है ।

हास्यरसात्मक उपन्यास साहित्य में भी कन्दुकूरि वीरेशलिंगम जी प्रथम है । इनका " सत्यराजा की पूर्व देश की यात्राएं " और इसका दूसरा भाग " आडमलयालम " को प्रथम हास्य रचनाएँ मानते है । इस काल के हास्यरसात्मक रचनाओं में चिलकमूर्ती का गणपति, मोक्कपाटि का बारिस्टर पार्वतीशम, मुनिमाणिक्याम का कान्तम आदि उल्लेखनीय है ।

उद्‌भव कालीन उपन्यासकार अपने उपन्यासों में समकालीन प्रवृत्तियों जैसे पिछड़ापन, अंधविश्वास, जातिप्रथा आदि कुरीतियों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया ।

हिन्दी उपन्यास के विकास युग में शिक्षा के प्रसार के साथ-साथ औद्योगीकरण भी हुआ है । फलत: देश के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि सभी परिस्थितियों में परिवर्तन होने लगा । विकास युग के पहले चरण में भारतीय जनता के सामने केवल एक ही ध्येय प्रमुख था - स्वतन्त्रता । किन्तु स्वतन्त्रता के तुरन्त बाद अनेक समस्याएँ उत्पन्न हुए । उनमें पुनरा-वास की समस्या, देशी राज्यों के विलीनीकरण, प्रशासनिक इकाइयों के निर्माण एवं विस्तार शिक्षा एवं राष्ट्र को निर्माण की समस्या प्रमुख बन गए — पूंजीवादी या उद्योगपति वर्ग, मजदूर या कामगार वर्ग, किसानवर्ग व बुद्धिजीवि वर्ग । ये चार वर्ग चार सिद्धान्तों के प्रतीक ह । पूंजीवाद, औद्योगीकरण पाश्चात्य अनुकरण, भौतिक साधनों की उन्नति ने एक ओर बड़ी-बड़ी इमारतों, राजभवनों को खड़ा किया तो दूसरी ओर गरीबी के प्रतीक हजारों झोंपड़े नित्य खड़े होते जा रहे हैं । संविधान में भारत को धर्म निरपेक्ष राष्ट्र घोषित किया गया है । जनतंत्र ने व्यक्ति की महत्ता को कट्टरता आदि से सम्बन्धित परम्परागत मूल्य वैधानिक रूप से समाप्त हो गए हैं । विभिन्न रूढ़ीग्रस्त सामाजिक मूल्यों का संविधान द्वारा निषेध हो जाने पर नए स्वास्थ मूल्यों की स्थापना हो रही है । मौलिक अधिकारों से व्यक्ति के मानसिक

जगत में परिवर्तन आया है । संचार साधनों का विकास हुआ । भिन्न संस्कृतियों के प्रभाव से राजनीतिक एवं सामाजिक विचार धारा में परिवर्तन आया है । देश की बदलती हुई राजनीतिक परिस्थितियों ने अनेक विचार धाराओं को जन्म दिया है । अतः विभिन्न राजनीतिक वादों का जन्म भारत में भी हुआ है। ये राजनीतिक वाद मुख्यतः गान्धीवाद, मार्क्सवाद एवं समाजवाद के रूप में आये । इन तीनों की अभिव्यक्ति स्वतंत्रता के बाद के हिन्दी उपन्यासों में हुई है । यशपाल के उपन्यास " देशद्रोही " में मार्क्सवाद का खुला समर्थन किया गया है । रांगेयराघव के " विषादमठ " एक समाजवादी चेतना युक्त उपन्यास है । जैनेन्द्र ने " सुनीता " उपन्यास में गांधीवाद का समर्थन किया ।

अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारतीय समाज व्यवस्था गाँवों पर आधारित थी । ग्राम समाज वर्ग व्यवस्था की श्रृंखलाओं में जकड़ा हुआ था । लेकिन अंग्रेजों के आगमन के साथ भारत में उस नवीन दृष्टि का प्रवेश हुआ जिसमें नवजागरण औद्योगीकरण, वैज्ञानिक अन्वेषण, जागरूकता, नवीनता और ताजगी का समावेश था । आर्थिक क्षेत्र में परिवर्तन के कारण मध्यवर्गीय समाज के संयुक्त परिवारों का विघटन होने लगा । अब जाति का स्थान वर्ग ने व संयुक्त परिवार के स्थान पर आणविक परिवार पनपने लगे । औद्योगीकरण ने पूंजीपति वर्ग को जन्म दिया तो औद्योगिक विकास एवं शिक्षा का प्रसार ने मध्यवर्ग

को जन्म दिया अंग्रेजी आर्थिक नीति ने खेतीहार मजदूरों को शहरों की ओर उन्मुख किया । प्रेमचन्द के " गोदान " और प्रसाद की " तितली " आदि उपन्यासों में इन परिस्थितियों का वास्तविक चित्रण किया गया है ।

यह युग राजनीतिक उथल-पुथल का युग था । सामन्तीयुग की समाप्ति, हिन्दू मुस्लिम झगड़े, कांग्रेस का राजनीतिक संघर्ष तथा गांधी का अहिंसावाद इस युग के उपन्यासों में स्पष्ट दिखाई देते है । इस विकासयुग के उत्तरार्द्ध में सन् 1940 ई. तक उपन्यासों में और भी अधिक गहराई आई जीवन के प्रति दृष्टिकोण और भी अधिक विस्तृत हो गया । साहित्य में यह परिवर्तन नए सम्बन्धों तथा समझौते के स्थान पर विद्रोह के कारण आया था । इन कारणों को जन्मदेनेवाली तत्कालीन सामाजिक तथा आर्थिक विषमताएँ थीं । सामाजिक क्षेत्र में व्यक्ति घर के दायरे को तोडकर राजनीतिक प्रक्रियाओं का निकाय बन गया था । नवीन जीवन पद्धति ने समाज को दो विपरीत दिशाओं में बाँट दिया था । इस युग के उपन्यासकार व्यक्तिवादी व समिष्टिवादी दोनों रूपों में पहचाने जाते है । हिन्दी उपन्यासों की प्रवृत्तियों के आधार पर उनको सामाजिक यथार्थवादी, व्यक्तिवादी मनोविश्लेषणात्मक, आंचलिक, व्यंग्यात्मक, ऐतिहासिक आदि वर्गों में विभाजित किया गया है ।

प्रेमचन्द हिन्दी के सबसे पहले सामाजिक यथार्थवादी उपन्यासकार है। इनका पहला उपन्यास "सेवासदन" से लेकर "गोदान" तक के सभी उपन्यास सामाजिक ही है। इस युग के अन्य सामाजिक उपन्यासों में कंकाल, तितली, कल्याणी, लालपंजा, सखाराम, दिल्ली का दलाल, हृदय की प्यास, भाई, लगन, रामरहीम, विदा, मनोरमा, गोद, मनुष्य के रूप, गिरती दीवारें, मुर्दों का टीला, बून्द और समुद्र, गंगा मैया आदि उल्लेखनीय है।

विकास युग के व्यक्तिवादी उपन्यासों में कंकाल, भूले बिसरे चित्र, गिरती दीवारें, साराआकाश, डूबते मस्तूल, गुनाहों का देवता, रेखा, चिड़ियाघर, राग दरबारी, उखड़े हुए लोग, अंधेरे बन्द कमरे, मनुष्य के रूप आदि प्रमुख है।

इस युग के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में सुनीता, त्यागपत्र, परख, निर्वासित, जिप्सी, जहाज का पंछी, शेखर : एक जीवनी, नदी के द्वीप आदि उल्लेखनीय है।

इस युग के आँचलिक उपन्यासों में रतीनाथ की चाची, बलचनामा, वरुण के बेटे, मैला आँचल, सागर लहरें और मनुष्य, कब तक पुकारूं, ब्रह्मपुत्र, पानी के प्राचीर, अपने अपने अजनबी आदि प्रमुख है।

व्यंग्यात्मक प्रवृत्तिगत उपन्यासों में गिरती दीवारें, सारा आकाश, हुजूर, हीरक जयंती, परती परिकथा, मैला आँचल, रागदरबारी, त्यागपत्र आदि विकास युग में प्रमुख है ।

इस विकास युग के ऐतिहासिक उपन्यासों में इरावती, गढ़कुण्डार, मृगनयनी, चित्रलेखा, सिंहसेनापति, जय यौधेय, वैशाली की नगर वधु, दिव्या, बाणभट्ट की आत्मकथा, मुर्दों का टीला, बहती गंगा, शतरंज के मोहरे, मानस का हंस आदि प्रमुख है ।

इस युग के विभिन्न उपन्यासों में समकालीन सामाजिक समस्याएँ जैसे धर्माडम्बर, विधवा समस्या, अछूतों की समस्या, वेश्या वृत्ति समस्या, पूंजीवादी आर्थिक विषमता से उत्पन्न समस्याएँ तथा उनकी प्रतिक्रिया आदि का चित्रण किया गया ।

तेलुगु साहित्य के विकास युग का आरम्भ उन्नीसवीं शती की तीसरी दशाब्दी में हुआ । यह समय भारत देश के इतिहास, समाज और साहित्य में भी उत्पन्न महत्वपूर्ण एवं परिवर्तनशील रहा है । इस युग की समस्त प्रवृत्तियां व परिस्थितियों जैसे राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक आदि का प्रभाव तेलुगु साहित्य पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है ।

भारतीय जनता द्वारा मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड के प्रस्तावों की भर्त्सना तथा सन् 1914-18 के प्रथम महायुद्ध ने लेखकों को अत्यन्त प्रभावित किया था । 1919 के जालियनवाला बाग के हत्याकांड तथा चौरचौरी तथा चम्पारन के सत्याग्रह ने जनता को उत्तेजित तथा प्रभावित किया था । भारतीय स्वतंत्रता के आन्दोलन के राष्ट्रपिता गांधी द्वारा नेतृत्व ग्रहण करते ही राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों में अप्रत्याशित परिवर्तन हुआ । आन्ध्र जनता ने भी उस शब्दीय नेता के पदचिन्हनों पर चलकर असहयोग आन्दोलन के द्वारा स्वतंत्रता समर में अग्रणी बन अपने धैर्य-साहस तथा शक्ति-सामर्थ्य को प्रदर्शित किया । उस समय आन्ध्र समाज में कई परिवर्तन आये । सामाजिक परिस्थितियाँ बदल गयीं । उस समय आन्ध्र की सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों तथा आन्दोलनों का चित्रण करते हुए अनेक देशभक्त और लेखक विभिन्न उपन्यासों जैसे सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, हास्यरसात्मक, राजनैतिक, ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की है ।

इस समय में लिखे गये सामाजिक उपन्यासों में उन्नव लक्ष्मीनारायण के मालपल्ली, अडवि बापिराजु के कोनंगी, नारायण राव, विश्वनाथ सत्यनारायण के वेइपडगलु, कोडवटिगण्टि कुटुम्बराव के चदुवु, जी·वी·कृष्णाराव के कीलुबोम्मलु और बुच्चि बाबु के चिवरकुमिगिलेदि आदि सुप्रसिद्ध है ।

सन् 1940 के बाद आन्ध्र के उपन्यास पर एक नया प्रभाव पड़ा। नमक सत्याग्रह, द्वितीय महायुद्ध "भारत छोडो" आन्दोलन, एम॰एन॰राय के तात्विक सिद्धान्त और मानवतावाद ने इस पीढ़ी के लेखकों को अत्यधिक प्रभावित किया। फलत: मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का विकास हुआ। इस समय के मनो - वैज्ञानिक उपन्यासों में कोडवटिगण्टि के लेचिपोइन मनिषि और कुललेनि पिल्ला। गोपीचन्द के असमर्थीन जीवितयात्रा और परमेश्वर शास्त्री का वीलुनामा, कृष्णाराव के कीलुबोम्मलु, बुच्चिबाबु के चिवरकुमिगिलेदि, राजकोण्ड विश्वनाथ शास्त्री के अल्पजीवि, उत्पल लक्ष्मणराव के अतडु-आमे आदि उल्लेखनीय है।

विकासयुग के हास्यरसात्मक उपन्यासों में चिलकमूर्ति लक्ष्मीनरसिंहम के गणपति, भीगराजु नारायणमूर्ति के पंडुग कट्नम, मुनि मानिक्यम के कान्तम, मोक्कपाटि के बारिस्टर पार्वतीशम, कोडवटिगण्टि कुटुम्बराव के कोत्त कोडलु, मुल्लपूडि वेंकटरमण के बुड्गु आदि प्रमुख है।

तेलुगु उपन्यास साहित्य में राजनैतिक उपन्यास कहने योग्य उपन्यासों में उन्नव लक्ष्मीनारायण के मालपल्ली, उप्पल लक्ष्मीनारायण के अतडु-आमे, महीधर राममोहनराव के रथचक्रालु, ओनमालु, दावा - नलम, आदि विश्वनाथ सत्यनारायण के पुलुल सत्याग्रहमु, आल्वार स्वामी के प्रजल मनिषि, शिवरामकृष्ण के मृत्युंजयुलु, लक्ष्मीकान्त के हिंसगर्जन आदि उल्लेखनीय है।

इस युग के ऐतिहासिक उपन्यासों में विश्वनाथ सत्यनारायण के एकवीरा, बद्दन्नसेनानी, कीडिमिपेट्टु, अडवि बापिराजु के हिमबिन्दु, गेन-गन्ना रेड्डी, नोरि नरसिंह शास्त्री के नारायण भट्टु, रुद्रमदेवी, मल्लारेड्डी, नेल्लटूरि वेंकट रमणय्या के पश्चात्ताप, छत्रशाही, मधुमावती, तेन्नेटि सूरि के चंगिज खान, मल्लादि वसुंधरा के तंजाऊरु पतनम, सप्तपर्णी, रामप्पगुंडो, धूलिपाल श्रीराममूर्ति के युवन - विजयमु, गृहराजु मेड, कोर्लपाटि श्रीराममूर्ति के चित्रलेखा, पिलका गणपति शास्त्री के मोनांबिका आदि उल्लेखनीय हैं।

इस युग के विभिन्न उपन्यासों में समकालीन सामाजिक समस्याएँ जैसे धर्माडम्बर, विधवा समस्या, अछूतों की समस्या, वेश्यावृत्ति की समस्या, पूंजीवादी आर्थिक विषमता से उत्पन्न समस्याएँ तथा उनकी प्रतिक्रिया आदि का चित्रण किया गया।

प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि गद्य के आविर्भाव के साथ ही साथ उपन्यास का भी साहित्य के क्षेत्र में आविर्भाव हुआ। उपन्यास का सामाजिक आधार वस्तुत: मध्यवर्ग ही है जो औद्योगिक समाज की उपज है। यह वर्ग अत्यन्त संवेदनशील है और वह अनुभव करता है कि हमारा देश सभी दृष्टियों से अत्यन्त हीन दशा में है, जीवन के सभी क्षेत्रों में परिवर्तन और

सुधार की आवश्यकता है । इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए साहित्य को भी माध्यम बनाया गया । फलत: पद्य के विकास के साथ-साथ गद्य का भी विकास हुआ और गद्य की विभिन्न विधाओं जैसे उपन्यास नाटक, कहानी आदि का प्रादुर्भाव हुआ ।

हिन्दी और तेलुगु उपन्यास के उद्भवकाल और विकासकाल के पूर्वार्द्ध तक हिन्दी और तेलुगु दोनों प्रदेश भी अंग्रेजी शासन के अधिकार में रहने के कारण राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक परि - स्थितियों का प्रभाव दोनों प्रदेशों पर समान रूप से पड़ा । हिन्दी और तेलुगु के स्वतन्त्रता पूर्ववर्ती उपन्यासों में समकालीन अंधविश्वास, पिछड़ापन, जाति प्रथा आदि कुरीतियों का विरोध किया गया है । स्वतन्त्रता आन्दोलन समय के दोनों उपन्यासों में देश भक्ति तथा स्वतन्त्रता आन्दोलन से सम्बन्धित समस्याओं का चित्रण हुआ है । इसी समय में दोनों उपन्यासों के विभिन्न प्रवृत्तियां जैसे सामाजिक यथार्थवादी, व्यक्तिवादी मनोविश्लेषणवादी, आंचलिक आदि का विकास हुआ । इन उपन्यासों में भी समकालीन सामाजिक, व्यक्तिपरक समस्याओं का चित्रण किया गया ।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों के उद्भव और विकास में समानताएँ अधिक और विषमताएँ कम है ।

हिन्दी और तेलुगु उपन्यास के शिल्पगत विकास में भी समानताएँ ही अधिक दिखाई दे रही है । कारण ये हो सकता है कि हिन्दी और तेलुगु दोनों उपन्यासों के जन्म के मूल में पाश्चात्य उपन्यास का प्रभाव था । हिन्दी के प्रथम उपन्यास " परीक्षागुरु " और तेलुगु का प्रथम उपन्यास " राजशेखर चरित्रमु " दोनों को परखने से उक्त कथन को पुष्टि मिलती है । उपन्यास के शिल्प शिल्प विधान में भी हिन्दी और तेलुगु के उपन्यासों का विकास क्रमशः घटना प्रधान शिल्प से वर्णनात्मक शिल्प की ओर, वर्णनात्मक से नाटकीय और नाटकीय से प्रतीकात्मक और विश्लेषणात्मक शिल्प की ओर बढ़ा है ।

x:x:x:x:x:x:x:x:x:x: -/-/-/-/-/-/-/-/-/-/-/-/-/-/-

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

-/-/-/-/-/-/-/-/-/-/-/-/- x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अंधेरे बन्द कमरे — मोहन राकेश, राजकमल प्रकाशन 1972
2. अतडु आमे (तेलुगु) — डॉ.उप्पल लक्ष्मण राव, विशालान्ध्र प्रचुरण, 1966 द्वितीय संस्करण
3. अमृत और विष — अमृतलाल नागर, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1971
4. अस्सामी साहित्य चरित्र (तेलुगु) — बिरिंचिकुमार बरुआ, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली - 1974
5. उर्दू नवल-सफ्त और रफ्तार (उर्दू) — डॉ.सैयद अली हैदर, राबिस्तान 218, शाहमत, इलाहाबाद 1979
6. उसके हिस्से की धूप — मृदुला गर्ग, अक्षर प्रकाशन, 1975
7. कल्याणी — जैनेन्द्र कुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली 1978
8. काव्यकला तथा अन्य निबन्ध — जयशंकर प्रसाद, द्वितीय संस्करण
9. गंगा मैया — भैरव प्रसाद गुप्त, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - 1953

10.	गंगू (तेलुगु)	आलवार स्वामी, विशालान्ध्र पब्लिशिंग हाउस, द्वि.सं. 1974
11.	गिरती दीवारें	उपेन्द्रनाथ अश्क, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद - 1947
12.	गुनाहों का देवता	धर्मवीर भारती, साहित्य भवन, इलाहाबाद - 1963
13.	घरौंदे	रांगेय राघव, सरस्वती प्रेस, बनारस - 1946
14.	चदुवु (तेलुगु)	कोडवटिगण्टि कुटुम्बराव, नवभारत प्रचुरण - 1976
15.	झूठा सच	यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ चतुर्थ संस्करण
16.	तेलुगु साहित्य समीक्षा	आचार्य जी नागय्या नव्य परिशोधका प्रचुरण, तिरुपती, द्वि.सं. 1985
17.	देश द्रोही	यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ - 1943
16.	दादा कामरेड	यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ - 1942
19.	नारायण राव (तेलुगु)	अडवि बापि राजु, त्रिवेणी पब्लिशर्स षष्ठ सं. 1961

20·	निर्वासित	इलाचन्द्र जोशी, भारतीय भण्डार, इलाहाबाद 2022 वि·
21·	प्रगतिवाद और हिन्दी उपन्यास	प्रभातचन्द्र शर्मा, साहित्य सदन देहरादून - 1967
22·	बंगाल साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	डॉ·सत्येन्द्र प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश - 1961
23·	बलचनामा	नागार्जुन किताब महल, इलाहाबाद 1965
24·	बीसवीं शताब्दी के हिन्दी उपन्यास : नये संदर्भ	लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, राधा कृष्ण प्रकाशन, दिल्ली - 1970
25·	बूंद और समुद्र	अमृतलाल नागर, किताब महल, इलाहाबाद - 1964
26·	भारतीय उपन्यासों में वर्णन कला का तुलनात्मक मूल्यांकन	डॉ·इन्दिरा जोशी, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा - 1973

27• भारतीय भाषाओं के उपन्यास साहित्य का संक्षिप्त इतिहास — सं• डा•गोपाल शर्मा, केन्द्रिय हिन्दी निर्देशालय, नई दिल्ली - 1974

28• भूले बिसरे चित्र — भगवती चरण वर्मा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - 1975

29• मनुष्य के शाप — यशपाल, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद - 1972

30• मालपल्ली §तेलुगु§ — उन्नव लक्ष्मी नारायण, त्रिवेणी पब्लिशर्स, मद्रास - 1984

31• मैला आँचल — फणीश्वरनाथ रेणु, राजकमल प्रकाशन दिल्ली - 1973

32• परती परिकथा — फणीश्वरनाथ रेणु, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - 1966

33• प्रजल मनिषि §तेलुगु§ — आलवार स्वामी, विशालान्ध्र पब्लिशिंग हाउस - 1970 तृ•सं•

34• प्रेत और छाया — इलाचन्द्र जोशी, भारती भण्डार, इलाहाबाद - 1947

35• पुण्य भूमि कल्लु तेरिपिंदि (तेलुगु) — बीजादेवी, नवभारत बुक हाउस, विजयवाडा - 1971

36• राग दरबारी — श्री लाल शुक्ल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - 1968

37• राजु महीषि (तेलुगु) — रावी शास्त्री, स्टूडेन्ट बुक सेन्टर, विजयवाडा - 1971

38• वंशज — मृदुला गर्ग, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली - 1976

39• विषादमठ — रांगेय राघव, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली

40• विचार और वितर्क — हजारी प्रसाद द्विवेदी, नवीन संस्करण 1954

41• वेइ पड्गुल (तेलुगु) — विश्वनाथ सत्यनारायण, वल्ली प्रचुरणालु 1976, बारहवां सं•

42• शेखर : एक जीवनी — अज्ञेय, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद - 1966

43• सारा आकाश — राजेन्द्र यादव, अक्षर प्रकाशन दिल्ली - 1951

44• सुनीता — जैनेन्द्र कुमार, पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली 1973

45• स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास : मूल्य संक्रमण — डॉ• हेमेन्द्र पजेरी, संघी प्रकाशन, जयपुर 1964

46.	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी और तमिल के सामाजिक उपन्यास	डॉ॰ एन॰ श्रीधरन, शोध प्रबन्ध, उदयपुर विश्वविद्यालय - 1970
47.	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी और मराठी के सामाजिक उपन्यास	डॉ॰ तुकाराम लक्ष्मण कोतमिरे, शोध प्रबन्ध विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन
48.	हिन्दी उपन्यास	डॉ॰ शिवनारायण श्रीवास्तव, सरस्वती मन्दिर, वाराणसी
49.	हिन्दी उपन्यास	डॉ॰ सुषमा धवन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।
50.	हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ	शशी भूषण सिंह - विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा - 1960
51.	हिन्दी उपन्यास का विकास मध्यवर्गीय चेतना	वीना श्रीवास्तव, मेकमिलन इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली - प्रथम संस्करण - 1981
52.	हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद	त्रिभुवन सिंह, हिन्दी प्रचारक,संस्थान, वाराणसी - 1974

53. हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना — कुंवरपाल सिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

54. हिन्दी और गुजराती के सामाजिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन — डॉ॰आशा लूथरा, शोध प्रबन्ध, पटना विश्वविद्यालय, 1972

55. हिन्दी और मराठी के सामाजिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन — डॉ॰चन्द्रकांत महादेव बांदिवडेकर, कृष्ण ब्रदर्स, अजमेर - 1968

56. हिन्दी साहित्य का इतिहास — डॉ॰नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली - 1976

=-=-=-=-=-=-=-=-=-=-=-=-=- x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:

सहायक ग्रन्थ सूची

x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x: =-=-=-=-=-=-=-=-=-=-=-=-=-

सहायक ग्रन्थ सूची

1.	अंग्रेजी उपन्यास का विकास और उसकी रचना पद्धति	:	श्री नारायण मिश्र,प्रकाशन शाखा सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश - 1961
2.	अंधेरे बन्द कमरे	:	मोहन राकेश, राजकमल प्रकाशन -1972
3.	अनदेखे अनजाने पुल	:	राजेन्द्र यादव, अक्षर प्रकाशन - 1984
4.	अन्तराल	:	मोहन राकेश, राजकमल प्रकाशन -1976
5.	अपने-अपने अजनबी	:	अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी - 1970
6.	अमृत और विष	:	अमृतलाल नागर, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद - 1971
7.	आखिरी दांव	:	भगवती चरण वर्मा, भारती भण्डार, इलाहाबाद, सं. 2022 वि.
8.	आज का हिन्दी उपन्यास	:	इन्द्रनाथ मदान, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - 1966
9.	आज का हिन्दी साहित्य	:	संवेदना और दृष्टि रामदरश मिश्र, अभिनव प्रकाशन, दिल्ली - 1975

10. आन्ध्र नवला परिणाममु (तेलुगु) : डा.बोड्डपाटि वेंकट कुटुंबराव, गायत्री प्रकाशन, हैदराबाद - 1971

11. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास : डा.बच्चन सिंह

12. आधुनिकता के सन्दर्भ में आज का हिन्दी उपन्यास : डा.अतुलवीर अरोड़ा, पब्लिकेशन ब्यूरो, पंजाब यूनिवर्सिटी, चण्डीगढ़ - 1974

13. आधुनिकता और समकालीन रचना सन्दर्भ : नरेन्द्र मोहन, प्रा.सा.प्र. दिल्ली - 1974

14. आधुनिक साहित्य की व्यक्तिवादी भूमिका : डॉ.बलभद्र तिवारी

15. आधुनिक हिन्दी साहित्य : डॉ.रामगोपाल सिंह,चौहान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1965

16. आत्मनेपद : सं.ही.वा.अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ काशी - 1960

17.	आदर्श दम्पति	:	मेहता लज्जाराम शर्मा, खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई निज श्री वेंकटेश्वर - 1906
18.	आदर्श हिन्दू	:	मेहता लज्जाराम शर्मा, काशी नागरी प्रचारिणी सभा - 1922 (2 री बार)
19.	आदर्श बाला	:	किशोरीलाल गोस्वामी, सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन 1915 (2 री बार)
20.	आनन्दन भवन	:	निहालचन्द्र वर्मा
21.	आपका बंटी	:	मन्नू भण्डारी, अक्षर प्रकाशन - 1980
22.	आश्चर्य वृत्तान्त	:	अम्बिकादत्त व्यास, व्यास पुस्तकालय, काशी - 1949 (4 थी बार)
23.	इन्दुमती	:	किशोरीलाल गोस्वामी, हित चिंतक प्रेस, काशी - 1906
24.	इमरतिया	:	नागार्जुन - 1978
25.	इलाचन्द्र जोशी	:	साहित्य और समीक्षा, मध्य प्रदेश साहित्य प्रकाशन - 1969

26. उखड़े हुए लोग : राजेन्द्र यादव, अक्षर प्रकाशन 1970

27. उपन्यास और लोक जीवन : रैल्फ, फ, ाक्स, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड, नई - दिल्ली - 1980

28. उपन्यास का समाजशास्त्र : डॉ.वी.डी.गुप्ता, श्री पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली - 1979

29. उपन्यास : स्थिति और गति : चन्द्रकांत बांदिवडेकर

30. उपन्यास तत्व एवं रूपविधान : श्री नारायण अग्नि होत्री, आचार्य शुक्ल साधना सदन, कानपुर - 1962

31. एक चिथड़ा सुख : निर्मल वर्मा

32. ऐतिहासिक उपन्यास तुलनात्मक अध्ययन : डॉ.श्रीनारायण भारद्वाज, कोणार्क प्रकाशन, दिल्ली - 1971

33. कंकाल : जयशंकर प्रसाद, भारती भण्डार, लीडर प्रेस - इलाहाबाद - सं. 2022 वि.

34. कटा हुआ आसमान : जगदम्बा प्रसाद दीक्षित

35. कथा के रचनात्मक शिल्प : नई कहानियाँ, सं.भैरव प्रसाद गुप्त

36. कब तक पुकारूं : रांगेय राघव, राजपाल, दिल्ली - 1971 (च.सं.)

37. काजर की कोठरी : देवकी नन्दन खत्री, वाराणसी 1966 (दसी बार)

38. काली आंधी : कमलेश्वर, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली - 1974

39. कितने चौराहे : फणीश्वरनाथ रेणु

40. कुछ विचार : प्रेमचन्द, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद - 1961

41. खाली कुर्सी की आत्मा : लक्ष्मीकांत वर्मा, - 1958

42. गर्मराख : उपेन्द्रनाथ अश्क, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद - 1952

43. गुजराती साहित्य का इतिहास : गिरधर प्रसाद शर्मा, गयाप्रसाद एंड संस, आगरा - 1942

44. गुप्तचर	:	गोपालराम गहमरी, भारत मित्र प्रेस, कलकत्ता
45. घराऊ घटना	:	भुवनेश्वर
46. चन्द्रकान्ता	:	देवकीनन्दन खत्री, दुर्गा प्रसाद खत्री, प्रोप्राइटर लहरी बुक डिपो, बनारस - 1893 (19 वीं बार)
47. चन्द्रकान्ता सन्तति	:	" 1896 (16 वी बार)
48. चपला	:	किशोरीलाल गोस्वामी, सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन 1916 (2 री बार)
49. चरित्र चित्रण के विशेष संदर्भ में स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी और सामाजिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन	:	डॉ.के.के.सत्यनाथन, केरल विश्वविद्यालय की शोध प्रबन्ध 1977 - 78.
50. चिडिया घर	:	गिरिराज किशोर, राजकमल प्रकाशन, 1967

51. जय वर्द्धन : जैनेन्द्र कुमार पू.प्र. दिल्ली, 1965

52. जहाज का पंछी : इलाचन्द्र जोशी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - 1972

53. जिप्सी : इलाचन्द्र जोशी, भारती भण्डार लीडर प्रेस, इलाहाबाद - 1952

54. जुगल बन्दी : गिरिराज किशोर, राजकमल प्रकाशन, 1973

55. जैनेन्द्र और उनके उपन्यास : रघुनाथ सरण झालानी

56. जैनेन्द्र के उपन्यासों का शिल्प : ओम प्रकाश शर्मा, पांडुलिपि प्रकाशन, दिल्ली - 1975

57. जैनेन्द्र साहित्य और समीक्षा : डॉ. रामरतन भटनागर, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली - 1970

58. टेढ़े मेढ़े रास्ते : भगवतीचरण वर्मा, भारती भण्डार, इलाहाबाद सं. 2022 वि.

59. ठेठ हिन्दी का ठाठ : अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस, संशोधित संस्करण सं. 2011 वि.

60. ठनठन गोपाल : गोपालराम गहमरी, इलाहाबाद

61. डबल बीबी : गोपाल गहमरी, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई 1915 (2 री बार)

62. डाकबंगला : कमलेश्वर, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली - 1976

63. डूबते मस्तूल : नरेश मेहता, आत्माराम एण्ड संन्स, दिल्ली - 1954

64. तारा : किशोरीलाल गोस्वामी, सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन - 1902

65. त्यागपत्र : जैनेन्द्र कुमार, पू.प्र. दिल्ली 1970

66. तेरी मेरी उसकी बात : यशपाल, लोकभारती, प्र. इलाहाबाद - 1973

67. तितली : जयशंकर प्रसाद, भा भ., इलाहाबाद, सं. 2023 वि.

68. देवरानी जेठानी : पं. गौरी दत्त, पटना

69. दु:ख मोचन : नागार्जुन, राजकमल, प्रकाशन 1966 (प.सं.)

70. दो एकान्त : नरेश मेहता, लोक भारती, प्रकाशन, इलाहाबाद - 1976

71. दिल का काँटा : बाबू जयराम दास गुप्त, बाबू निहालचन्द्र वर्मा, नेपाली, 2421 बनारस, सिटी 1922 (3 री बार)

72. धूर्त रसिक लाल : मेहता लज्जाराम शर्मा, वेंकटेश्वर यंत्रालय, बम्बई

73. धोखे की टट्टी : रामजीदास वश्य, इंडिया, प्रेस, प्रयाग, 1919 (2 री बार)

74. नदी के द्वीप : अज्ञेय, सरस्वती प्रेस, वाराणसी, 1966

75. नदी यशस्वी है : नरेश मेहता, आत्माराम एण्ड सन्स - 1967

76. नूतन ब्रह्मचारी : बालकृष्ण भट्ट, विश्वविद्यालय परीक्षा बुकडिपो पान दरीबा, इलाहाबाद 1911 ‖ 2 री बार ‖

77. नि:सहाय हिन्दू : श्री राधाकृष्ण दास, गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ - 1949 ‖ 2 री बार ‖

78. नाच्यौ बहुत गोपाल : अमृतलाल नागर, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली - 1979

79. परती परिकथा : प॰ फणीश्वरनाथ रेणु

80. पल्टू बाबू रौड : फणीश्वरनाथ रेणु

81. परीक्षा गुरू : श्रीनिवास दास, ज्ञान प्रकाश दिल्ली - ‖ 2 री बार ‖

82. पार्टी कामरेड : यशपाल, लोक भारती, 2973 ‖ तृ.सं. ‖

83. प्रेत और छाया : इलाचन्द्र जोशी, भारती भण्डार, इलाहाबाद - 1947

84. प्रेत बोलते है : राजेन्द्र यादव, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली - 1970

85. प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्प विधि : लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद - 1958

86. प्रेमचन्द तथा तपपि शिवशंकर पिला के उपन्यासों में चित्रित जन जीवन का तुलनात्मक अध्ययन : डॉ.शीला आइजक, मैसर्स हासबुक, कौरस्कायर पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ. 1976

87. प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास : डॉ.कैलाश प्रकाश, हिन्दी अनुसंधान परिषद, दिल्ली विश्वविद्यालय के निमित्त हिन्दी साहित्य संसार दिल्ली - 1962

88. प्रेमचन्द पूर्व के कथाकार और उनका युग : लक्ष्मण सिंह बिष्ट, रचना प्रकाशन 45-ए, रंकुल्दाबाद इलाहाबाद - 1972

89. प्रेमचन्द : एक विवेचन : डा. इन्द्रनाथ मदान, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - 1962

90. प्रेमया : कमल किशोर गोयनका

91. फणीश्वरनाथ रेणु की उपन्यास कला : कुसुम सोपन्र, वसुमती प्रकाशन, इलाहाबाद - 1968

92. फूल में काँटा : रामजीदासवैश्य, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ.

93. बदलते जीवन मूल्यों के सन्दर्भ में हिन्दी उपन्यास साहित्य का विशेष अध्ययन : डॉ. वेदप्रकाश शर्मा, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध

94. बया का घोंसला और सांप : लक्ष्मी नारायण लाल, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद 1936

95. बाबा बटेसरनाथ : नागार्जुन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - 1977

96. भारतीय उपन्यास कथासार : सं.डॉ.प्रभाकर माचवे, भारतीय भाषा परिषद, कलकत्ता - 1981

97. भारतीय भाषाओं के साहित्य का संक्षिप्त इतिहास : सं.डॉ.गोपालशर्मा आदि, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली - 1974

98. भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा : रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - 1975

99. बीसवीं शताब्दी हिन्दी उपन्यास नये दो पहलू : डॉ.श्रीनारायण सिंह, लोकवाणी, प्रकाशन, दिल्ली - 1976

100. बून्द और समुद्र : अमृतलाल नागर, किताब महल, इलाहाबाद - 1964

101. भाग्यवती : पंडित श्रद्धाराम फु. ल्लौरी (सम्पादक विजयशंकर मल्ल) हिन्दी प्रचार पुस्तकालय, वाराणसी - 1960

102. भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण : भगवतीशरण उपाध्याय

103. भारतीय साहित्य और संस्कृति शास्त्री : डा.हरिदत्त शास्त्री

104. भारतीय साहित्य : तुल-नात्मक अध्ययन : सं.डॉ.ब्रजेश्वर शर्मा, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, विनोद पुस्तक मंन्दिर, आगरा 1976

105. भूले बिसरे चित्र : भावती वरण वर्मा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - 1975

106. महाभोज : मन्नू भण्डारी, अक्षर प्रकाशन 1975

107. मेरी कहानियाँ बाहर और भीतर : जैनेन्द्र

108. मुर्दों का टीला : रांगेय राघव, किताब महल, इलाहाबाद - 1963

109. मानस का हंस : अमृतलाल नागर, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली - 1972

110. यात्राएँ : गिरिराज किशोर, राजकमल प्रकाशन - 1971

111. रक्त मंडता : दुर्गा प्रसाद खत्री, लहरी बुक डिपो, बनारस 1914

112. राग दरबारी : श्रीलाल शुक्ल, राजकमल प्रकाशन 1968

113. लज्जा : इलाचन्द्र जोशी, भारती भण्डार, इलाहाबाद, वि.सं.2004 चैत्र

114. लवंगलता : किशोरीलाल गोस्वामी, सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन 1980

115. लालचीन : बाबू बृजनन्दन सहाय, के मित्रा दि इण्डियन प्रेस लि.इलाहाबाद 1931 ﴾2 री बार﴿

116. लाल पंजा : दुर्गा प्रसाद खत्री, वाराणसी 1966 ﴾12 वीं बार﴿

117. लोक दृष्टि और हिन्दी साहित्य : चन्द्रबली सिंह

118. वरूण के बेटे : नागार्जुन, राजपाल एण्ड संन्स, दिल्ली - 1957

119. शैली विज्ञान : डॉ.नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1973

120. शैली और शैली विज्ञान : भूमिका - सुरेश कुमार रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा - 1976

121. श्याम स्वप्न : ठाकुर जगमोहन सिंह, काशी प्रचारिणी सभा, काशी - 1888

122. श्यामा : दुर्गा प्रसाद खत्री, लहरी बुक डिपो, बनारस 1914

123. सती मैया का चौरा वलचनामा : नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद - 1965

124. सती मैया का चौरा : भैरव प्रसाद गुप्त, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद 1956

125. समाज : सं.डॉ.बी.डी.गुप्त, समाजशास्त्र विभाग, पी.सी.बागला, महाविद्यालय, हाथरस - 1980

126.	साहित्य तथा कला	:	मार्क्स एंगेल्स ‖ हिन्दी रूपांतरण ‖ प्रगति प्रकाशन, मास्को - 1981
127.	साहित्य और राजनीति		कुवरपाल सिंह ‖सम्पादक‖ शकिर अली, भाषा प्रकाशन, नई दिल्ली - 1981
128.	साहित्य और इतिहास दृष्टि	:	डॉ.मैनेजर पांडेय, पीपुल्स लिटरेसी, दिल्ली - 1981
129.	साहित्य का वस्तुपरक विश्लेषण	:	डॉ.वी.डी.गुप्ता, सीता प्रकाशन, मोती बाजार, हाथरस 1983
130.	साहित्य का समाज - शास्त्र अवधारणा, सिद्धांत एवं पद्धति	:	डॉ.वी.डी.गुप्ता, सीता प्रकाशन, हाथरस - 1982
131.	स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी उपन्यास	:	डा.रामगोपाल सिंह चौहान विनोद पुस्तक भंडार, आगरा 1965
132.	स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी उपन्यास मूल्य संक्रमण	:	हेमेन्द्र कुमार पानेरी, संघी प्रकाशन, जयपुर 1974

133. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना : ज्ञानचन्द्र गुप्त, अभिनव प्रकाशन, दिल्ली - 1974

134. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में जीवन दर्शन : डा.सुमित्रा त्यागी, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली - 1978

135. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य की समाज शास्त्रीय पृष्ठभूमि : डा.स्वर्णलता, विवेक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर 1975

136. सुखदा : जैनेन्द्र कुमार, पू.प्र. दिल्ली 1955

137. सूरज का सातवाँ घोडा : धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी 1953

138. सौ अजान एक सुजान : बालकृष्ण भट्ट,लखनऊ

139. हिन्दी उपन्यास : डॉ.सुषमा धवन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - 1961

140. हिन्दी उपन्यास (ऐतिहासिक अध्ययन) : डा. शिवनारायण श्रीवास्तव, सरस्वती मन्दिर, वाराणसी, संशोधित संस्करण 1968

141. हिन्दी उपन्यास : उद्भव और विकास : डा. सुरेश सिन्हा, अशोक प्रकाशन, दिल्ली - 1965

142. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ : डॉ. शशि भूषण सिंहल, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा 1070

143. हिन्दी उपन्यास : प्रेम और जीवन : शान्ति भारद्वाज, सुशील प्रकाशन, अजमेर, 1969

144. हिन्दी उपन्यास का विकास और नैतिकता : डा. सुखदेव शुक्ल, अनुसंधान - प्रकाशन ,कानपुर 1966

145. हिन्दी उपन्यास : समकालीन परिदृश्य सं. महीप सिंह (ले. डॉ. गोपाल)

146. हिन्दी उपन्यास सामाजिक सन्दर्भ : डॉ. बालकृष्ण गुप्त, अभिलाषा प्रकाशन, कानपुर 1978

147. हिन्दी उपन्यास समाजशास्त्रीय विवेचन : डॉ. चण्डी प्रसाद जोशी, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर 1962

148. हिन्दी उपन्यास : सामाजिक सन्दर्भ : डॉ.बालकृष्ण गुप्त

149. हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन : डॉ.गणेशन, राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली - 1962

150. हिन्दी उपन्यास शिल्प विधि का विकास : डा.कृष्णा नाग, लोकचेतना, प्रकाशन, जबलपुर 1962

151. हिन्दी उपन्यास शिल्प : डॉ.प्रेम भटनागर, अर्चना प्रकाशन, जयपुर - 1968

152. हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी उपन्यास : कु.कमल कुमारी जौहरी, ग्रन्थम, कानपुर 1965

153. हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रयोग त्रिभुवन सिंह डा.त्रिभुवन सिंह, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी 1983

154. हुजूर : रांगेय राघव - 1952

तैलुगु ग्रन्थों की सूची

1. आन्ध्र प्रदेश चरित्र आधुनिक युगमु : जी.वेंकटरामाराव, दक्षिण भारत प्रेस, हैदराबाद - 1982

2. आन्ध्र प्रदेश चरित्र संस्कृति : वी.एस.शास्त्री, मूसी पब्लिकेशन्स, हैदराबाद 1990

3. आन्ध्रनवला परिणाममु : वेड्डपाटि वेंकट कुटुम्बराव, गायत्री प्रकाशन, हैदराबाद 1971

4. तैलुगु नवल : अक्किराजु रामपतिराव आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादमी हैदराबाद - 1975

5. तैलुगु नवललो सामाजिक चैतन्यम : डॉ.पी.संजीवम्मा, अभ्युदय रचयितल संघम, कडपा 1985 प्र.सं.

6. तैलुगु नवलल्लो कुटुम्ब - जीवन चरित्रमु : डॉ.पी.अनन्दलक्ष्मी, पारेडपल्ली सिकन्दराबाद - 1979

7. तैलुगु नवल नूरु संवत्सरालु : सं.देवुलपल्ली रामानुज, आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादमी, हैदराबाद - 1953

8. तेलुगु नवला साहित्यंम लो मनोविश्लेषण : कोडूरि श्रीराममूर्ति, किरण किशोर पब्लिशिंग सोसाइटि आ.प्र. 1979

9. तेलुगु साहित्य विकासमु : पुल्लामोट्ल वेंकटेश्वर्लु

10. तेलुगु साहित्य समीक्षा : आचार्य जी.नागय्य, नव्य परिशोधन प्रचुरणलु तिरुपति - 1985

11. मन नवल परिशीलन (निबन्ध संकलन) : चैतन्य साहिति वरंगल, 1979

12. दक्षिण भारत साहित्यमुलु : वल्ला राधाकृष्णमूर्ति, आ.प्र. साहित्य अकादमी हैदराबाद - 1962

13. तेलुगु परिशोधन संहित : के.कृष्णानिनि

14. साधिक नवल कथाकथन शिल्पमु : डॉ. पी.मृणालिनि तेलुगु परिशोधन प्रचुरणलु हैदराबाद - 1988

15. नवला शिल्पम : वल्लमपाटि वेंकट सुब्बय्य विशालान्ध्र पब्लिशिंग हाउज हैदराबाद - 1994.

सहायक शब्दकोशों को सूवो

1. आक्सफ,ोर्ड इलेस्ट्रेटड डिक्शनरो

2. इनसाइक्लोपोडिया आफ, दि सोशल साइन्सेस

3. चेम्बर्स डिक्शनरो ट्वन्टियथ सेन्चुररी

4. डिक्शनरो आफ, दि सोशालोजि

5. हिन्दो - कोश

पत्र - पत्रिकाएँ

1. आलोचना

2. आलोचना के मान

3. दैनिक नई दुनिया : इन्दौर

4. धर्मयुग

5. नईधारा [6] विवेचना

6. सरस्वतो

7. साप्ताहिक हिन्दुस्तान

8. साहित्य सन्देश

शोध प्रबन्ध में प्रयुक्त अंग्रेजी ग्रन्थों की सूची

1. Discovery of India - Jawaharlal Nehru

2. Great Men of India - Editor L.F. Roash Broock

3. India's changes villages, 1958 - H.C. Dube

4. Linguistics and the novel - F. Roser

5. Middle classes in India - Dr. Nasir Ahmad Khain, "Prakashan Shakha" 1958 Information Dept. Uttar Pradesh.

6. Modernisation and the structure of Societies - J Levi Princton

7. Social Background of India - A.R. Desai Dept. of Sociology, University of Bombay, 3rd Edition, 1959.

8. Social background of Indian Nationalism - A.R. Desai

9. The Indian Middle Classes - B.B. Misra Royal Institute of International Affairs, 1961, Oxford University Press, Amen House, London.

10. The Indian Heritage - Humanuekabir

11. The Novel and the people - Ralt Fox, Foreign Languages Publishing House, 1954, Moscow.

12. Urban Middle Class "Climbers" - Dr. Baljit Singh, J.K. Institute of Sociology and Relations.